शोधादर्श

८5

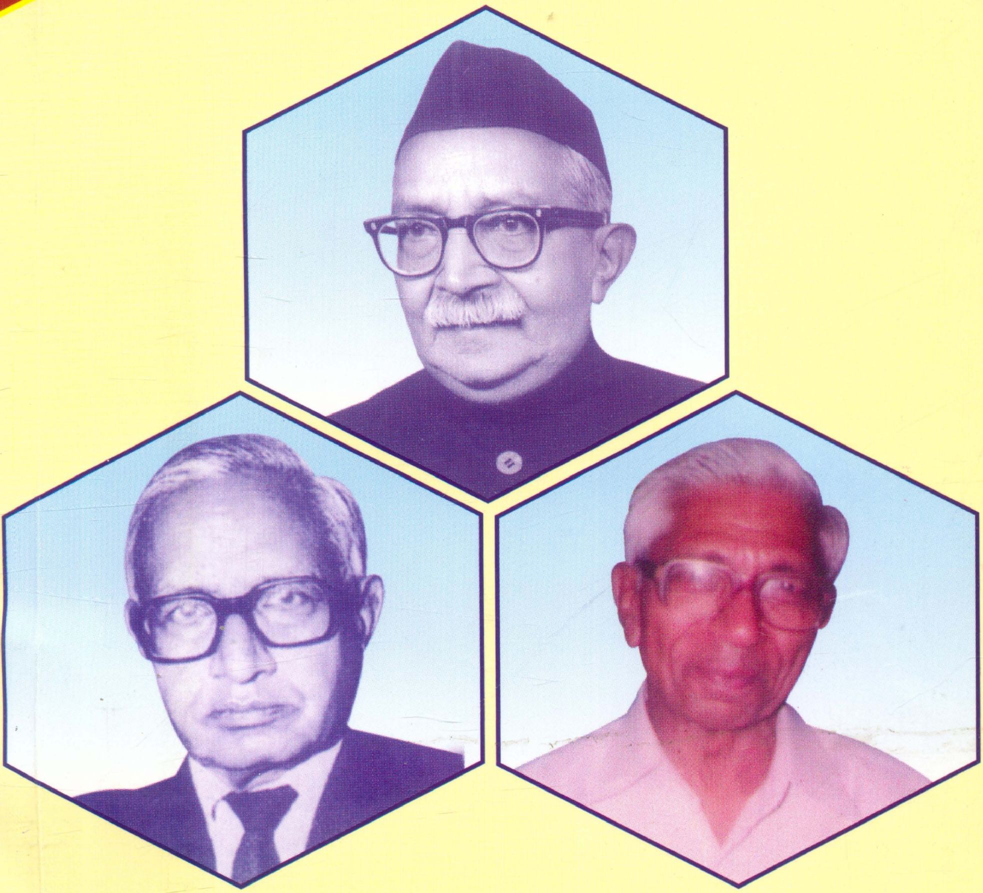

युग-पुरुष-त्रयी स्मृति विशेषांक

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

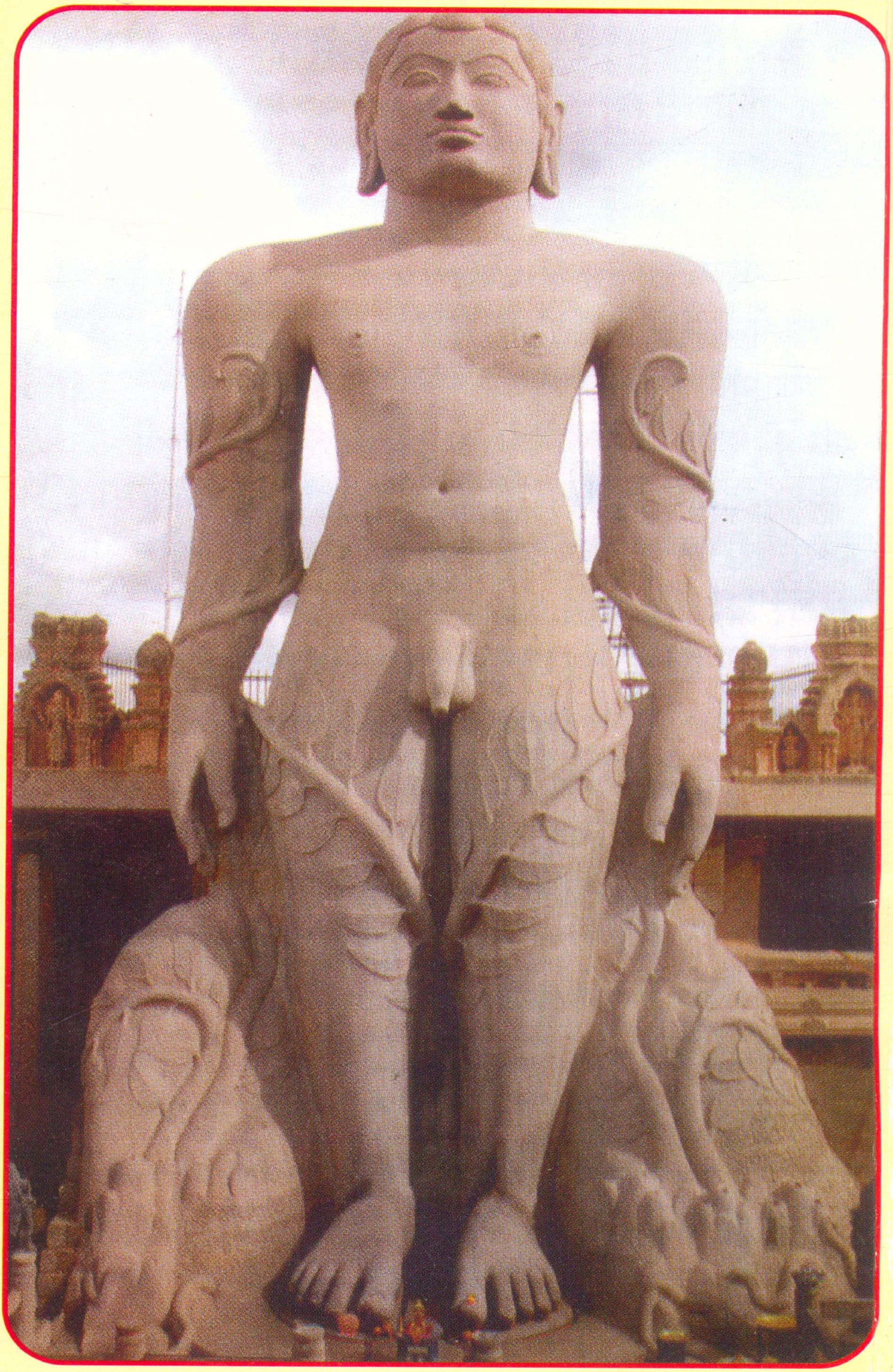

श्रवणबेलगोला में इन्द्रगिरि पर गोम्मटेश्वर बाहुबली

आद्य सम्पादक : (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
पूर्व प्रधान सम्पादक : (स्व.) श्री अजित प्रसाद जैन
पूर्व सम्पादक : (स्व.) श्री रमा कान्त जैन
मार्गदर्शक : डॉ. शशि कान्त
सम्पादक : श्री नलिन कान्त जैन
सह–सम्पादक : श्री सन्दीप कान्त जैन
: श्री अंशु जैन 'अमर'
: सौ. डॉ. अलका अग्रवाल

प्रकाशक

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.

ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–226004, फोन नं. (0522)- 2451375

ई–मेल : shodhadarsh@gmail.com मो. 9236062715

णाणं णरस्स सारं – सच्चं लोयम्मि सारभूयं
ज्ञान ही मनुष्य जीवन का सार है
सत्य ही लोक में सारभूत तत्त्व है

शोधादर्श–85

वीर निर्वाण संवत् 2544 वर्ष 2017 ई.

विषय क्रम

			पृ.
1	सम्पादकीय	श्री नलिन कान्त जैन	4
2	प्रास्ताविकी	डॉ. शशि कान्त	5–8
3	युग–पुरुष श्रद्धेय डॉ. ज्योति प्रसाद जैन		9–70
4	युग–पुरुष श्रद्धेय श्री अजित प्रसाद जैन		71–114
5	युग–पुरुष श्रद्धेय श्री रमा कान्त जैन		115–148
6	तीर्थंकर महावीर केन्द्र स्मृति समिति, उ.प्र., प्रतिवेदन वर्ष 2016–17	श्री नलिन कान्त जैन	149–153
7	दीपक (पद्य)	श्री अमरनाथ	154
8	दुश्मन से घिरा है देश मेरा (पद्य)	डॉ. किशोरी लाल व्यास	154
9	हाशिए पर खड़ी ज़िन्दगी (पद्य)	श्रीमती सरिता अग्रवाल	155
10	भोजन शाकाहार (पद्य)	श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'	155
11	श्रवणबेलगोला के गोम्मटेश्वर बाहुबली	डॉ. शशि कान्त	156–157

12 खारवेल के हाथीगुम्फा—अभिलेख में मंगल चिह्न — डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव — 158—164
13 हिन्दुत्व की हवा में कहीं जैनत्व न खो जाये — डॉ. अनिल कुमार जैन — 165—169
14 अम्बर की आंखों में कोई सूरज है, न सितारा — श्री जतनलाल रामपुरिया — 170—172
15 आगे भव्यता, पीछे पिछड़ता जैन समाज — डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती' — 173—174
16 गुणवत्तायुक्त शिक्षा व शैक्षिक संस्थाओं की आवश्यकता — श्री प्रफुल्ल पारख — 175—176
17 साहित्य सत्कार — डॉ. शशि कान्त — 177—183
पूज्य आचार्यश्री का अविस्मरणीय फिरोजाबाद वर्षायोग;
अवधू! आत्मज्ञान में रहना; विचार वैभव;
आप हम मूलआम्नायी हैं; कृष्ण काव्य कुंज; विविधा;
पंच देवोपासना; संवेदना के स्वर; खरी—खोटी;
मेरी कर्मभूमि — कहीं मोती, कहीं सीप;
श्रीमद्भगवद्गीता; जैन वाङ्मय में भूगोल;
संक्षिप्त जैन महाभारत; छहढाला;
परंपरा के बोल, भाग—2;
इस्लाम का उदय और नियति
18 सम्मान : — श्री अशीत जैन — 184—185
श्री नलिन कान्त जैन
श्री हुकमचन्द जैन
डॉ. अवधेश कुमार अग्रवाल
19 आभार — 185
20 अभिनन्दन — 186—188
21 शोक संवेदन — 189
22 समाचार विविधा — 190
23 पाठकों के पत्र — 191—192
डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव, श्री कैलाश नारायण टण्डन
डॉ. परमानन्द जड़िया, श्री बी.डी. अग्रवाल

चित्र

मुख पृष्ठ	युग–पुरुष त्रय
कवर पृ.2	श्रवणबेलगोला में इन्द्रगिरि पर गोम्मटेश्वर बाहुबली
3	सम्मानित श्री नलिन कान्त जैन श्री हुकमचन्द जैन डॉ. अवधेश कुमार अग्रवाल
पृष्ठ 9	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
71	श्री अजित प्रसाद जैन
115	श्री रमा कान्त जैन
163–64	मंगल–चिह्न
193–96	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन से सम्बन्धित चित्र
197–98	श्री अजित प्रसाद जैन से सम्बन्धित चित्र
199–200	श्री रमा कान्त जैन से सम्बन्धित चित्र

✧✧✧

सम्पादकीय

इस बात का खेद है कि प्रस्तुत अंक के प्रकाशन में विलम्ब हुआ है। इसमें कुछ कारण यह रहा कि गत वर्ष पूरे वर्ष ही मेरी माता जी (श्रीमती मंजरी जैन) गम्भीर रूप से अस्वस्थ और शैयाग्रस्त रहीं। अन्ततः गत 8 जनवरी 2018 को उनका शरीर शान्त हो गया।

श्रद्धेय बाबा जी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, छोटे बाबा जी श्री अजित प्रसाद जैन और चाचा जी श्री रमा कान्त जैन के सम्बन्ध में रोसड़ा (बिहार) से डॉ. विनोद कुमार तिवारी, नई दिल्ली से श्री निर्मल कुमार जैन सेठी, कानपुर से श्री कैलाश नारायण टण्डन तथा लखनऊ से श्री मगनलाल जैन, डॉ. परमानन्द जड़िया और श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध' के संस्मरण–विनयांजलि प्राप्त हुए; इसके लिए मैं उनका आभारी हूं।

विद्वान मनीषी डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव (भिलाई), डॉ. अनिल कुमार जैन (जयपुर), श्री जतनलाल रामपुरिया (कोलकाता), डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती' (बुरहानपुर) और श्री प्रफुल्ल पारख (पुणे) ने अपने गवेषणापूर्ण एवं सामयिक चिन्तन से युक्त लेख भेजने का अनुग्रह किया है, इसके लिए मैं उनको धन्यवाद देना चाहता हूं।

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति का वर्ष 2016–17 का वार्षिक प्रतिवेदन इस अंक में प्रकाशित किया जा रहा है। अन्य नियमित स्तम्भ भी सम्मिलित हैं।

सुधी पाठकों से और माननीय अभिदाताओं से निवेदन है कि वे अपने पते में यदि कोई परिवर्तन हुआ हो तो उससे अवगत करा दें। सम्पादक मण्डल के सभी सदस्यों का और समिति के अध्यक्ष के सहयोग के लिए मैं आभारी हूं।

नलिन कान्त जैन
सम्पादक

21 जनवरी, 2018

✦✦✦

प्रास्ताविकी

शोधादर्श का प्रस्तुत अंक **तीन युग–पुरुषों की स्मृति** को समर्पित है। ये युग–पुरुष श्रद्धेय **डॉ. ज्योति प्रसाद जैन**, उनके अनुज **श्री अजित प्रसाद जैन** और उनके कनिष्ठ पुत्र **श्री रमा कान्त जैन** थे। वे असाधारण व्यक्ति जो अपने कृतित्व से समाज में चेतना जाग्रत करते हैं और बौद्धिक एवं सामाजिक क्षेत्र में विशेष योगदान करते हैं उन्हें **युग–पुरुष** के रूप में समादृत किया जाता है। संयोग की बात है कि उपरोक्त तीनों व्यक्ति परस्पर रक्त सम्बन्ध से जुड़े थे। 20वीं शताब्दी और वर्तमान शताब्दी के भी प्रथम दशक में उनका व्यक्तित्व क्रियाशील रहा।

भारतीय इतिहास का यह एक त्रासदायक तथ्य है कि तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से भारतीय संस्कृति और सांस्कृतिक विचारधारा का जो विखंडन 18वीं शताब्दी ईस्वी तक चलता रहा उसके परिणाम स्वरूप हम अपने सांस्कृतिक अस्तित्व को ही भूल गये थे और जो कुछ हमें ज्ञात था वह पंडित जी की कृपा से ज्ञात था। 19वीं शताब्दी में कुछ पाश्चात्य जिज्ञासुओं के परिश्रम और उपयोग से हम अपने प्राचीन लेखों की पहचान कर सके और उनकी लिपि पढ़कर तथा उनकी भाषा को समझकर अपने इतिहास की जानकारी कर सके। यह एक विस्मयकारी तथ्य है कि यद्यपि **बौद्ध धर्म** का उदय भारत में हुआ था और बौद्ध विचारधारा से प्रभावित भारतीय विद्वानों ने ही इसका प्रसार एशिया महाद्वीप के विभिन्न क्षेत्रों में किया था, भारतीय भूमि में बौद्धधर्म प्रायः 10वीं शताब्दी में ही नाम–शेष हो गया था। उसके विषय में पुनः जानकारी 19वीं शताब्दी में पाश्चात्य विद्वानों के प्रयत्न से और श्री लंका तथा तिब्बत में बौद्ध धर्मानुयायियों के सौजन्य से प्राप्त हुई। महाबोधि सोसायटी की स्थापना का इस संदर्भ में विशेष महत्व है।

जैन धर्म की स्थिति कुछ भिन्न रही है। इसके अनुयायियों की संख्या उक्त विगत दो हजार वर्षों में निरंतर कम होती गई और उत्तर बिहार में स्थित धर्मस्थलों को जनसंख्या शून्य होने के कारण भुला भी दिया गया। इस सम्बन्ध में महावीर की जन्मस्थली वैशाली के निकट कुण्डग्राम का तथा महावीर की निर्वाणस्थली पावा का उल्लेख किया जाना प्रासंगिक

होगा। उक्त समयावधि में जैन आम्नाय के विभिन्न सम्प्रदायों ने अपनी रक्षा के लिए जो पंथ चलाए उनमें मूर्ति पूजा के निषेधक तारणपंथ और स्थानकवासी पंथों का उल्लेख किया जाना अभीष्ट है जो 14वीं–15वीं शताब्दी में इस्लाम के आक्रामक प्रभाव से रक्षा के लिए आवश्यक थे। पूजा में ब्राह्मणीय कर्म–काण्ड का समावेश जैनों में भी हो गया। जैनों की दिगम्बर आम्नाय के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए भट्टारक व्यवस्था उदय में आयी और यह व्यवस्था दक्षिण भारत में आज भी विद्यमान है, यद्यपि अंग्रेजी शासकों की कृपा से दिगम्बर साधुओं का विचरण 20वीं शताब्दी के दूसरे दशक में प्रारंभ हो गया। भारतीय संस्कृति के इतिहास की पुनः स्थापना के सम्बन्ध में 19वीं शताब्दी में जैन धर्म के अस्तित्व और उसके ऐतिहासिक संदर्भ के विषय में पाश्चात्य विद्वानों ने अपनी जिज्ञासा के अनुसार और जो कुछ जैन विद्वानों से बात–चीत कर ज्ञात किया उस सब को लेखबद्ध किया। विश्व दार्शनिक सम्मेलन में वीरचन्द राघव गांधी ने 1893 ई. में अपना भाषण अमेरिका में दिया था जो किसी जैन विद्वान द्वारा अंग्रेजी में दिया गया पहला प्रामाणिक वक्तव्य था। 20वीं शताब्दी में भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन और दर्शन की विभिन्न धाराओं का सम्यक् अध्ययन किया गया जिसके लिए डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की पुस्तक विशेष रूप से प्रसिद्धि प्राप्त है।

जैन धर्म के विषय में भिन्न–भिन्न विद्वान मनीषियों ने अपने अभिमत व्यक्त किये और प्रकाशित किये परन्तु उनसे जैन धर्म की ऐतिहासिकता एवं वैयक्तिता (identity) का सम्यक् बोध नहीं होता था। **जैन धर्म की अस्मिता को स्थापित करने में डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का विशिष्ट योगदान रहा**। 1951 में उनकी पुस्तक **Jainism, The Oldest Living Religion** प्रकाशित हुई थी। 1975 में उनकी पुस्तक **Religion and Culture of the Jains** प्रकाशित हुई। **भारतीय इतिहास : एक दृष्टि** में उन्होंने अभिज्ञात प्रागैतिहासिक काल से 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति तक का इस देश का इतिहास सम्प्रदाय निरपेक्ष दृष्टि से और भारत की भौगोलिक सीमाओं के आधार से प्रस्तुत किया है जो आज भी भारतीय इतिहास के ग्रन्थों में अपना विशेष स्थान रखता है। **हस्तिनापुर** और

अयोध्या के सम्बन्ध में उनकी पुस्तकें इतिहास के शोधार्थियों के लिए विशेष उपयोगी है। **प्रकाशित जैन साहित्य** में 1950 तक प्रकाशित समस्त जैन साहित्य का समाकलन किया गया है, परन्तु यह अब अप्राप्य है। इसी प्रकार उन्होंने **जैन ऐतिहासिक व्यक्तिकोष** का भी लेखन किया है जिसमें एक ही नाम के विभिन्न व्यक्तियों को उनकी कृतियों के आधार से पहचाना गया है। उनकी यह एक महत्वपूर्ण कृति है जिसके प्रकाशन के लिए हम चिंतित हैं। शोध पत्रिका के रूप में फरवरी 1986 में प्रस्तुत पत्रिका **शोधादर्श** के प्रकाशन का श्रेय भी उन्हीं को है। उनकी ये सब उपलब्धियां उन्हें **युग–पुरुष** के रूप में प्रतिष्ठित करती हैं। 6 फरवरी 2012 को उनकी जन्मशती थी और **डॉ. ज्योति प्रसाद जैन जन्मशती विशेषांक** के रूप में प्रकाशित **शोधादर्श 75** में श्रद्धेय डॉ. साहब के जीवन और कृतित्व के सम्बन्ध में विशेष विवरण संकलित किया गया है, जिसमें से कुछ अंश प्रासंगिकता की दृष्टि से इस अंक में भी उद्धृत किये जा रहे हैं।

श्रद्धेय डॉ. साहब के अनुज **श्री अजित प्रसाद जैन** की जन्मशती 1 जनवरी 2018 को पड़ रही है। एक समाजचेता के रूप में उनका विशेष योगदान रहा। राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में उनका एक महती योगदान यह रहा कि उन्होंने भारतीय चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद और तिब्ब को प्रदेश की चिकित्सा व्यवस्था में उचित स्थान प्राप्त कराया। उत्तर प्रदेश सरकार की सेवा के अन्तर्गत उनकी यह विशिष्ट उपलब्धि 1940 के दशक की है। वे उत्तर प्रदेश आयुर्वेदिक तिब्बी अकादमी के प्रथम मानद सचिव राज्य सरकार द्वारा मनोनीत किये गये थे। 1974–76 में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव को सुचारु रूप से सम्पादित कराने का श्रेय भी उन्हें है। 1976 में **तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश,** के वह संस्थापक मंत्री थे और उक्त संस्था के अंतर्गत उन्होंने एक सार्वजनिक शोध–पुस्तकालय की स्थापना की। उनकी स्मृति में प्रकाशित **शोधादर्श 57** में उनके सम्बन्ध में जो विवरण दिया गया है उसमें से कुछ अंश प्रासंगिकता की दृष्टि से इस अंक में उद्धृत किये जा रहे हैं।

श्रद्धेय डॉ. साहब के कनिष्ठ पुत्र और श्री अजित प्रसाद जैन के भ्रातृज **श्री रमा कान्त जैन** का जन्म 10 फरवरी 1936 को हुआ था। उन्हें एक प्रतिष्ठित गद्य लेखक, व्यंग्य लेखक और कवि के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त थी। प्रायः 40 वर्ष मई 1954 से फरवरी 1994 तक वे उत्तर प्रदेश सचिवालय में सरकारी सेवा में रहे। सेवाकाल में उनकी प्रतिष्ठा एक परिश्रमी, कर्तव्यनिष्ठ और सत्यनिष्ठ राज्य कर्मचारी की रही। सचिवालय हिन्दी परिषद और सचिवालय सेवा अधिकारी संघ की प्रवृत्तियों में उनकी सक्रिय सहभागिता रहती थी। सेवा काल में उनका विशिष्ट योगदान शिक्षा सेवा की नियमावली को अंतिम रूप देना और शिक्षा अधिकारियों के वरिष्ठता क्रम को सुनिश्चित कराना था, जो कार्य उन्होंने शिक्षा विभाग में उप सचिव के पद पर रहते हुए किया था। यह उनकी सेवा काल की एक बहुत महत्वपूर्ण उपलब्धि रही क्योंकि यह कार्य कई दशकों से लंबित था। शासकीय सेवा में अक्सर ऐसे महत्वपूर्ण कार्य किसी व्यक्ति द्वारा हो जाते हैं जिसकी जानकारी बाहर वालों को नहीं होती है और वे स्वयं भी इसे रुटीन कार्य समझकर भूल जाता है। रमा कान्त की एक विशेष उपलब्धि यह भी रही कि उन्होंने **शोधादर्श** में लगभग एक सौ विद्वान मनीषियों के परिचयात्मक लेख प्रकाशित किये जिनका संकलन प्रकाशित किया जाना अभीष्ट है क्योंकि उन सब मनीषियों के विषय में अन्यत्र कहीं एक स्थान पर जानकारी उपलब्ध नहीं है। उनकी स्मृति में प्रकाशित **शोधादर्श 68** में उनके सम्बन्ध में जो विवरण दिया गया है उसमें से कुछ अंश प्रासंगिकता की दृष्टि से इस अंक में उद्धृत किये जा रहे हैं।

— डॉ. शशि कान्त

युग–पुरुष

श्रद्धेय डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

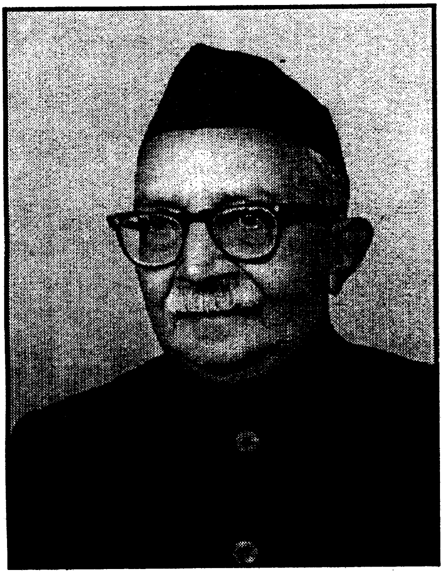

आगमन
6 फरवरी, 1912 ई.
ग्रा. ख्वाज़ा नगला (जि. बागपत)

महाप्रयाण
11 जून 1988 ई.
लखनऊ

विषय सूची

☼	1 गुरुणाम्गुरु : युग–पुरुष डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	श्री अंशु जैन 'अमर'	पृ. 11–21
☼	2 गुणानुवादः	श्री काशीनाथ गोपाल गोरे	21
☼	3 वीर निर्वाण भारती द्वारा 'विद्यावारिधि' सम्मान	श्री राजेन्द्र कुमार जैन	22
∞	4 अहिंसा इण्टरनेशनल द्वारा सम्मान	श्री रमा कान्त जैन	23–24
*	5 इतिहास–मनीषी की अनन्त यात्रा	डॉ. अमर पाल सिंह	25–27
*	6 श्रद्धांजलि सभा	श्री नलिन कान्त जैन	28–32
☼	7 जन्मशती पर स्मरण गोष्ठी	श्री अंशु जैन 'अमर'	33–38
	8 डॉ. ज्योति प्रसाद जैन : अपूर्व व्यक्तित्व	डॉ. विनोद कुमार तिवारी	39–43
	9 परिचय के पृष्ठ बढ़ते गये	डॉ. परमानन्द जड़िया	44–45
	10 श्रद्धा के कुसुम	श्री लूणकरण नाहर जैन	45
*	11 श्रद्धांजलि	सौ. मंजरी जैन	46
☼	12 श्रद्धा–सुमन	श्री राजीव कान्त जैन	47
	13 स्मृतिपटल पर पू. बाबाजी	श्रीमती सरिता अग्रवाल	48
	14 विरासत	सौ. इन्दु कान्त जैन	49–52
	15 धुंधली यादें	सौ. शेफाली मित्तल	53
	16 इतिहास की उपयोगिता	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	54–55
	17 नदिया एक, घाट बहुतेरे (आकाशवाणी से प्रसारित वार्ता)	"	56–59
	18 सिन्धु घाटी सभ्यता	"	60–66
	19 वीतराग स्वरूपं (पद्य)	"	66
	20 जय महावीर नमो (पद्य)	"	67
	21 डॉ. साहब के विशिष्ट प्रकाशन		68–70

स्रोत : ∞ शोधादर्श 3

* शोधादर्श 7

☼ शोधादर्श 75

गुरुणामगुरु : युग–पुरुष

डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

"णाणं णरस्स सारं" (ज्ञानम् नरस्य सारम्)

अर्थात् ज्ञान ही मनुष्य जीवन का सार है।

इस सृष्टि में असंख्यात जीव समूह हैं, किन्तु सिर्फ मनुष्य–पर्याय में ही जीव विवेकशील व ज्ञानवान होता है। जो मनुष्य अथक श्रम–साधना करके अपनी बुद्धि को प्रखर कर पाने में सफल होते हैं, वे विद्वान की श्रेणी में परिगणित होते हैं और जाति व संस्कृति के संरक्षण का महती कार्य अपने साहित्य–सृजन के माध्यम से सम्पन्न करते हैं तथा समस्त जगत को धारण करते हैं, जैसा कि किसी महान मनीषी ने निम्नलिखित पंक्तियों में कहा है :–

जातिर्न जीवति सुसंस्कृतिमन्तरेण
साहित्यमेव परिरक्षति संस्कृतिं ताम्।
विद्वांश्च तं सृजति तेन बुधः स एकः
नूनं सदैव विदधाति जगत समग्रम्।।

यदि विद्वान धर्म–रक्षक, वस्तु–तत्व निरीक्षक, विद्या प्रदायक, इच्छा रहित और मान की अपेक्षा नहीं करने वाला हो, तो वह कदापि दीनता को प्राप्त नहीं होता है और संसार में सदैव वन्दनीय होता है। वन्दना का उद्देश्य उस व्यक्ति विशेष के गुणों को प्राप्त करने की सद्भावना होती है, जैसा कि कहा भी गया है –

वन्दे तद्गुण लब्धये।

जैन परम्परा में "**गुणिषु प्रमोदम्**" की भावना का विशिष्ट स्थान है। अतः ऐसे विद्वान गुरुओं के गुणों का स्मरण–कीर्तन स्वाभाविक है। और जब ये गुरुजन हमारे पूर्वज हों तो उनके महान व्यक्तित्व और कृतित्व का वन्दन–कीर्तन बारम्बार करने के बावजूद हमारी आत्मा तृप्त नहीं होती है। उनके विषय में सुनने–सुनाने व अधिकाधिक ज्ञानार्जन की लालसा बढ़ती ही जाती है, इसीलिये **महाभारत** में कहा गया है –

न हि तृप्यामि पूर्वेषां श्रृण्वानृचरितं महत्।

आज मैं भी अपने ऐसे ही एक महान पूर्वज गुरुजन श्रद्धेय पितामह **इतिहास–रत्न, विद्यावारिधि, इतिहास–मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन** के गुणों के कीर्तन करने के लोभ का संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। डॉ.

ज्योति प्रसाद जैन का जन्म 6 फरवरी 1912 ई. (फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी) के दिन बागपत जनपद के ख्वाजा नगला ग्राम में एक मध्यमवर्गीय तेरापंथी दिगम्बर जैन गोयल गोत्रीय बीसा अग्रवाल वैश्य परिवार में श्री पारस दास जैन की प्रथम सन्तान के रूप में हुआ था। आपके जन्म के समय परिवार की स्थिति संतोषजनक नहीं थी, इसीलिये धर्मनिष्ठ माता–पिता ने बालक को अपनी आशाओं का पुंज मान आपका नाम "ज्योति" रख दिया। आपने 'यथा नाम तथा गुण' कहावत को सत्य साबित करते हुए शीघ्र ही अपने नाम को सार्थक कर दिया। समय ने करवट ली और परिवार परिस्थितियों से उबरकर प्रगतिपथ पर अग्रसरित हो चला। आपने मेरठ में जैन मंदिर की पाठशाला और पाण्डे जी की चटशाला से विद्यारम्भ करके मेरठ व आगरा में शिक्षा ग्रहण कर इतिहास, राजनीति–शास्त्र और अंग्रेजी में एम.ए. तथा एल–एल.बी. की उपाधियां प्राप्त कीं। सन् 1932 में आपने हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, की "साहित्य विशारद" परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की।

इतिहास विषय के छात्र के रूप में आपने अनुभव किया कि भारतीय इतिहास के निर्माण में जैन स्रोतों की प्रायः उपेक्षा की गयी है और यत्र–तत्र ही उनका उपयोग किया गया है। आपने यह भी पाया कि जैनेतर विद्वानों में जैन–धर्म की ऐतिहासिकता, पृथक अस्तित्व, साहित्य की प्रामाणिकता आदि अनेक तथ्यों के विषय में अनेक भ्रांतियाँ हैं, जो दुराग्रह का रूप ले चुकी हैं। डॉक्टर साहब सकारात्मक सोच के व्यक्ति थे, अतः इन बातों से क्षुब्ध न होकर वरन् प्रेरित होकर जैन साहित्य, कला व पुरातात्विक स्रोतों के आधार पर भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण का आपने महती एवं सफलीभूत प्रयास किया। इसी विषय पर आपने **शोध–प्रबंध The Jaina Sources of the History of Ancient India** पूर्ण कर आगरा विश्वविद्यालय से पी–एच.डी. की उपाधि हासिल की। आपने अपनी अनवरत साहित्य–साधना से जैन–स्रोतों के माध्यम से भारतीय इतिहास के अनेकों विस्मृत तथ्यों व अध्यायों को उद्घाटित व आलोकित कर उनकी प्रमाणिकता व महत्व को स्थापित किया। किन्तु, **डॉक्टर साहब सदैव धर्म–सम्प्रदाय–आम्नाय भेद रहित और तथ्य–सापेक्ष इतिहास के निरुपण के पक्षधर थे।**

12 फरवरी 1929 को मास्टर उग्रसेन कंसल की सुपुत्री अनन्तमाला से विवाह कर दाम्पत्य–जीवन में प्रवेश के पश्चात् पारिवारिक दायित्वों के निर्वहन हेतु आपने वकालत, शिक्षण, व्यापार और सरकारी सेवा को

आजीविका के रूप में अपनाया। सन् 1958 में आपकी विशिष्ट अर्हताओं को देखते हुए उत्तर प्रदेश के जिला गज़ेटियर विभाग में उन्हें दस अतिरिक्त वेतन–वृद्धियाँ देकर **'संकलन अधिकारी एवं उप–सम्पादक'** के पद पर नियुक्ति प्रदान की गयी। आपने अत्यन्त परिश्रम और कुशलतापूर्वक कार्य करते हुए 22 जिलों के गज़ेटियर तैयार किये, जिनमें अधिकांश जिलों के इतिहास विषयक अध्याय डॉक्टर साहब ने स्वयं लिखे। उनके इस योगदान को देखते हुए उन्हें दो वर्ष का सेवा–विस्तार भी प्रदान किया गया और वे सन् 1972 में ससम्मान सेवानिवृत्त हुए। आज भी उनके द्वारा सुनिश्चित प्रणाली पर गज़ेटियर्स के लेखन व प्रकाशन का कार्य हो रहा है।

देश–प्रेम के कारण डॉ. साहब सन् 1928 से 1931 तक कांग्रेस सेवा दल के सक्रिय सदस्य भी रहे। इस दौरान आपने खादी के प्रचार एवं महात्मा गांधी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में सहभागिता भी की।

अध्ययन, चिन्तन, मनन, लेखन और पत्रकारिता का डॉक्टर साहब को बाल्यकाल से ही शौक था। मात्र चौदह वर्ष की अल्प–वय में वे जैन कुमार सभा मेरठ की हस्तलिखित पत्रिका **जैन कुमार** के जनक एवं प्रथम सम्पादक बने। उनका किसी सार्वजनिक पत्र में प्रकाशित सर्वप्रथम लेख **"जैनधर्म के मर्म की अनोखी सर्वज्ञता"** सन् 1933 में **जैन मित्र** (सूरत) में प्रकाशित हुआ। सन् 1940 में उनकी सर्वप्रथम पुस्तक **पर्यूषण–पर्व** जैन सभा, मेरठ, द्वारा प्रकाशित की गयी।

डॉक्टर साहब का हिन्दी व अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं पर असाधारण अधिकार था। लेखन की भांति डॉ. साहब उभय भाषाओं में धारा–प्रवाह बोलते भी थे। शीघ्र ही वे जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति, इतिहास, कला व पुरातत्व के मर्मज्ञ विद्वान के रूप में स्थापित हो गये और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अथॉरिटी माने जाने लगे। यह समय **साहित्य–जगत का स्वर्ण–युग** था, जब श्री जुगल किशोर मुख्तार 'युगवीर', बा. कामता प्रसाद जैन, डॉ. ए. एन. उपाध्ये, डॉ. हीरा लाल जैन, पं. कैलाश चन्द्र शास्त्री और ज्योतिषाचार्य नेमिचन्द्र शास्त्री सरीखी महान जैन विभूतियां धूम मचाए हुये थीं। दूसरी ओर कई जैनतर साहित्यकार भी यथा – मुंशी प्रेमचन्द, निराला, यशपाल, अमृत लाल नागर व शारदा प्रसाद 'भुशुण्डि' लखनऊ को अपनी कर्मभूमि बनाकर माँ भारती के भण्डार को भरने का सराहनीय प्रयास कर रहे थे। **इसी श्रृंखला की एक स्वर्णिम–कड़ी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन जी भी थे, जिन्होंने अपने अनुसन्धान व लेखन से वाग्देवी की अविस्मरणीय सेवा की।** डॉ. साहब ने दो हजार से अधिक लेख व शोध–पत्रों एवं छोटी–बड़ी लगभग पचास पुस्तकों का प्रणयन किया।

सन् 1964 में मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, द्वारा प्रकाशित **The Jaina Sources of the History of Ancient India** नामक अपने ग्रन्थ में डॉ. साहब ने जैन स्रोतों के महत्व को सिद्ध करते हुए उनके आधार पर महावीर संवत्, विक्रम संवत् व शक संवत् की तिथि–समय निर्धारित करते हुए भारतीय व जैन इतिहास की सांस्कृतिक व राजनीतिक घटनाओं के कालक्रम को सुनिश्चित करने का सफल प्रयास किया।

सन् 1961 में भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, से प्रकाशित **भारतीय इतिहास : एक दृष्टि** में डॉ. साहब ने प्राचीनतम काल से लेकर स्वतंत्रता–प्राप्ति पर्यन्त सम्पूर्ण भारतीय इतिहास अन्य ऐतिह्य साधनों के साथ–साथ जैन स्रोतों के सम्यक् उपयोग द्वारा प्रस्तुत किया। इस ग्रंथ में उत्तर भारत के इतिहास के साथ ही दक्षिण भारत का विस्तृत इतिहास और भारतीय इतिहास से संबंधित प्रमुख तिथियों की अत्यन्त उपयोगी सूची भी दी गयी है।

सन् 1951 में जैन कल्चरल रिसर्च सोसाइटी, वाराणसी, से प्रकाशित अपनी पुस्तक **Jainism, The Oldest Living Religion** में डॉ. साहब ने पाश्चात्य एवं जैनेतर भारतीय इतिहासकारों में फैली भ्रांतियों का निवारण करते हुए जैन–धर्म के अन्य भारतीय धर्मों से पृथक स्वतंत्र अस्तित्व एवं उसकी पुरातात्विक स्रोतों के आधार पर प्राचीनता आदि को सिद्ध किया। इस पुस्तक का गुजराती भाषा में सन् 1979 में अहमदाबाद के श्री हेमंत जे. शाह ने **जैन–धर्म साहुधी वधु प्राचीन अनेजुवन्त धर्म** नाम से अनुवाद किया था। अगस्त 2011 में धर्मोदय साहित्य प्रकाशन, सागर, ने श्री पुलक गोयल द्वारा अनुवादित इस पुस्तक का हिन्दी संस्करण **जैन धर्म : प्राचीनतम जीवित धर्म** नाम से प्रकाशित किया है।

सन् 1975 में भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, से प्रकाशित एक अन्य ग्रंथ **प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलाएँ** में श्रद्धेय डॉ. साहब ने भगवान महावीर से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति पर्यन्त हुए प्रमुख जैन सम्राटों, राजा–महाराजाओं, सामन्त–सरदारों, मंत्रियों, राजपुरुषों, सेनानियों, सेठ, उद्योगपतियों तथा प्रभावक पुरुषों और महिलाओं का कालक्रमिक परिचय–चित्रण अत्यन्त सुन्दर ढंग से दिया है। ये चरित्र समस्त जैन सम्प्रदाय से बिना किसी भेदभाव के चुने गये हैं, यह ग्रंथ की विशेषता है। सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाश चन्द्र शास्त्री ने इसे **परिचयात्मक जैन व्यक्ति कोश** की संज्ञा दी थी।

सन् 1975 में भारतीय ज्ञानपीठ से ही डॉ. साहब की एक अन्य महत्वपूर्ण पुस्तक **Religion and Culture of The Jains** प्रकाशित हुयी, जिसमें आपने अंग्रेजी भाषा में जैन–धर्म के प्राचीन इतिहास के साथ–साथ जैन–सिद्धान्तों, जैन–दर्शन, जैन–संस्कृति, पूजा–व्रत–उपवास, तीर्थक्षेत्र, कला, आचार–व्यवहार आदि विभिन्न विषयों पर विशद प्रकाश डाला है।

सन् 1979 में उ.प्र. दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी, लखनऊ, द्वारा प्रकाशित डॉ. साहब की पुस्तक **आदितीर्थ अयोध्या** में काल–चक्र के वर्तमान चौबीस तीर्थंकरों में से पांच तीर्थंकरों की जन्म–भूमि स्थावर–तीर्थ अयोध्या के ऐतिहासिक, धार्मिक, पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक महत्व पर प्रकाश डालते हुए वहां के दर्शनीय स्थलों के लगभग दो दर्जन सचित्र परिचय प्रस्तुत किये गये हैं। पुस्तक के अन्त में स्तवन, दिगम्बरत्व के विवेचन और जैन परम्परा की प्राचीनता विषयक अध्यायों से पुस्तक की उपादेयता और बढ़ गयी है।

स्मृति–शेष डॉ. साहब के महाप्रयाण के पश्चात ज्ञानदीप प्रकाशन, लखनऊ, द्वारा सन् 1988 में उनका अत्यन्त श्रम–साध्य जीवन–पर्यन्त शोध–अनुसंधान का प्रतिफल **जैन–ज्योति : ऐतिहासिक व्यक्तिकोश** का प्रथम खण्ड प्रकाशित किया गया। ऐतिहासिक काल में एक ही नाम के अनेक विशिष्ट व्यक्ति हुए हैं और नाम–साम्य के आधार पर कई व्यक्तियों को एक ही मान लेने की भ्रान्ति प्रायः होती है, जिससे ऐतिहासिक घटनाओं का समाकलन भ्रमपूर्ण हो जाता है। अकारादि क्रम से प्रथम खण्ड में **अ से अं** तक ग्रथित प्रस्तुत कोश में विगत 2500 वर्षों में हुए जैन आचार्यों, प्रभावक सन्तों, साध्वी, आर्यिकाओं, साहित्यकारों, कलाकारों, धर्म एवं संस्कृति के पोषक राजपुरुषों व अन्य उल्लेखनीय महापुरुषों व महिलाओं का संक्षिप्त प्रामाणिक परिचय ससंदर्भ संकलित किया गया है। परिशिष्ट में अधुना–दिवंगत उल्लेखनीय व्यक्तियों का भी समावेश किया गया है।

डॉ. साहब लेखन के साथ–साथ उच्च कोटि के सम्पादक भी थे। वे अनेकों जैन व जैनेतर पत्र–पत्रिकाओं के सम्पादक/प्रधान सम्पादक अथवा सम्पादक–मण्डलों में रहे। **मानसी, जैन सिद्धान्त भास्कर, Jaina Antiquary, जैन संदेश साप्ताहिक, अनेकान्त, वीर, अहिंसा–वाणी, Voice of Ahimsa, English Jaina Gazette, जैन–दर्पण,** जैसी पत्रिकाओं ने उनके सम्पादन में ही प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त किया। अनेक पत्रिकाओं के विशिष्ट विशेषांकों, स्मारिकाओं, अभिनन्दन–ग्रंथों,

स्मृति–ग्रंथों के सम्पादक–मण्डलों को भी आपने सुशोभित किया था। **अनेकान्त** का पं. जुगल किशोर मुख्तार 'युगवीर' स्मृति विशेषांक, साहू शान्ति प्रसाद जैन विशेषांक, व गोम्मटेश्वर बाहुबली विशेषांक तथा **वीर** का साहू शान्ति प्रसाद जैन विशेषांक, गोम्मटेश अंक और धर्मस्थल विशेषांक उल्लेखनीय हैं। सन् 1983 तक **जैन संदेश शोधांक** के 51 अंक और जून 1988 में महाप्रयाण–पर्यन्त **शोधादर्श** के प्रारम्भिक 6 अंकों का आपने कुशलतापूर्वक सम्पादन कर शोध के नये प्रतिमान स्थापित किये।

श्रद्धेय डॉ. साहब भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन की मूर्ति देवी ग्रन्थमाला के जनरल एडिटर तथा महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, के सम्पादक–मण्डल के भी सदस्य थे। आपने भगवान महावीर के 2500 वें निर्वाण महोत्सव पर प्रकाशित समग्र जैन समाज की ओर से **भगवान महावीर स्मृति ग्रन्थ** सुसम्पादित किया। जुलाई 1958 में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ, मथुरा, से प्रकाशित **जैन सन्देश–शोधांक** तथा फरवरी, 1986 में तीर्थंकर महावीर स्मृति केंद्र समिति, उ.प्र., से प्रकाशित **शोधादर्श** नामक स्तरीय शोध–पत्रिकाओं के तो आप **जनक और आद्य–सम्पादक** ही थे।

सन् 1945 में डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने मुद्रण कला के इतिहास की पृष्ठभूमि में **हिन्दी पुस्तक साहित्य** प्रकाशित की थी, जिससे प्रेरणा लेकर डॉ. साहब ने सन् 1958 में जैन मित्र मंडल, दिल्ली, के आग्रह पर **प्रकाशित जैन साहित्य** का सफल सम्पादन किया। इस अत्यन्त महत्वपूर्ण पुस्तक में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी की 2052, मराठी की 48, गुजराती की 70, बंगला की 52, उर्दू की 168 तथा अंग्रेजी व अन्य यूरोपीय भाषाओं की 290, तदनुसार कुल 2680 कृतियों का समावेश किया गया है। परिशिष्ट के रूप में सार्वजनिक जैन पुस्तकालयों व शास्त्र भण्डारों, जैन साहित्यिक संस्थाओं, जैन पुस्तक विक्रेताओं, तत्कालीन ग्रन्थ प्रणेता साहित्य सेवी विशिष्ट जैन विद्वानों एवं जैन साहित्य सेवी प्रसिद्ध अजैन विद्वानों की अत्यन्त मूल्यवान सूचियां भी दी गयी हैं। पुस्तक में डॉ. साहब ने जैन धर्मानुयायियों द्वारा की गयी साहित्य सेवा, उक्त साहित्य के मुद्रण–प्रकाशन का इतिहास, जैन पत्रकारिता का इतिहास, तथा जैन कला, पुरातत्व, अभिलेखों व प्रशस्तियों आदि पर 89 पृष्ठ की अत्यंत विशद एवं सारगर्भित भूमिका भी लिखी है। अपनी उपयोगिता के कारण यह कृति विद्वत्–जगत में प्रचुर रूप में समादृत हुयी।

कीर्ति–शेष डॉ0 ज्योति प्रसाद जैन को अनेक विद्वानों की कृतियों पर अंग्रेजी व हिन्दी में सारगर्भित सम्पादकीय अथवा प्रधान सम्पादकीय एवं

प्राक्कथन लिखने का श्रेय भी प्राप्त है, जिनमें भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित आचार्य वट्टकेर विरचित **मूलाचार**, महाकवि पुष्पदंत विरचित **महापुराण (प्रथम भाग)**, पण्डित प्रवर आशाधर कृत **धर्मामृत (सागार)** व **धर्मामृत (अनागार)**, आचार्य नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती विरचित **गोम्मटसार (जीव काण्ड)** और पं0 बाल चंद्र शास्त्री के **षट्खण्डागम परिशीलन** में प्रधान सम्पादकीय उल्लेखनीय हैं। सन् 1991 में जैन सिद्धान्त भवन, आरा, से प्रकाशित मुनि केशराज कृत **जैन रामायण "राम–यशो–रसायन–रास"** में सम्पादकीय एवं सन् 1979 में वीर सेवा मंदिर, दिल्ली, से प्रकाशित बालचंद्र सिद्धांतशास्त्री कृत **जैन लक्षणावली (तृतीय भाग)** में आमुख भी विशेष उल्लेखनीय हैं।

श्रद्धेय डॉ0 साहब ने अखिल भारतर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद द्वारा सन् 1974 में डॉ0 नेमिचंद्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य द्वारा रचित चार खण्डों वाली **तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा** ग्रन्थावली की तैयार पाण्डुलिपि के वाचन द्वारा अनेक बहुमूल्य सुझाव देकर उसे उपयोगी बनाने में सराहनीय भूमिका अदा की। सन् 1975 में भगवान महावीर के 2500 वें निर्वाणोत्सव पर भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा अंग्रेजी व हिन्दी दोनों भाषाओं में तीन खण्डों में प्रकाशित **जैन कला एवं स्थापत्य (Jaina Art and Architecture)** का सम्पादन भूतपूर्व महानिदेशक, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, श्री अमलानंद घोष द्वारा किया गया, किन्तु इसी दौरान 1973 में श्री घोष के एक वर्ष के लिये इण्डोनेशिया प्रवास पर जाने के समय जैन कला मर्मज्ञ डॉ0 ज्योति प्रसाद जैन ने प्रथम खण्ड के कतिपय अध्यायों की समालोचना–सम्पादन किया और 'जैन कला का उद्गम और उसकी आत्मा' शीर्षक से चौथा अध्याय स्वयं लिखकर ग्रन्थ माला की गरिमा में वृद्धि की।

डॉ0 साहब ने प्राचीन प्राकृत ग्रंथ **झाणाझयणं** का अंग्रेजी अनुवाद भी किया, जो सन् 1964–65 में **Voice of Ahimsa** में धारावाहिक रूप में प्रकाशित किया गया।

पूज्य डॉ0 साहब ने अनेकों विद्वानों की सहस्राधिक पुस्तकों की अत्यन्त विश्लेषणात्मक समीक्षा भी की है, जो समय–समय पर विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुयी। तत्कालीन समस्त जैन पत्र–पत्रिकाएं डॉ0 साहब की चमत्कारिक लेखनी का स्पर्श कर गर्व का अनुभव करती थीं। डॉ0 साहब गद्य के साथ–साथ पद्य–लेखन में भी कुशल थे। आपने अनेक कविताएं, सेहरे व आध्यात्मिक पद्य भी लिखे, जिनमें से **वीतराग स्वरूपं**

और **जय महावीर नमो** विशेष उल्लेखनीय हैं। पूज्य पिता जी, 'सम्पादक सरताज' श्री रमा कान्त जैन जी, अक्सर बताते थे कि उनके श्रद्धेय पिता डॉ0 साहब ने कहानियां भी लिखी हैं व एक उपन्यास भी लिखा है, जो अप्रकाशित हैं। डॉ0 साहब की वार्ताएं आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से भी प्रसारित हुयीं, जिनमें उनके महाप्रयाण से कुछ माह पूर्व 24—01—1988 को प्रसारित वार्ता **'नदिया एक, घाट बहुतेरे'** का विशेष उल्लेख अपेक्षित है। डॉ0 साहब नियमित देव—दर्शन, स्वाध्याय, धार्मिक चर्चा—गोष्ठी एवं शास्त्र प्रवचन करते थे। जैन पर्यूषण—पर्व के अवसर पर जीवन—पर्यन्त आपने लखनऊ के चारबाग, चौक आदि विभिन्न जैन—मंदिरों में अपने विद्वत्ता—पूर्ण शास्त्र—प्रवचनों से समाज को धर्म के मार्ग पर चलकर सद्गुणों को व्यावहारिक रूप में अपनाने की प्रेरणा दी।

कीर्ति—शेष डॉ. साहब अपने अध्ययन—लेखन व्यसन के बीच समाज की अनेकों साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक संस्थाओं के मार्ग—दर्शन हेतु भी पर्याप्त समय निकाल लेते थे। वे भारतीय ज्ञानपीठ के न्यासी सदस्य, वैशाली के प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान के पार्षद, नागरी प्रचारिणी सभा (आगरा) के सक्रिय सदस्य, स्याद्वाद महाविद्यालय (वाराणसी) के उपाध्यक्ष, देव कुमार प्राच्य शोध संस्थान (आरा) के सदस्य, श्री जैन सिद्धान्त भवन (आरा) के कार्यकारिणी सदस्य, जैन साहित्य शोध संस्थान (आगरा) के परामर्शदाता, वीर सेवा मन्दिर 'युगवीर' ट्रस्ट के न्यासी सदस्य, अखिल विश्व जैन मिशन के प्रधान संचालक, श्रमण साहित्य संस्थान (दिल्ली) के परामर्शदाता, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद के कार्यकारिणी सदस्य, दिगम्बर जैन महासमिति के सदस्य, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद की पुरस्कार समिति के सदस्य, उ.प्र. दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के कार्यकारिणी सदस्य, जैनधर्म प्रवर्द्धिनी सभा (लखनऊ) के उपसभापति, जैन मिलन (लखनऊ) के संरक्षक, अग्रवाल सभा (लखनऊ) के कार्यकारिणी सदस्य, सर्व धर्म मिलन (लखनऊ) के सदस्य, और जैनालॉजिकल रिसर्च सोसाइटी के परामर्शदाता रहे थे। डॉ. साहब तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., के संस्थापक—सदस्य एवं उसकी समस्त शोध—प्रवृत्तियों के जीवन—पर्यन्त मानद निदेशक रहे।

अपनी शोध—अनुसन्धान प्रवृत्ति के कारण ही आपने अपने आवास **'ज्योति निकुंज'** में एक अच्छा खासा पुस्तकालय स्थापित कर लिया था। आपकी प्रेरणा से ही जैन विषयों पर अनुसंधान करने वाले शोधार्थियों को प्रायः महसूस होने वाली कमी को पूरा करने के उद्देश्य से तीर्थंकर

महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., के तत्वावधान में एक **शोध–पुस्तकालय** की स्थापना भी की गयी। डॉ. साहब का हमेशा यही निर्देश रहता था कि पुस्तकालय में समस्त जैन आम्नायों का साहित्य और जैनेतर साहित्य भी रखा जाय ताकि आने वाले शोधार्थी सम्यक् रूप से विषय का तुलनात्मक अध्ययन कर सकें।

डॉक्टर साहब ने यह भी महसूस किया था कि प्रायः जैन समाज में पत्र–पत्रिकाओं के किसी–न–किसी संस्था, संगठन, व्यक्ति, अथवा विचारधारा से संबद्ध होने के कारण वे स्वतंत्र चिन्तन–लेखन को प्रोत्साहित नहीं कर पाती हैं। विशेषकर शोध–अनुसंधान के क्षेत्र में यह स्थिति विषय के तथ्य–सापेक्ष प्रस्तुतिकरण की दिशा में सबसे बड़ी बाधा है। **अतः आपने तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., के तत्वावधान में शोध के प्रतिमान को प्रदर्शित और स्थापित करने वाली शोध–पत्रिका 'शोधादर्श' का प्रकाशन अपने सम्पादन में प्रारम्भ किया, जो पूर्णतः स्वतंत्र चिन्तन–लेखन को प्रोत्साहित करते हुए समाज में अपना एक विशिष्ट स्थान बनाये हुए है।**

श्रद्धेय डॉ. साहब का लेखन–कार्य जीवन–पर्यन्त पूर्णतः स्वान्तः सुखाय रहा। कभी भी वे श्रेय लेने की दौड़, पुरस्कार, अभिनन्दन–ग्रंथ, स्मृति–ग्रंथ आदि के चक्कर में नहीं पड़े। वे **'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेशु कदाचन्'** सिद्धान्त को मानने वाले थे और सदैव अपने कर्म के प्रति समर्पित व दृढ़–निश्चयी रहे, फल की वे कदापि चिन्ता नहीं करते थे, इसीलिए सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री ने डॉ. साहब को **गीता** के **'स्थिति–प्रज्ञ'** की संज्ञा दी थी। आपने अपनी अल्प बचत के एक हिस्से से अपने शोध–लेखन की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अपना एक निजी ट्रस्ट बनाया था। यदा–कदा भूले–भटके कोई सुधी पाठक पुस्तक के सदुपयोग मूल्य पत्रम्–पुष्पम् को गल्ती से उन्हें भेज देता था तो वे उसे निर्माल्य मानकर अपने उसी ट्रस्ट में साहित्यिक उद्देश्य में लगा देते थे, अपने लिये कुछ न रखते थे। इसीलिये मैंने पूज्य पितामह डॉक्टर साहब को आजीवन अपने अध्ययन–कक्ष में वही पुराने तख्त व मेज पर किताबों–कागज के पन्नों के ढेर से घिरे सिर्फ बनियान और धोती पहने और ऊपर वही रो–रोकर चलते पंखें के साथ साहित्य–साधना में लीन देखा। इन अभावों में भी उन्हें किसी श्रेष्ठि या नेता के समक्ष अपने स्वाभिमान व लेखंनी का समझौता करते मैंने कभी नहीं देखा, लेकिन अपने

पुरुषार्थ की सफलता का तेज सदैव उनके चेहरे को ज्योतिर्मय बनाये रखता था।

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति–लब्ध विद्वान मनीषी होने के बावजूद आप में अहंकार लेश मात्र न था। आपका व्यवहार अत्यन्त सरल व सादगीपूर्ण था। मैंने प्रायः देखा था कि लखनऊ चारबाग मंदिर के ठीक सामने स्थित शोध पुस्तकालय कक्ष में दर्शन–पूजन के पश्चात् वे नियमित शास्त्र प्रवचन किया करते थे। उसी परिसर में मुन्ने लाल कागजी जैन धर्मशाला भी थी, अधिकांशतः जैनी भाई यहाँ ठहरने आते थे, जब भी कोई अजनबी व्यक्ति या अपरिचित चेहरा उन्हें दृष्टिगत होता था, वे स्वयं उसे बुलाकर अपने पास बैठा लेते और उसका परिचय प्राप्त करते। साथ ही, कोई कठिनाई होने पर नजदीक स्थित अपने आवास पर आने का निमंत्रण तक दे आते। वे बच्चों और युवाओं को सदैव अपने धर्म–संस्कृति के बारे में पठन–लेखन के लिए प्रोत्साहित करते रहते थे। उनकी इसी सहयोगात्मक एवं प्रेरणादायी प्रकृति के कारण उनके बिना किसी विश्वविद्यालय से संबद्ध रहते हुए भी अनेको शोधार्थियों ने उनके निर्देशन का लाभ उठाकर जैन विषयों पर अपने शोध–प्रबंध पूर्ण किये।

व्यक्तिगत व्यवहार में इतने सरल और सहयोगी होने के बावजूद वे अपने चिन्तन व लेखन में पूर्णतः निर्भीक, स्वतंत्र एवं निष्पक्ष थे। समाज में दृष्टिगत विकृतियों पर खुल कर चर्चा करते थे किन्तु आपकी भाषा इतनी संयमित और तर्क–संगत होती थी कि जीवनपर्यंत वे किसी वाद–विवाद का अंग नहीं बने। सभी आम्नायों के विद्वानों की विचार–गोष्ठियों का केन्द्र उनकी लखनऊ स्थित कर्मभूमि **ज्योति निकुंज** बना रहता था।

भारतीय इतिहास, साहित्य और जैन–विद्या के क्षेत्र में श्रद्धेय डॉ0 साहब के अप्रतिम अवदान हेतु दिनांक 29–04–1958 को अखिल विश्व जैन मिशन के भोपाल अधिवेशन में उन्हें **इतिहास–रत्न**, जनवरी 1974 में वीर निर्वाण भारती द्वारा मेरठ में **विद्यावारिधि** तथा 12–02–1979 को अनन्त–ज्योति विद्यापीठ, लखनऊ, द्वारा **इतिहास–मनीषी** की उपाधियों से एवं 14–12–1986 को अहिंसा इंटरनेशनल द्वारा **डिप्टीमल जैन पुरस्कार** से दिल्ली में, सम्मानित किया गया।

6 फरवरी 2012 को कीर्ति–शेष डॉ0 साहब द्वारा स्थापित 'ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट', द्वारा उनके तपोकुंज **ज्योति निकुंज** में उनके जीवन की सादगी के दृष्टिगत उनका **जन्म–शताब्दी समारोह** सादगी पूर्ण तरीके से मनाया गया। समारोह के अध्यक्ष केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, लखनऊ,

के प्रोफेसर डॉ0 विजय कुमार जैन ने अपने संबोधन में अत्यंत खेद के साथ एक तपस्वी साहित्यकार की पीड़ा व्यक्त करते हुए कहा कि **डॉक्टर साहब की जन्म–शताब्दी कार्यक्रम के आयोजन का दायित्व जैन समाज का था, जिसका निर्वाह उनके परिवार द्वारा किया गया है।** आज भी देश–विदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों, पुस्तकालयों और शोधार्थियों द्वारा **युग–पुरुष डॉ0 ज्योति प्रसाद जैन** की पुस्तकों के मांग–पत्र भेजे जाते हैं और उनके कृतित्व की प्रामाणिकता को स्वीकार कर उनके अनुसंधान–निष्कर्षो की भूरि–भूरि सराहना की जाती है, तब बरबस महाकवि मीर की यही पंक्तियां स्मरण हो आती हैं –

पत्ता–पत्ता, बूटा–बूटा हाल हमारा जाने है।
जाने न जाने गुल ही न जाने, बाग तो सारा जाने है।।

युवा इतिहासकारों–शोधार्थियों से आग्रह है कि वे भी **युग–पुरुष डॉ. ज्योति प्रसाद जैन जी** की भांति बिना किसी जाति–धर्म–पंथ–आम्नाय भेद के उपलब्ध समस्त स्रोतों का अधिकाधिक शोध–खोज करके पिष्टपेषण–निरपेक्ष और तथ्य–सापेक्ष सदुपयोग करते हुए भारतीय इतिहास और संस्कृति के विविध पहलुओं को समृद्ध करें। **ज्योति निकुंज** एवं **शोधादर्श** परिवार भी डॉक्टर साहब के इन्हीं पद–चिन्हों का अनुसरण करने हेतु कृत–संकल्प है।

– अंशु जैन 'अमर'

गुणानुवादः

ज्योति के समान तेजपुंज से सुदीप्त थे
ऋजु सरल स्वभाव के प्रसाद गुणस्वरूप थे
याकि ज्योतिरूप ज्ञान के प्रसादरूप थे
जैन धर्म के महर्षि ज्योति प्रसाद जैन थे
प्रेरणा सदैव दी ज्ञानप्राप्ति की हमें
ज्ञान के अगाध सिन्धु से दिये रतन हमें
अन्धकार से हमें उबार ज्योति से किया
दीप्तिमान, नित्य प्रेम में हमें डुबो दिया
उन्हें सदैव हम विनम्र सिर झुका स्मरण करें
सदैव वे विकास का प्रकाशमान पथ करें

– काशीनाथ गोपाल गोरे

'वीर निर्वाण भारती' द्वारा 'विद्यावारिधि' सम्मान

डॉक्टर साहब की एक सबसे बड़ी विशेषता यह भी थी कि वह मान–सम्मान की भावना से बहुत दूर थे।

बात 1974 की है। भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव की सारे देश में विविध कार्यक्रमों के साथ तैयारियां चल रही थीं। राष्ट्रसंत विद्यानन्द जी मुनि के आशीर्वाद से मेरठ में **वीर निर्वाण भारती** की स्थापना इस उद्देश्य से की गयी थी कि देश के मूर्धन्य जैन विद्वानों का सामाजिक स्तर पर अभिनन्दन किया जाये एवं उन्हें पुरस्कृत किया जाये। मैं **वीर निर्वाण भारती** का सचिव था। विद्यानन्द जी ने चर्चा के दौरान यह संकेत दिया कि जैन इतिहास के क्षेत्र में डॉ. ज्योति प्रसाद जी लखनऊ वालों का विशेष योगदान रहा है अतः **वीर निर्वाण भारती** द्वारा यदि डॉक्टर साहब का अभिनन्दन किया जाये तो अच्छा होगा। मैं विशेष रूप से लखनऊ गया। डॉ. ज्योति प्रसाद जी **वीर** के प्रधान सम्पादक थे और मैं उनके मार्गदर्शन में सम्पादक की जिम्मेदारी सम्हाल रहा था। मैने उनसे कहा कि **वीर निर्वाण भारती** उनका अभिनन्दन एवं उनको पुरस्कृत करना चाहती है। यह कार्यक्रम विद्यानन्द जी मुनि महाराज के सान्निध्य में होगा। पहले तो डॉक्टर साहब ने अभिनन्दन के प्रति अरुचि दिखाई परन्तु विद्यानन्द जी महाराज के सान्निध्य में कार्यक्रम होने से उनके दर्शन एवं उनके साथ तात्विक चर्चा का अवसर प्राप्त होने के कारण डॉक्टर साहब ने मुझे अपनी स्वीकृति प्रदान की परन्तु उनकी बात से यह स्पष्ट झलक रहा था कि वे किसी ऐसे अभिनन्दन या सम्मान के प्रति रुचि नहीं रखते थे। विद्यानन्द जी मुनि महाराज के साथ डॉक्टर साहब की जो भी चर्चा हुई उसके पश्चात् **विद्यानन्द जी** के मुख से यही निकला कि **वास्तव में आप विद्यावारिधि हैं। आपको जैन इतिहास के बारे में जो जानकारी है वह दुर्लभ है।**

आज डॉक्टर साहब हमारे बीच नहीं हैं परन्तु उनके कार्य, उनकी कृतियां हम सब का मार्गदर्शन करती रहेंगी।

— राजेन्द्र कुमार जैन

1332, पी.एल. शर्मा रोड, मेरठ–250001

"अहिंसा इन्टरनेशनल" द्वारा सम्मान

विश्व शान्ति, अहिंसा, शाकाहार, जैन इतिहास, धर्म एवं संस्कृति के क्षेत्र में कार्यरत प्रतिभावान विद्वानों का इस दिशा में उनके द्वारा किये गये कार्य का समादर करने और उनको साहित्य निर्माण के लिये प्रोत्साहन देने हेतु नई दिल्ली की **अहिंसा इन्टरनेशनल** संस्था ने **डिप्टीमल जैन स्मृति पुरस्कार** की वर्ष 1986 में स्थापना की और इस पुरस्कार के लिये सुपात्र का चयन करने हेतु प्रसिद्ध विधिवेत्ता डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी की अध्यक्षता में एक निर्णायक–मण्डल गठित किया, जिसमें उनके अतिरिक्त गांधीवादी विद्वान श्री यशपाल जैन, वरिष्ठ पत्रकार श्री अक्षयकुमार ज़ैन, भारतीय ज्ञानपीठ के परामर्शदाता श्री लक्ष्मीचंद्र जैन, पुरस्कार नियोजक श्री आदीश्वरलाल जैन, संस्था के अध्यक्ष श्री मुल्खराज और महासचिव श्री सतीशकुमार जैन थे। उक्त निर्णायक मण्डल ने एकमत से डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, लखनऊ, को भारतीय इतिहास एवं संस्कृति तथा जैनविद्या के क्षेत्र में उनकी समर्पित दीर्घकालीन महती सेवाओं और विपुल कृतियों के लिये उक्त पुरस्कार प्रदान कर अपने को गौरवान्वित करने का सुखद निर्णय लिया। अतएव दिनांक 14 दिसम्बर, 1986, रविवार, को फिक्की सभागार, नई दिल्ली, में एलाचार्य मुनि श्री विद्यानन्द जी के सान्निध्य में प्रातः 10 बजे से एक भव्य समारोह का आयोजन किया गया।

मंगलाचरण एवं दीप प्रज्जवलित करके कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। संस्था के अध्यक्ष श्री मुल्खराज ने अभिनन्दनीय विद्वान, प्रमुख अतिथि तथा सभी समागत का स्वागत किया। निर्णायक मण्डल के अध्यक्ष **डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी** ने सम्मानित विद्वान एवं प्रमुख अतिथि के प्रति अपनी अभ्यर्थनाएं तथा पुरस्कार नियोजक, निर्णायक मण्डल के सदस्यों और समुपस्थित समुदाय को साधुवाद प्रस्तुत करने के साथ उक्त सम्मान योजना के औचित्य पर प्रकाश डाला। डॉ. जैन की अभ्यर्थना करते हुए **डॉ. सिंघवी** ने कहा – "इतिहास का क्षेत्र इतना विस्तृत, व्यापक और समय की अनन्तता से परिव्याप्त है कि कोई भी इतिहासकार उसमें पूरी तरह उतर नहीं सकता, न कोई ऐसा दावा ही कर सकता है। सैकड़ों वर्षो के अथक एवं सुगठित एकल अथवा सामूहिक प्रयासों के उपरान्त भी बहुत कुछ अछूता रह जाता है। **डॉ. ज्योति प्रसाद जी ने अपनी कृतियों में वास्तव में इसी को छूने, उघाड़ने और परखने की जो दृष्टि दी है, वह अभिनव है, अब तक किसी अन्य इतिहासकार द्वारा अपनाई नहीं गई थी।** डॉ. जैन जैसे इतिहासकारों द्वारा प्रदत्त प्रेरणा इतिहास के गतिचक्र को उचित रीति से समझने में सहायक होगी। उनकी जीवनभर की साधना और उससे उभर कर

आया उनका विपुल एवं महती कृतित्व ऐसा रहा है जिसने इस सम्मान हेतु निर्णायक मण्डल द्वारा सुपात्र के चयन को सरल बना दिया। डाक्टर साहब का सम्मान करके वे अपना ही सम्मान कर रहे हैं।"

प्रसिद्ध समाजसेवी स्व. श्री डिप्टीमल जैन के सुपुत्र श्री आदीश्वरलाल ने डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की प्रशस्ति का वाचन किया। दिल्ली के महापौर और समारोह के प्रमुख अतिथि **श्री जगप्रवेशचन्द्र** ने डॉ. जैन को माल्यार्पण पूर्वक पुरस्कार राशि, रजत प्रशस्ति एवं शाल भेंट किया। मुनिश्री विद्यानन्द जी को देखकर महात्मा गांधी की याद ताजा करते हुए उन्होंने कहा कि "जैनधर्म के सिद्धान्त सार्वभौम और व्यापक हैं। आज भी हम कह सकते हैं कि विश्व में अहिंसा और शान्ति का वातावरण बनाने की दिशा में जैन धर्म का सिद्धान्त ही मार्गदर्शक है। गांधी जी ने भी इसी रास्ते को अपनाया था।" पं. ताराचन्द प्रेमी ने डॉ. जैन के प्रति अपने भावभीने उद्‌गारों का काव्यमय वाचन किया।

अभिनन्दन के लिये आभार व्यक्त करते हुए **डॉ. ज्योति प्रसाद जैन** ने कहा कि वह सारे जीवन इतिहास के विद्यार्थी रहे हैं। उन्होंने विश्व इतिहास के परिप्रेक्ष्य में भारतीय इतिहास का अध्ययन किया है और जैन धर्म व संस्कृति के इतिहास को भारतीय इतिहास का अभिन्न अंग माना है। राष्ट्रीय एकीकरण में रही इसकी प्रमुख भूमिका पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि इसकी उपेक्षा करने पर हमारा अपने देश के इतिहास और संस्कृति का ज्ञान अधूरा रह जायेगा। उन्होंने कहा कि प्रस्तुत सम्मान उनका व्यक्तिगत सम्मान नहीं है, अपितु यह उन सभी का सम्मान है जो विद्या के क्षेत्र में सेवारत हैं।

पूज्य मुनि श्री एलाचार्य विद्यानन्द जी ने डॉ. ज्योति प्रसाद के प्रति अपने उद्‌गार प्रकट करते हुए कहा कि वह 'ज्योति' अर्थात् स्वयं प्रकाश हैं और अपनी साधना एवं कृतित्व द्वारा ज्ञान का आलोक फैला रहे हैं। इन्होंने अपनी लेखनी से राष्ट्र के इतिहास सम्बन्धी ज्ञान भण्डार को समृद्ध किया है और साम्प्रदायिक सौहार्द की भावना को पुष्ट किया है। यदि ऐसे साम्प्रदायिक सद्‌भाव उत्पन्न करने वाले इतिहासकार, साधु और सन्त इस देश में नहीं हुए होते तो असामाजिक तत्व और आतंकवादी कभी का हम सब को विनष्ट कर देते।

आयोजन के संयोजक **श्री सतीश कुमार जैन** ने डॉ. ज्योति प्रसाद जी की बौद्धिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों तथा कृतियों का परिचय देते हुए इस बात पर हर्ष व्यक्त किया कि उनके पुत्रद्वय (डॉ. शशि कान्त एवं रमा कान्त) भी अपने पिताश्री के चरण चिन्हों पर चलते हुए इतिहास एवं संस्कृति सम्बन्धी लेखन द्वारा साहित्य सेवा कर रहे हैं।

— रमा कान्त जैन

इतिहास–मनीषी की अनन्त यात्रा

– डॉ. अमर पाल सिंह

सराय हस्ती है कूच की ज़ा
हर एक को ख़ौफ़ दम ब दम है।
नसीम जागो कमर को बांधो
उठाओ बिस्तर कि रात कम है।।

सराय से कूच का समय अन्ततः आया और वे कूच कर गये। शनिवार 11 जून 1988 ई. को लखनऊ में अपनी लोक यात्रा समाप्त कर इतिहास–मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन अनन्त पथ के राही बने।

अपने पीछे वे अनेक श्लाघनीय कार्य प्रेरक स्मृतियां छोड़ गये और साथ ही अपरिहार्य रिक्तता भी जिसका अनुभव यहां के लोग करते हैं। समाज में वे विशेष आकर्षण के केन्द्र बने हुए थे, उनके अभाव से लखनऊ में उदासी छा जाना स्वाभाविक है –

होता है हर मकां को मक़ी से शरफ़ असद
मजनू जो मर गया है तो जंगल उदास है।

दिवंगत ज्योति प्रसाद जैन का जन्म जनपद मेरठ (अब बागपत) में ग्राम ख्वाजा नगला में 6 फरवरी 1912 ई. को हुआ था। उनकी शिक्षा मेरठ तथा आगरा में हुई। आगरा विश्वविद्यालय ने **प्राचीन भारत के इतिहास के जैन स्रोत** विषय पर उनके शोध–प्रबन्ध पर 1956 ई. में पी–एच. डी. की उपाधि प्रदान की थी। उन्होंने अपने जीवन में आजीविका के लिए कई प्रकार के काम किये, अध्यापक भी रहे और राजकीय सेवा भी की। किन्तु अध्ययन, शोध तथा लेखन के प्रति उनका विशेष अनुराग रहा और उनके जीवन का अधिकांश समय इसी क्षेत्र में काम करने में व्यतीत हुआ।

उनके विचार राष्ट्रीय थे। सन् 1928 ई. में कांग्रेस सेवा दल की सदस्यता स्वीकार कर वे राष्ट्रीय आंदोलनों में सम्मिलित हो गये। समाज सुधार के आंदोलन में वे आजीवन लगे रहे। राष्ट्र भाषा हिन्दी के वे प्रबल समर्थक थे और उसकी सेवा निरन्तर करते रहे। 1958–72 में वे उत्तर प्रदेश शासन के जिला गजेटियर्स विभाग में अधिकारी रहे। उन्होंने गजेटियर्स लेखन की रूपरेखा बनायी और प्रायः 15 जनपदों के गजेटियर्स के इतिहास अध्याय को स्वयं लिखा। उनके द्वारा सुनिश्चित प्रणाली पर गजेटियर्स, के लेखन और प्रकाशन का कार्य आज भी हो रहा है।

सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में डॉ. जैन विशेष सक्रिय रहे। इनमें वे निस्पृह भाव से सेवा कार्य करते रहे। जहां तक उनसे संभव हुआ योगदान करते रहे। 'परोपकाराय सतां विभूतयः' की भारतीय परम्परा उनके सम्बन्ध में पूर्णतः चरितार्थ होती है। वे अनेक अखिल भारतीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं से सम्बद्ध रहे। वे मूर्तिदेवी ग्रन्थ माला के सम्पादक थे और भारतीय ज्ञानपीठ के न्यासी सदस्य। वैशाली के प्राकृत शोध संस्थान के वे पार्षद तथा वाराणसी के स्याद्वाद महाविद्यालय के उपाध्यक्ष थे। तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के वे संस्थापक सदस्य थे। शोधकार्य के लिए उन्होंने स्वयं भी एक न्यास की स्थापना लखनऊ में की और अपना निजी पुस्तक संग्रह उसे समर्पित कर दिया। उनका कार्य क्षेत्र जैन विद्या तथा उसके संदर्भ में सम्पूर्ण भारतीय विद्या का अध्ययन, चिन्तन–मनन तथा लेखन रहा है।

अनेक संस्थाओं ने उन्हें सम्मानित कर अपने को गौरवान्वित किया। लखनऊ में श्री जैन धर्म प्रवर्धिनी सभा ने 1957 ई. में उनका सार्वजनिक अभिनन्दन किया तथा अखिल विश्व जैन मिशन के भोपाल अधिवेशन में उन्हें 'इतिहास रत्न' की मानद उपाधि दी गयी। मेरठ में सन् 1974 ई. में वीर निर्वाण भारती द्वारा उन्हें 'विद्यावारिधि' की उपाधि प्रदान की गयी। लखनऊ में 1979 ई. में उन्हें 'इतिहास–मनीषी' के सम्मान से सम्मानित किया गया। दिल्ली में 1986 ई. में उन्हें 'अहिंसा इण्टरनेशनल' द्वारा सम्मानित किया गया।

भारतीय इतिहास, संस्कृति, इतिहास के जैन स्रोत तथा जैन धर्म पर डॉ. ज्योति प्रसाद जैन अधिकारी विद्वान थे। इस क्षेत्र में उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई। उनके ग्रंथों की संख्या 80 से अधिक है जिनमें कई अत्यधिक महत्व के हैं। **प्राचीन भारतीय इतिहास के जैन स्रोत** तथा **भारतीय इतिहास : एक दृष्टि**, उनके इन दोनों ग्रन्थों का विद्वानों ने बहुत आदर किया। उन्होंने एक सहस्र से अधिक लेख और शोधपत्र प्रकाशित तथा प्रसारित किये। 1954–83 में उन्होंने **जैन संदेश** के **शोधांकों** का सम्पादन किया और 51 शोधांक प्रकाशित किये। उनकी कुछ महत्वपूर्ण कृतियां अप्रकाशित है।

प्रायः चार दशक पूर्व डॉ. जैन लखनऊ आये और फिर यहीं के हो गये। चारबाग में **ज्योति निकुंज** उनका स्थायी निवास बन गया। तभी मेरा संपर्क उनसे हुआ जिसने शीघ्र आत्मीयता का रूप ले लिया। अपने जीवन के अन्तिम पंद्रह बीस वर्ष डॉ. जैन ने गहन अध्ययन और लोक सेवा

में बिताये। सबकी सहायता करना, सबके किसी काम आना, यही उनका ध्येय था। अन्तिम समय तक वे लोक सेवा में लगे रहे। उनका जीवन सन्तों के समान था जो स्वयं तीर्ण होते हैं और दूसरों का भी तारण करते हैं –

शान्ता महन्तो निवसन्ति सन्तो
बसन्तवल्लोकहितंचरन्तः।
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जना–
नहेतुनान्यानपितारयन्तः।।

वृद्धजनों के भाई साहब, नवयुवकों के भाई साहब और बालकों के भाई साहब – वे सभी के भाई साहब थे। सब उनको भाई साहब कहकर पुकारते थे। वयोवृद्ध डॉ. जैन कितने सरल स्वभाव के थे, इसी से पता लग जाता है। धर्म के विषय पर उनका पूर्ण अधिकार था। जैन समाज के वे केन्द्र बिन्दु बने हुए थे। जैनेतर लोगों से समान रूप से उनकी घनिष्ठता थी।

डॉ. जैन के पीछे उनका भरा पूरा परिवार तथा सुहृद मंडल है। इन लोगों ने शिक्षा तथा अध्ययन–स्वाध्याय के क्षेत्र में उनके कार्य को संचालित करते रहने का संकल्प किया है। मानवीय गुणों से सम्पन्न, सदाचारी, धर्माचारी, लोकहित में संलग्न डॉ. जैन का व्यक्तित्व अद्भुत था। ऐसे लोग क्वचित् समाज में जन्म लेते हैं –

किसी में रंगो बू ऐसा न पाया
चमन में गुल बहुत गुजरे नज़र से।

....

डॉ. अमर पाल सिंह
अवकाश–प्राप्त सूचना अधिकारी, भारत सरकार, थे।
(13 अगस्त, 2005, को स्वयं भी स्मृति–शेष हो गये।)

श्रद्धांजलि सभा

इतिहास–मनीषी विद्यावारिधि डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के महाप्रयाण पर शनिवार, दिनांक 25 जून, 1988, को सन्ध्या समय ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में अनन्त–ज्योति विद्यापीठ के तत्वावधान में और प्रमुख साहित्यकार पद्म–भूषण पं. अमृत लाल नागर की अध्यक्षता में लखनऊ के विद्वत् समाज की एक सार्वजनिक सभा हुई।

श्री नलिन कान्त जैन, सचिव, अनन्त–ज्योति विद्यापीठ, ने प्रास्ताविक के रूप में कहा – "पूज्य बाबा जी जिनके बिना इस प्रांगण में किसी सभा या गोष्ठी का आयोजन सोचा भी नहीं जा सकता था आज हमारे बीच नहीं हैं। जिस संस्था के तत्वावधान में यह सभा आयोजित की गई है वह अनन्त–ज्योति विद्यापीठ उन्हीं की सत्प्रेरणा, मार्गदर्शन और आशीर्वाद का प्रतिफल है। वह इस विद्यापीठ के वास्तव में जनक और शास्ता थे, संरक्षक थे, अध्यक्ष थे और अब हमको उनके दिशा–निर्देश के बिना कार्य सम्पादन करना पड़ेगा, यह हम सभी के लिए एक संताप का विषय भी है और इस बात का उद्बोधन भी है कि उनके आशीर्वाद से हम उनकी अपेक्षानुसार इसके कार्यक्रमों को आगे बढ़ाते रहें।

पूज्य बाबा जी आज से दो सप्ताह पूर्व आज के ही दिन प्रायः इसी समय हम से रूठकर चले गये। उनका अगाध स्नेह मुझ पर था, वह मुझे प्रायः विचलित करता है। लखनऊ के विद्वत् समाज की आकांक्षाओं के अनुरूप उस विशिष्ट विद्वान इतिहास–मनीषी के प्रति श्रद्धांजलि सभा का आयोजन कर आज विद्यापीठ अपने आवश्यक कर्तव्य का निर्वहन कर रही है। इस सभा में आप सभी ने आने की जो उत्सुकता व्यक्त की वह प्रबुद्ध समाज की संस्कृति के अनुरूप है"।

कान्त बाल केन्द्र की अध्यापिकाओं द्वारा डॉक्टर साहब के प्रिय "भावना गान", "णमोकार मन्त्र", "महावीराष्टक", कबीरदास के पद "झीनी–झीनी चदरिया", रवीन्द्रनाथ टैगोर के गीत "मृत्यु में अमरत्व" का सस्वर गायन किया गया। डॉ. साहब के वचनों का भी उन्हीं की वाणी में श्रवण किया गया।

तत्पश्चात् श्रद्धेय नागर जी ने डॉ. साहब के प्रति श्रद्धा दीप प्रज्ज्वलित किया और श्री अजित प्रसाद जैन ने ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट की ओर से तथा डॉ. अमर पाल सिंह ने अनन्त–ज्योति विद्यापीठ की ओर से डॉ. साहब के चित्र पर माल्यार्पण किया।

अपने अध्यक्षीय भाषण में **पं. अमृत लाल नागर** ने कहा – "डॉ. ज्योति प्रसाद जी मरते मर गये पर मरे नहीं, यह सही बात है। मनुष्य जितना काम कर जाता है वह काम रहता ही है और किसी–न–किसी रूप में आगे आने वाली

पीढ़ियों को बढ़ाता है। उनकी नष्ट होने वाली काया ने भी अपना अमृतोत्सव मनाया। वह पुण्यात्मा, धर्मात्मा और विद्वान थे। वह अपनी यशोकाया, कर्म सम्पत्ति और सबसे बड़ी बात यह है कि भगवान की कृपा से अपनी योग्य सन्तानें हमारे बीच छोड़ गये हैं जो उनके काम को नियमित आगे बढ़ाती रहेंगी।

भारतीय संस्कृति के तत्व का उनको जैसा ज्ञान था, जैसी सूक्ष्म पकड़ थी, वह कम लोगों में होती है। उनके अप्रकाशित बहुमूल्य रत्नों का प्रकाश में आना मानवीय व वैचारिक दृष्टि से अत्यंत उपयोगी है। उनके लेखों का संकलन सबसे पहले होना चाहिए। वे लगन भरे विद्वान थे, आध्यात्मिक निष्ठा के साथ कर्म करने वाले विद्वान।

ऐसे व्यक्ति जब तक बीच में होते हैं तब तक प्रायः अपना मूल्य गिराकर रहते हैं। परन्तु डॉ. साहब ऐसे सौभाग्यशाली थे कि अपने जीवन काल में भी अपने कर्म के प्रति अपना सम्मान देख कर ही गये। यह शोक सभा मेरे लिये आनन्द सभा हो जायगी यदि समाज के समृद्ध युवागण उनकी कृतियों को प्रकाशित कर उनके अर्जित ज्ञान को अमर कर दें।"

वरिष्ठ पत्रकार **श्री ज्ञानचंद जैन** बोले – "डॉ. ज्योति प्रसाद जी के सम्बन्ध में कुछ कहना मेरे लिये भारी पड़ रहा है। अभी उनके जन्म दिवस पर आयोजित गोष्ठी में उन्हें देखकर एक बार तो अवश्य ऐसा लगा था कि वह कहीं हमारे बीच अधिक दिन न रह पायें, लेकिन उनके स्वास्थ्य में सुधार हो गया था। उनके चले जाने से बड़ा आघात लगा। शरीर ने जब उनका साथ नहीं दिया तो उन्होंने उसका साथ छोड़ दिया।

उन्होंने इतना कार्य किया है कि एक संस्था भी नहीं कर सकती। और जितना उनका प्रकाशित साहित्य है उससे ज्यादा अप्रकाशित साहित्य है। साहित्य की कोई ऐसी विधा नहीं है जिसमें उन्होंने न लिखा हो।"

इलाहाबाद से आये वयोवृद्ध **पं. नर्मदेश्वर चतुर्वेदी** ने अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा – "एक आस्थावान जैन होते हुए भी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन निष्पक्ष और सामंजस्यवादी विचारों के थे। उन्होंने कभी किसी पक्ष को लेकर, उसका पक्षधर बन कर वहीं तक अपने को सीमित नहीं किया। अपने मन के दरवाजे को खुला रखना बहुत बड़ी बात है। बहुत से प्रश्न ऐसे थे जिनका ऐतिहासिक दृष्टि से ही समाधान हो सकता था। कभी–कभी तो बड़े मनोविनोद के ढंग से उन्होंने उन पक्षों को भी नहीं छोड़ा जिनको कि शायद साम्प्रदायिक दृष्टि से नहीं लिया जा सकता था।

वे एक ऐसे महापुरुष थे जिन्होंने ऐसी सामग्री हमें उपलब्ध कराई है जिसके प्रकाश में हम आगे बढ़ सकते हैं, अपना मार्ग निर्धारित कर सकते हैं।

उनका पार्थिव शरीर भले ही हमारे बीच न रहे, उनका यशः शरीर सदा रहेगा। जब तक हमारे मन में जिज्ञासा रहेगी उनका नाम अमर रहेगा।"

राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, लखनऊ के सेवानिवृत्त प्रधानाचार्य एवं जैन मिलन लखनऊ के अध्यक्ष **डॉ. पूरन चन्द्र जैन** ने कहा – "डॉ. साहब के बारे में, उनको श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कुछ शब्दों में कुछ कहना कठिन है। उनमें मानवता का गुण था, उनके सम्पर्क में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति उनका अनुयायी हो जाता था। यहां जैन समाज में, जैन मिलन की स्थापना में डाक्टर साहब का बहुत योगदान था। जैन मिलन लखनऊ के वह आजीवन संरक्षक रहे। वे सबको प्रोत्साहित करते थे। अपनी वार्ता द्वारा, कथन–उपदेश द्वारा दूसरों के अन्दर हृदय प्रभावी बातें उत्पन्न करते थे। जैन मिलन की बैठकों में धार्मिक क्विज़ का प्रोग्राम चलाया जाये, उसे उन्होंने प्रोत्साहित किया। वे निस्स्वार्थ समाज सेवी थे। उनमें गुणानुराग की भावना प्रचुर थी। स्व. बा. अजित प्रसाद जी के बारे में अनेकों बार उन्होंने कुछ करने को कहा। स्व. ब्र. शीतल प्रसाद जी के बारे में भी कुछ करने की याद दिलाते रहे। उनका कहना था पूर्वजों के गुणों का स्मरण करते–करते ही हम अपनी भावना को शुद्ध कर सकते हैं। अतः हम भी उनका गुणानुराग करें, उनके कृतित्व को प्रकाशित करें। यद्यपि उन्होंने नश्वर शरीर छोड़ दिया है, अपने कृतित्व के सहारे वह अमर रहेंगे।"

वयोवृद्ध विद्वान एवं सेवानिवृत्त उप सचिव, उ.प्र. शासन, **श्री आनन्द स्वरूप मिश्रा** ने कहा – "इस अवसर पर मुझे **गीता** का यह श्लोक

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंशसम्भवम्।।

स्मरण हो आया जिसमें भगवान ने अपनी विभूतियों का वर्णन किया है। उसी श्लोक का प्रमाण आज मुझे डॉ. ज्योति प्रसाद जी के जीवन में मिल गया। भगवान के तेज से ही डाक्टर साहब ने इस संसार में नाम अमर किया। उन्होंने प्रेरणा दी कि अन्य लोग भी उसी मार्ग पर चलें।"

श्री नरेश चन्द्र जैन (मंत्री, जैन मिलन लखनऊ, और उप सचिव, उ.प्र. शासन) ने बताया – "मेरा डॉक्टर साहब से सम्पर्क गत लगभग 30 साल से रहा है और मुझे डॉक्टर साहब से पुत्र सदृश स्नेह सदा मिला है। डॉ. साहब आध्यात्मिक क्षेत्र, विद्वत्ता व समाज सेवा के क्षेत्र में अद्वितीय थे। उनके अन्दर पीड़ा थी कि कोई व्यक्ति उनसे सीख ले जो कुछ ज्ञान उनके पास है। किसी व्यक्ति के जाने के बाद उसका मूल्य अधिक हो जाता है। समाज सेवा के कार्य में डॉ. साहब की पूर्ण रूचि थी। वह अपने सुझाव देते रहते थे और किसी आयोजन में किसी कारणवश सम्मिलित न हो पाने पर वहां क्या हुआ उसका विवरण जानने

की उत्सुकता उन्हें बनी रहती थी। हर क्षेत्र में उनका योगदान रहा। मुझको तो वाकई उनकी बहुत कमी मालूम पड़ रही है कि अब उनकी वाणी कहां सुनने को मिलेगी, कौन आगे मार्ग दर्शन करेगा? उनके कृतित्व को आगे बढ़ाने में भाई शशि कान्त जी व रमा कान्त जी तत्पर हैं। मैं वचन देता हूं कि डॉ. साहब के कार्य को आगे बढ़ाने में मैं भी अपना पूर्ण योग दूंगा।"

श्री काशीनाथ गोपाल गोरे, उप निदेशक, निर्वाचन, ने कहा – "सागर की गहराई देखने के लिए काफी गहरा गोता लगाना पड़ता है। उसके लिये तैरना आना जरूरी है। लेकिन हमारे जैसे पामरों को विद्या की गहराई में उतरना अत्यंत कठिन है और जो सागर की गहराई के समान विद्वान हैं उनके लिए कुछ कहना तो हमारे जैसे अज्ञानी के लिये बहुत कठिन है। फिर जो **ज्योति** हों उनके प्रकाश को सामने रखना तो बहुत ही कठिन है। ज्योति का प्रकाश हम किस प्रकाश से प्रकाशित करें, वह तो स्वयं प्रकाश है।

डॉ. साहब ऐसे थे जिनकी यशः काया में जरा–मरण का कोई भय ही नहीं है। वह तो आज भी विद्यमान हैं – अपनी कृतियों के रूप में, अपनी यादों, उपदेशों और प्रेरणा के रूप में। वह सदैव अमर रहेंगे। उनकी कृतियां हमारा मार्गदर्शन करती रहेंगी।"

श्री शैलेन्द्र रस्तोगी (सहायक निदेशक, राज्य संग्रहालय, लखनऊ) ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा– "डॉ. साहब अपने पक्ष का दुराग्रह नहीं करते थे। उन्होंने किसी पर अपनी बात लादने की कोशिश नहीं की। वह **सत्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं** की उक्ति चरितार्थ करते थे।"

श्रीमती मंजरी जैन, श्री रमा कान्त, श्रीमती बीना जिंदल और डॉ. महावीर प्रसाद जैन ने काव्य–सुमन प्रस्तुत किये।

पीठ–प्रमुख डॉ. शशि कान्त ने अपने भाव व्यक्त करते हुये कहा कि परिवार में जो प्रबुद्धता और विद्या–व्यसन है वह पूज्य पिताश्री डॉ. ज्योति प्रसाद जी के आशीर्वाद और प्रेरणा स्वरूप है। उन्होंने समागतवृन्द को आश्वासन दिया कि वह डॉ. साहब के कार्यो को आगे बढ़ाने में तत्पर रहेंगे।

अन्त में डॉ. साहब के अनुज, सेवानिवृत्त उप सचिव, उ.प्र. शासन, एवं समाज सेवी **श्री अजित प्रसाद जैन** (मंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.) ने शोकाकुल परिवार तथा अनन्त–ज्योति विद्यापीठ की ओर से सभी वक्ताओं और समागतवृन्द के प्रति आभार व्यक्त करते हुए

तथा डॉ. साहब के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये कहा – "पूज्य डॉ. साहब मेरे अग्रज और पितृतुल्य ज्येष्ठ थे। उनका मेरा साथ 70 वर्ष तक रहा जिसमें से 50–55 वर्ष तक हम लोग एक साथ ही रहे। मैं उनकी साधना का प्रत्यक्षदर्शी रहा हूं कि किस प्रकार विषम परिस्थितियों में भी केवल स्वान्तः सुखाय वह सतत अपनी साहित्य साधना में लगे रहे और किस प्रकार उन्होंने सफलता के उच्च शिखर प्राप्त किये। प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद कितनी कठोर साधना के पश्चात् समाज ने उन्हें **विद्यावारिधि, इतिहास–मनीषी** की उपाधियों से विभूषित किया – उनकी इतनी यशोकीर्ति फैली।

भारतीय इतिहास के जैन स्रोत, जो उपेक्षित थे, की ओर उन्होंने विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया और विद्वानों ने, इतिहासकारों ने एक स्वर से उन स्रोतों की महत्ता को स्वीकार किया। इतिहास के बहुत से प्रश्न उनसे हल हुए। भाई साहब वस्तुतः विद्यावारिधि थे। कोई ऐसी समस्या नहीं थी जिस पर उनके सुलझे हुए विचार तुरन्त उपलब्ध न हो जाते हों। जैन इतिहास, जैन संस्कृति और जैन दर्शन के ऊपर तो वह अथार्टी ही समझे जाते थे। किसी भी विश्वविद्यालय, महाविद्यालय से सम्बद्ध न होते हुए भी अनेक शोध विद्यार्थी उनसे मार्ग दर्शन प्राप्त कर लेने पर अपने को धन्य मानते थे। कितने ही शोधार्थियों ने उनके मार्गदर्शन में अपने शोध–प्रबन्ध पूरे किये और डिग्री प्राप्त की। लखनऊ विश्वविद्यालय के तो अनेक प्राध्यापक, यदि शोध हेतु कोई जैन विषय होता था, तो सीधे यही सलाह देते थे कि 'आप डॉ. साहब से जाकर मिलो, वही आपका विषय ठीक करेंगे, वही आपको सही सलाह देंगे।' उनका मार्गदर्शन अब हमको कहां उपलब्ध होगा? अब केवल उनकी स्मृति शेष है, उनके कार्य शेष हैं। वह एक ऐसी यशोकीर्ति अर्जित कर गये हैं जिससे यद्यपि आज वह हमारे बीच सशरीर नहीं हैं बहुत समय तक, युगों–युगों तक, अपनी कृतियों के द्वारा वह हमारे बीच में रहेंगे।"

डॉ. साहब द्वारा रचित **जय महावीर नमो** के गायन के साथ सभा का समापन हुआ।

– नलिन कान्त जैन
संयोजक

✦✦✦

जन्म-शती पर स्मरण-गोष्ठी

दिनांक 6 फरवरी 2012 ई. को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में **श्रद्धेय इतिहास-मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की जन्म शताब्दी पर स्मरण गोष्ठी** का आयोजन किया गया। केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ के प्रो. डॉ. विजयकुमार जैन ने अध्यक्षता की। पूर्व प्रमुख अभियन्ता श्री धर्मवीर, वरिष्ठ साहित्यकार श्री रवीन्द्र कुमार 'राजेश' और वयोवृद्ध साहित्यकार साहित्य-भूषण डॉ. परमानन्द जड़िया विशिष्ट अतिथि थे। श्रद्धेय डॉ. साहब के सम्पर्क में आये विद्वत्‌जनों और धर्मप्रेमियों ने गोष्ठी में सहभागिता की। आयोजन ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट के द्वारा किया गया। तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., और जैन मिलन लखनऊ सहभागी थे। संचालन श्री नलिन कान्त जैन ने किया।

मंगलाचरण के रूप में सौ. इन्दु, सौ. मोहिनी, सौ. सीमा और सौ. निधि ने सर्वप्रथम श्री रमा कान्त जैन द्वारा रचित **'सरस्वती वन्दना'** का पाठ किया —

विनती इतनी अम्ब मेरी
इतना तू उपकार कर दे
जगत ज्योतिर्मय कर सकूं मैं
लेखनी में धार धर दे।

तत्पश्चात् श्रद्धेय डॉ. साहब द्वारा रचित **'वीतराग स्वरूपं'** का सस्वर पाठ किया।

तदोपरान्त गोष्ठी के अध्यक्ष प्रो. विजय कुमार जैन ने श्रद्धेय डॉ. साहब के चित्र पर माल्यार्पण कर अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किये तथा विशिष्ट अतिथियों एवं समागत जनों ने चित्र पर पुष्प अर्पित किये।

आयोजन के प्रास्ताविक के रूप में **डॉ. शशि कान्त** ने अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए बताया कि उन्हें अपने परम श्रद्धेय पिता जी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन जी की जन्मशती पर अपनी विनय और श्रद्धा अर्पित करने का सुयोग प्राप्त हुआ है। डॉ. साहब के जीवन में सादगी को दृष्टिगत रखते हुये आयोजन सादे तरीके से व्यवस्थित किया गया है और इसमें डॉ. साहब के स्नेही जनों की सहभागिता आमंत्रित की गई है। इस सन्दर्भ में वयोवृद्ध श्री प्रकाशचंद जैन 'दास', डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त' और श्री नरेश चंद्र जैन का उल्लेख प्रासंगिक है क्योंकि वे अस्वस्थता के कारण नहीं आ सके। श्री ज्ञानेन्द्र मोहन सिन्हा और श्री मगनलाल जैन भी वृद्धावस्था के कारण नहीं आ सके, तथापि उन्होंने अपनी श्रद्धांजलि भेजी है। श्रद्धेय डॉ. साहब की स्मृति को संजोने की

दृष्टि से उनके पौत्र श्री नलिन कान्त जैन द्वारा **स्मृतिका** का सम्पादन किया गया है जो इस गोष्ठी में उपलब्ध कराई जा रही है। श्रद्धेय डॉ. साहब की पौत्री सौ. इन्दु कान्त जैन की कृति **आत्मकल्याण के दस चरण** भी आज सुलभ कराई जा रही है। कार्यक्रम के प्रारंभ में 24 जनवरी 1988 को आकाशवाणी लखनऊ से प्रसारित डॉ. साहब की वार्ता को कैसेट के माध्यम से उनकी वाणी में हम सुनेंगे और तत्पश्चात् 'इतिहास की उपयोगिता' के सम्बन्ध में उनके चिन्तन–प्रसून का वाचन भी हम सुन सकेंगे। इस स्मरण गोष्ठी में सहभागिता कर रहे सभी स्नेही मित्रों के प्रति श्रद्धेय डॉ. साहब की सन्तति अनुग्रहीत है।

डॉ. साहब की वाणी में आकाशवाणी लखनऊ से 24 जनवरी 1988 को **'नदिया एक, घाट बहुतेरे'** कार्यक्रम के अन्तर्गत **प्रसारित वार्ता** सुनी गई। इसके माध्यम से डॉ. साहब ने बताया कि जैन धर्म के तात्विक, सैद्धांतिक या दार्शनिक तत्वों की चर्चा न करके उसकी कतिपय विशेषताओं का जो उसके प्रत्येक स्वर में मुखर होती हैं, उल्लेख किया जाना उचित होगा। ये विशेषताएं हैं आत्मौपम्य, अहिंसा, अपरिग्रह, आत्म–पुरुषार्थ और अनाग्रह। यह पंच–सूत्री स्वर जैन धर्म और संस्कृति में सदैव गुंजायमान होता रहा है। 'नदिया एक, घाट बहुतेरे' की उक्ति को चरितार्थ करने वाले सद्धर्म के रूप में जैन धर्म अपना उल्लेखनीय स्थान रखता है। **स्मृतिका** में उक्त वार्ता मूल रूप में प्रकाशित है।

इतिहास की उपयोगिता के सम्बन्ध में श्रद्धेय डॉ. साहब के **चिन्तन–प्रसून** का वाचन सौ. सीमा जैन द्वारा किया गया। किसी व्यक्ति, समाज या जाति की मान–मर्यादा उसके इतिहासबद्ध पूर्व–वृतान्त पर बहुत कुछ निर्भर करती है। इतिहास के ज्ञान के बिना यदि जातीय जीवन में चेतना, स्फूर्ति, स्वाभिमान और आशा का तिरोभाव हो जाता है तो इतिहास का सम्यक् ज्ञान सोतों को जगा देता है।

श्रद्धेय डॉ. साहब के पौत्र **श्री अंशु जैन 'अमर'** ने डॉ. साहब का पुनीत स्मरण करते हुये उनके जीवन और कृतित्व पर विस्तृत प्रकाश डाला और बताया कि इतिहास विषय के छात्र के रूप में उन्होंने देखा कि भारतीय इतिहास के निर्माण में प्रायः जैन स्रोतों की उपेक्षा की गई है। अतः उन्होंने जैन साहित्य व इतिहास के पुनर्निर्माण का महती एवं सफलीभूत प्रयास किया। अपनी साहित्य–साधना से उन्होंने जैन स्रोतों के माध्यम से भारतीय इतिहास के अनेकों विस्मृत तथ्यों व अध्यायों को उद्घाटित एवं आलोकित किया। वह **जैन संदेश शोधांक** तथा **शोधादर्श** नामक

प्रतिष्ठित शोध पत्रिकाओं के जनक थे। उन्हें इतिहास–रत्न, विद्यावारिधि और इतिहास–मनीषी की उपाधियों से समाज द्वारा विभूषित किया गया। वे युवा पीढ़ी को शोध–खोज व लेखन के लिए सदैव प्रेरित करते रहे। उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि भारतीय इतिहास के जैन व जैनेतर विविध स्रोतों का अधिकाधिक शोध करके कदाग्रह–निरपेक्ष और तथ्य–सापेक्ष सुदपयोग करते हुये भारतीय इतिहास और संस्कृति के विविध पहलुओं को समृद्ध किया जाये।

तीर्थंकर महावीर स्मृति केंद्र समिति, उ.प्र., के अध्यक्ष एवं लखनऊ श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन सभा के मुख्य संरक्षक **श्री लूणकरण नाहर जैन** ने अपने संस्मरण में बताया कि श्रद्धेय डॉ. साहब से उनका परिचय सन् 1981 में हुआ जब तरुण तपस्वी लाभचन्द महाराज लखनऊ में चातुर्मास के लिये पधारे थे। प्रवचन के बाद डॉ. साहब से रोजाना ही मिलना होता था। उसके बाद भी जैन मिलन की बैठकों में डॉ. साहब के विद्वत्तापूर्ण प्रवचनों से लाभान्वित होता रहा। उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये उन्होंने कहा –

जो इतिहास–मनीषी, विद्यावारिधि प्रज्ञावान विद्वान थे,
जैन जगत के जग–मग तारे, डॉ. ज्योति प्रसाद जी महान थे
जन्मशती शुभ आई आपकी, हम सब मिल गुणगान करें,
चरणों में झुककर विद्वत्वर के शत–शत बार प्रणाम करें।

श्री भगवान भरोसे जैन, सेवा–निवृत्त संयुक्त सचिव, उ.प्र. शासन, ने श्रद्धेय डॉ. साहब का स्मरण करते हुये बताया कि उनका डॉ. साहब से प्रथम परिचय 1962 में हुआ था। उस समय डॉ. साहब जिला गजेटियर कार्यालय में कार्यरत थे और वह स्वयं डी.ए. कमीशन के कार्यालय में थे और संयोग से यह दोनों कार्यालय एक ही भवन में थे, अतः उनसे धर्म चर्चा का सुयोग प्राप्त हुआ। जैन मिलन की बैठकों में भी उनके विद्वत्तापूर्ण प्रवचन सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ। डॉ. साहब से घनिष्ठ परिचय 1972 के बाद स्वर्गीय श्री अजित प्रसाद जैन 'बब्बे जी' के यहां साप्ताहिक गोष्ठी में हुआ जहां वह प्रवचन करते थे और शंका–समाधान भी करते थे। शंका–समाधान की उनकी शैली बहुत सहज थी। वह कहते थे कि कभी आवेश में आकर अपनी बात नहीं कहनी चाहिए; जो भी करो, विवेक के साथ करो। उनके निवास **'ज्योति निकुंज'** पर भी साप्ताहिक गोष्ठी हुआ करती थी। डॉ. साहब के प्रति श्रद्धांजलि स्वरूप उन्होंने निम्नलिखित पद का सस्वर पाठ किया –

जिन्दगी बन्दे तेरी यह बर्फ सम ढल जायेगी
यत्न चाहे कितना करो, यह न रहने पायेगी,
काम कर दुनिया में ऐसा जिससे तेरा नाम हो,
मरने के बाद दुनिया गीत तेरा गायेगी।

श्री धर्मवीर, सेवा–निवृत्त प्रमुख अभियंता, लोक निर्माण विभाग, उ.प्र., ने अपने संस्मरण अभिव्यक्त करते हुए बताया कि डॉ. साहब से उनका परिचय 1965 में हुआ जब वे सिंचाई विभाग में टेक्निकल आडिट सेल में टेक्निकल एक्जामिनर थे और डॉ. साहब गजेटियर विभाग में थे और ये दोनों ही कार्यालय एक ही भवन में थे। जितने समय वह टेक्निकल आडिट सेल में कार्यरत रहे उनका सम्पर्क डॉ. साहब से होता रहा और उनसे उन्हें धर्म ग्रन्थों के अध्ययन की प्रेरणा मिली और मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। उसके बाद चारबाग मंदिर में डॉ. साहब के शास्त्र प्रवचनों ने भी प्रभावित किया। डॉ. साहब उनके धर्मगुरु थे और उनकी स्मृति निरंतर बनी रहती है। जन्मशती पर उनको श्रद्धापूर्वक नमन!

श्री स्वराज्य चन्द्र जैन, उपाध्यक्ष, जैन धर्म प्रवर्धिनी सभा, लखनऊ, ने अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए निम्नलिखित पंक्तियां प्रस्तुत कीं –

तारीखें इतिहास बनाया करती हैं,
सृजन की प्यास बनाया करती हैं,
जिनमें कुछ करने का जज़्बा होता है,
तिथियां उन्हें खास बनाया करती हैं।

श्रद्धेय डॉ. साहब की प्रपौत्री **बेबी पलक** ने अंग्रेजी में अपने प्रपितामह का परिचय दिया और इतिहास एवं जैन धर्म व संस्कृति के क्षेत्र में उनके द्वारा किये गये शोधात्मक एवं तथ्यपरक अवदान का स्मरण किया। उनके प्रति इस जन्मशती पर सच्ची श्रद्धांजलि उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलने से ही होगी।

श्री रतन चंद्र गुप्ता, सेवा–निवृत्त संयुक्त सचिव, उ.प्र. शासन, ने श्रद्धेय डॉ. साहब का स्मरण करते हुए बताया कि उन्हें डॉ. साहब का पितृतुल्य स्नेह प्राप्त था। डॉ. साहब के व्यक्तित्व और कृतित्व ने तथा उनके स्नेह ने निरंतर ही गौरव की अनुभूति प्रदान की।

डॉ. साहब की पौत्री **सौ. इन्दु कान्त जैन** की कृति **आत्मकल्याण के दस चरण** का लोकार्पण प्रो. विजय कुमार जैन द्वारा किया गया। इन्दु ने बाबा जी के साथ बिताये गये अपने बचपन के संस्मरण सुनाते हुए

बताया कि बाबा जी अपने पौत्र–पौत्रियों के साथ हिल–मिल कर रहते थे। उनके नियमित जीवन का प्रभाव हम सभी बच्चों पर पड़ा। उनकी अध्ययन की प्रवृत्ति और सहित्य साधना ने हम सभी को बहुत प्रभावित किया। तीन वर्ष पहले मैने कुछ कहानियां लिखने का प्रयास किया जिसके लिए मुझे पिता जी स्वर्गीय रमा कान्त जी से बराबर प्रेरणा मिली और उसी के फलस्वरूप **दर्द का रिश्ता** के रूप में एक लघु कथा संकलन लिखा जा सका। उसका प्रकाशन तो पिता जी के जीवन काल में नहीं हो सका परन्तु उसका लोकार्पण उनकी प्रथम पुण्य तिथि पर 26 मई 2010 को हो सका। फिरोजाबाद में प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी ने उस कथा संकलन को देखकर मुझे धार्मिक विषय पर भी लिखने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया। उसी के फलस्वरूप दस लक्षण धर्म के विषय को लेकर **आत्मकल्याण के दस चरण** की प्रस्तुति की गई।

सौ. डॉ. राका जैन ने अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि उनकी ज्ञान ज्योति अनमोल बन गई है। एक भावपूर्ण गीत भी उन्होंने प्रस्तुत किया –

दुनिया सब माटी का ग्राहक,माटी का ही मोल है।
जो माटी का मोल कर रहा, वह प्राणी बेमोल है।
दुनिया सब————————
लोहा माटी, सोना माटी, यह माटी के खेल हैं,
ज्योतिर्मय छाया भी माटी, माटी के बहुमेल हैं।
चमक दमक माटी की बजती, माटी का ही ढोल है।।

श्री विष्णुदत्त शर्मा ने बताया कि श्रद्धेय डॉ. साहब स्वतंत्रता सेनानी भी थे और उनके स्वयं के पिता जी पं. चतुर्भुज शर्मा और वह स्वयं भी स्वतंत्रता सेनानी रहे हैं। डॉ. साहब के सम्बन्ध में उनके दोनों पुत्रों से ही जानकारी मिली। इस बात का उन्हें अफसोस रहा कि वह स्वयं डॉ. साहब से नहीं मिल सके।

वरिष्ठ साहित्यकार **श्री रवीन्द्र कुमार 'राजेश'** ने अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुये कहा कि डॉक्टर ज्योति प्रसाद जैन जी का व्यक्तित्व विशिष्ट था।

साहित्य–भूषण डॉ. परमानन्द जड़िया जी ने अपनी श्रद्धांजलि में कहा कि डॉ. साहब ने अपनी संतति को बौद्धिकता के जो संस्कार दिये हैं वे स्पृहणीय हैं।

हास्य–व्यंग्य कवि **श्री अनिल कुमार 'बांके'** ने अपनी भावपूर्ण

श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि डॉक्टर साहब से साक्षात् परिचय का सौभाग्य नहीं प्राप्त हो सका था परन्तु उनके बारे में स्व. रमा कान्त जी तथा परिवार के अन्य सदस्यों से जो परिचय मिलता रहा उससे वे सदा ही श्रद्धा विगलित होते रहे।

सौ. इन्दु और **सौ. सीमा** ने भावपूर्ण भजन प्रस्तुत किया –

दिन–रात मेरे स्वामी, मैं भावना यह भाऊं,
अन्त समय नाम तेरा ध्याऊं।

प्रो. विजय कुमार जैन ने अपने अध्यक्षीय सम्बोधन में यह उल्लेख किया कि श्रद्धेय डॉ. साहब की धर्म, समाज और साहित्य के प्रति की गयी सेवाओं की अपेक्षा से उनकी जन्मशती का समारोह पूर्वक आयोजन करने का दायित्व जैन समाज का था। परन्तु उसका निर्वहन उनके परिवार–जनों द्वारा ही किया जा रहा है। डॉ. साहब की तीसरी पीढ़ी में भी उनके द्वारा प्रदत्त बौद्धिक संस्कार गतिमान हैं। उनके परिवारजनों द्वारा किया गया यह आयोजन यह रेखांकित करता है कि डॉ. साहब चिरस्मरणीय रहेंगे। यद्यपि वह लखनऊ 1987 में ही आ गये थे, उन्हें डॉ. साहब के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सका। उनका प्रथम परिचय कुछ समय पूर्व ही हो गया था जब उन्होंने **जैन सिद्धान्त भास्कर** में प्रकाशनार्थ एक लेख डॉ. साहब को भेजा था। डॉ. साहब के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि उनकी अप्रकाशित रचनाओं को यथा–शीघ्र प्रकाशित किया जाये और उनके लेखों का संकलन भी प्रकाशित किया जाये। डॉ. साहब इतिहास और जैन–धर्म के क्षेत्र में कार्यरत शोधार्थियों और विद्यार्थियों के लिए सदैव ही प्रेरणा के स्रोत बने रहेंगे।

अन्त में, डॉ. साहब के पौत्र **श्री सन्दीप कान्त जैन** ने अध्यक्ष महोदय, विशिष्ट अतिथिगण, श्रद्धा सुमन अर्पित करने वाले स्नेहीजन और सभी समागत मित्रों के प्रति ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट की ओर से आभार व्यक्त किया कि उन्होंने अपना अमूल्य समय देकर इस आयोजन में सहभागिता कर श्रद्धेय बाबा जी की जन्मशती पर आयोजित इस स्मरण–गोष्ठी को सफल बनाया।

– **अंशु जैन 'अमर'**

डॉ. ज्योति प्रसाद जैन : अपूर्व व्यक्तित्व

— डॉ. विनोद कुमार तिवारी

डॉ. ज्योति प्रसाद जैन जैसे मनीषी अब पैदा नहीं होते। आज के युग में पढ़ाई लिखाई पूरी करने के बाद सामान्यतः लोग अपनी–अपनी रोजी–रोटी प्राप्त करने और फिर दुनियादारी में लग जाते हैं, पर उनमें से कुछ ऐसे लोग भी निकल आते हैं जो अपनी व्यक्तिगत भावनाओं और बातों से ऊपर उठकर समाज, साहित्य, शिक्षा तथा अध्यात्म जैसे कठिन मार्गो पर चलने का संकल्प लेते हैं और अपनी सारी जिन्दगी किसी–न–किसी विधा से सेवा में अर्पित कर देते हैं, ऐसे महापुरुष अपने परिवार और समाज के बीच ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए आदर्श पुरुष बन जाते हैं। मैं उपरोक्त पंक्तियों में अपनी भावना एक ऐसे ही महामानव को समर्पित कर रहा हूं, जो जैन जगत के जाने माने स्तम्भ रहे हैं और उनके बताए मार्ग का अनुसरण आज भी छोटे–बड़े, गरीब–अमीर, छात्र–विद्वान सभी कर रहे हैं। ऐसे महापुरुष को स्मरण कर मन श्रद्धा से भर जाता है। मैं बातें कर रहा हूं प्रातः स्मरणीय डॉ. ज्योति प्रसाद जी जैन की। सन् 1912 में मेरठ के एक सम्पन्न और प्रतिष्ठित परिवार में जन्म लेने के बाद बचपन की अपनी बाल्य शिक्षा उन्होंने वहीं से प्राप्त की। पढ़ाई के प्रति ललक और पढ़ने की उत्कंठा आकांक्षा उनमें काफी ज्यादा थी और उच्च शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने एम.ए. एवं एल–एल.बी. करने के बाद पी–एच.डी. तक की डिग्री हासिल की और अपने बाद में आने वाली पीढ़ी को यह सन्देश दिया कि शिक्षा प्राप्त करने की न तो कोई सीमा होती है और न परेशानियों को लेकर कोई बाधा। डॉ. साहब जब तक जीवित रहे, विद्या मन्दिर में विद्या देवी की सेवा करते रहे और यह भगवान जिनेन्द्र की कृपा रही कि उनका सम्पूर्ण परिवार और उनके सभी सम्बन्धी अच्छी शिक्षा प्राप्त कर अपने–अपने क्षेत्रों में अपना दायित्व निभाते रहे और आज भी निभा रहे हैं।

डॉ. साहब से मैं प्रत्यक्ष रूप से कभी मिल न सका, इसका मुझे आज भी सख्त अफ़सोस है, पर पत्र एवं अन्य लेखनियों के माध्यम से उनसे मेरी अपेक्षा बनी रही, शायद प्रत्यक्ष रूप से मिलकर भी उनका स्नेह और अपनापन मुझे उतना प्राप्त नहीं होता, जितना मुझे उन्होंने किसी–न–किसी रूप में अपनी जिन्दगी के अंतिम वर्षो तक दिया। मेरे पास उनके कई पत्र आज भी सुरक्षित हैं, जबकि ढेर सारे पत्र मेरी फाइलों में इधर उधर रखे

हैं, सम्भव है खोजने पर अधिकांश मिल जाएं। तत्काल उनका एक पत्र प्रेषित कर रहा हूं, अगर सम्भव हो, तो मेरे इस छोटे से लेख के साथ इस पत्र की छाया प्रति भी प्रकाशित करेंगे, ताकि जैन साहित्य–इतिहास के विषय में वे कितने सजग और अद्यतन थे, इसकी खबर अपने लोगों को लग सके। यह पत्र उन्होंने सन् 1987 में, अर्थात् अपने देहान्त से मात्र कुछ ही महीनों पहले, लिखा था और मेरे एक जैन प्रोजेक्ट 'Participation of the Jainas in the social upliftment in North India (starting from 1850 A.D.)', जो मैं शुरू करने वाला था, पर अपना विद्वत्तापूर्ण मन्तव्य ही नहीं दिया था, बल्कि ढेर सारी पुस्तकों, जर्नलों एवं अन्य उपयोगी सामग्रियों की सम्पूर्ण सूची मुझे अपने हाथों से लिखकर प्रेषित की थी, ताकि मुझे अपने शोध में उन सामग्रियों से सहायता मिल सके। पूरे दो पृष्ठों का उनका पत्र मैंने अभी तक संजो कर रखा है, जो मुझे हर क्षण पढ़ने–लिखने और शोध कार्य में संलग्न रहते रहने की प्रेरणा प्रदान करता रहता है। उनके इस तरह के कार्य हमें यह सोचने को बाध्य करते हैं कि उम्र के उस पायदान पर भी जब वे दूसरों के लिए इतना चेतन और समर्पित हो सकते हैं, तो हम लोगों को उनके पद चिन्हों पर कुछ दूर तो चलकर उनके जीवन दर्शन से सबक लेते रहना चाहिए। मुझे उनके पत्रों से उनका मार्ग दर्शन भी प्राप्त होता था और प्रोत्साहन भी। ऐसे निस्वार्थ व्यक्ति की याद किन्हें नहीं आएगी, वे तो पल–पल हम लोगों जैसे सैकड़ों लोगों के बीच जी रहे हैं, ऐसे अभूतपूर्व व्यक्तित्व के दुर्लभ पुरुष कभी मरते भी हैं क्या!

वैसे तो डॉ. साहब के द्वारा लिखे गए सभी जैन साहित्य उच्च स्तरीय हैं, पर फिर भी उनमें **"प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलायें"**, **"The Jaina Sources of the History of Ancient India"**, **"Religion and Culture of the Jains"**, **"Jainism, The Oldest Living Religion"**, **"उत्तर प्रदेश और जैन धर्म"** एवं **"तीर्थंकरों का सर्वोदय मार्ग"** जैन श्रद्धालुओं के साथ–साथ जैन धर्म, जैन साहित्य और जैन इतिहास में रुचि रखने वाले लोगों के लिए ज्ञान कोष भंडार की तरह उपयोगी हैं। आरा से प्रकाशित **Jaina Antiquary** तथा **जैन सिद्धांत भास्कर** तथा स्वयं उनकी देख–रेख में लखनऊ से प्रकाशित **शोधादर्श** में उनकी रचनाएं नवीन खोजों और विचारों पर आधारित रहा करती थीं। उन्होंने जितना कुछ लिखा, वे जैन धर्म, इतिहास और दर्शन के क्षेत्र में आगे आने वाली पीढ़ी के लिए मार्ग दर्शन का काम करेंगी, आवश्यकता है उन्हें हिफ़ाज़त से सुरक्षित रखने की।

आज डॉ. साहब जीवित नहीं हैं, पर उनके वारिस अग्रिम पीढ़ी के स्व. श्री अजित प्रसाद जैन तथा स्व. श्री रमा कान्त जैन ने उनकी स्मृति शेष को जीवित रखने का भरपूर प्रयास किया था, पर काल के क्रूर हाथों ने उन्हें असमय ही हम सबों से छीन लिया। लेकिन ऐसा कहा जाता है कि पवित्र हाथों से लगाये गए वृक्ष के पत्ते समय–समय पर झर तो जाते हैं, पर फिर वे पेड़–पौधे धूप एवं गर्मी के थपेड़ों और बरसात की बौछारों को सहने के बाद नई पत्तियों से भर जाते हैं और आने वालों के लिए फल तथा अपनी छाया देने को तत्पर हो जाते हैं। कुछ ऐसी ही प्रक्रिया ज्योति निकुंज, चारबाग में भी देखने को मिल रही है। डॉ. साहब के बाद अजित जी और रमा जी क्रमशः हमसे दूर होते गए, पर हमने सबों की विदाई दुःख और धैर्य भरे मन से झेल तो लिया, लेकिन वहीं यह भी प्रण किया कि डॉ. साहब ने अपनी जिन्दगी में जिस शैक्षणिक कार्य–कलाप रूपी वृक्ष को लगाया था, वो हम सूखने नहीं देंगे और इसी भावना से प्रेरित होकर मार्गदर्शक के रूप में डॉ. शशि कान्त जी, सम्पादक के रूप में श्री नलिन कान्त जैन, श्री सन्दीप कान्त जैन, श्री अंशु जैन तथा सौ. डॉ. अलका अग्रवाल आज तन–मन–धन से **शोधादर्श** की दिन–रात सेवा कर रहे हैं। 'ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ आज ज्ञान रूपी एक केन्द्र के रूप में जाना जा रहा है और जैन विचारकों, लेखकों, बुद्धजीवियों, विद्वानों तथा शोधकर्ताओं को भविष्य में भी यह अहिंसा, सद्भावना, भाईचारा के साथ–साथ साहित्य प्रेम का भी सन्देश देता रहेगा। डॉ. साहब और **शोधादर्श** के साथ मेरा कम–से–कम पिछले सैंतीस वर्षों का सम्बन्ध रहा है और मेरी जितनी भी रचनाएं **शोधादर्श** में छपीं हैं, उनमें से अधिकांश डॉ. साहब के ही काल में छपी। यह मेरे लिए सौभाग्य और गर्व की बात रही। भविष्य में भी मेरा सम्बन्ध इस परिवार से बना रहे, यह मेरे लिए एक सुखद कल्पना होगी।

(डॉ. तिवारी, यू. आर. कॉलेज, रोसड़ा (समस्तीपुर), बिहार, से अवकाश–प्राप्त एसोसिएट प्रो. एवं इतिहास विभागाध्यक्ष हैं।)

डा० ज्योति प्रसाद जैन
एम०ए०, एल०एल०बी०, पी-एच०डी०

ज्योति निकुंज,
चारबाग,
लखनऊ-226019 (उ.प्र.)
9-9-1987

प्रिय महानुभाव डा० विनोद कुमार तिवारी जी,

नमस्कार!

कृपापत्र 30 अगस्त 87 का तथा संलग्न Synopsis [illegible] डाक (1/20?) से प्राप्त हुए — धन्यवाद! आपको मेरा स्मरण रहता है, कृतज्ञ हूँ!

आप अपनी संभवतया D.Litt. के लिए 'Participation of the Jainas in the social upliftment in northern India' (starting from 1850 A.D.)' विषय पर शोधकार्य करने का विचार कर रहे हैं, यह जानकर प्रसन्नता है। आपका Synopsis — प्रस्तावित 8 chapters के सांकेतिक शीर्षक भी देखे। Ch. II — A general survey of the social condition during the 1950's — से शायद आपका अभिप्राय 1850's से है? या इधर के 40 वर्षों (1950-पर्यन्त) से — यह समझ नहीं आया।

1. आप इतिहास के विद्यार्थी रहे हैं, सो भी शायद अर्वाचीन भारतीय इतिहास के, और यह विषय इतिहास से अधिक समाजशास्त्र (Sociology) का है, सो भी आधुनिक युग सम्बन्धी।

2. जैन धर्मावलम्बी आज भी भारतवर्ष के प्रत्येक भाग में निवास करते हैं — विभिन्न प्रदेशवासी, विभिन्न भाषाभाषी, प्रायः चतुर्वर्ण के चारों ही वर्णों में, अनेक जाति-उपजातियों में विभाजित, अनेक सम्प्रदायों-उपसम्प्रदायों-पंथों आदि में विभक्त, प्रायः सभी प्रकार के व्यवसायों में कार्यरत — व्यापार, उद्योग-धंधे, [illegible], शिक्षण, वकालत, डाक्टरी, इंजीनियरी, राजनीति, विविध राजकीय सेवाओं (सेना, पुलिस, [illegible] आदि भी) में पाये जाते हैं, साक्षरता एवं शिक्षा का औसत अन्य समाजों की अपेक्षा अधिक है, [illegible] सम्पन्न समाज है — आपको इस समाज का कितना निकट परिचय है, यह मुझे ज्ञात नहीं है।

3. आपके Period के लिए Archival material या memoirs, travelogues आदि से शायद विशेष सहायता न मिले, किन्तु स्वयं जैनों द्वारा प्रकाशित सामग्री भी पर्याप्त है — पत्र-पत्रिकाएँ

P.T.O.

किन्तु दुर्लभ नहीं है — यथा,

(1) प्रकाशित जैन साहित्य (की विस्तृत प्रस्तावना) – ज्योतिप्रसाद जैन, जैन मित्र मंडल दिल्ली (1958)
(2) भारतीय इतिहास: एक दृष्टि — " , द्वि. सं. 1966, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
(3) रुहेलखंड-कुमाऊँ जैन डायरेक्टरी – " , 1970, काशीपुर (नैनीताल)
(4) तीर्थंकरों का सर्वोदय मार्ग – " , 1974, दिल्ली
(5) प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलायें – " , 1975, भा. ज्ञा. पी. दिल्ली
(6) उत्तर प्रदेश और जैन धर्म — " , 1976, लखनऊ
(7) [illegible] पू. ब्र. शीतलप्रसाद – " , 1985, सागर/दिल्ली
(8) Religion & Culture of the Jains – " , 3rd ed. 1983, भा. ज्ञा. पी. दिल्ली
(9) Progressive Jains of India – ed. S.K. Jain, Delhi
(10) विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थ – प्र. पं. वि. कु. मोरेना, दमोह
(11) विभिन्न सार्वदेशिक, स्थानीय, एवं जातीय डायरेक्टरियाँ
(12) विगत 50-60 वर्षों में प्रकाशित विविध अभिनन्दन ग्रन्थ, स्मृतिग्रन्थ, स्मारिकाएँ आदि
(13) " " विभिन्न जैन पत्रिकाएँ
(14) Revised District Gazetteers of the region in question
(15) Census of India Reports
(16) जैन सिद्धान्त भास्कर, अनेकान्त, शोधांक, शोधादर्श आदि जैन शोध-पत्रिकाओं की फाइलें।

कृपया मैंने अपनी समझ के अनुसार संभावित साधन-स्रोत इंगित कर दिये हैं। शेष कार्य लिखें। आशा है, सानंद हैं।

आपका
ज्योति प्रसाद जैन

✧✧✧

परिचय के पृष्ठ बढ़ते गये

— साहित्य–भूषण डॉ. परमानन्द जड़िया

लम्बे समय की बात है। मैं किसी सारस्वत समारोह की सूचना पाकर प्रथम बार 'ज्योति–निकुंज', चारबाग, पहुंचा था — शायद यह सारस्वत समारोह स्वनामधन्य डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की पुण्य स्मृति में ही आयोजित किया गया था, क्योंकि डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का भव्य चित्र समारोह स्थल पर सजा कर रखा गया था। उस आकर्षक चित्र पर अंकित था **डॉ. ज्योति प्रसाद जैन**। मैंने श्री रमा कान्त जैन से उस समय पूछा था — क्या आपके पिता जी यूनीवर्सिटी में पढ़ाते थे?

रमा कान्त जी ने कहा — नहीं। मेरे पिता जी व्यवसाय में रहे और उन्होंने व्यवसाय में रहकर कई भिन्न–भिन्न कार्य किये।

कालान्तर में इस जैन परिवार से मेरे प्रगाढ़ मैत्री सम्बन्ध बनते गये। मुझे **शोधादर्श** के माध्यम से डॉ. ज्योति प्रसाद जी के अंग्रेजी में लिखे लेख पढ़ने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं आश्चर्य चकित रह गया यह देखकर कि पी–एच.डी. करने के बाद व्यवसाय में लगा हुआ व्यक्ति कैसे इतने शोधपूर्ण लेख आंग्ल भाषा में लिखता रहा। उन्होंने स्फुट लेख ही नहीं, शोधपूर्ण जैन ग्रंथ भी लिखे। रेडियो वार्ताएं लिखीं जो समय–समय पर आकाशवाणी से प्रसारित होती रही हैं। वे जैन धर्म, दर्शन तथा इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान् थे। कालान्तर में, मैं इस जैन परिवार से ऐसा जुड़ा कि मुझे डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की स्मृति में आयोजित होने वाले लगभग प्रत्येक समारोह में सम्मिलित होने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। मुझे उनके जन्मशती वर्ष में सम्मानित होने का सुअवसर भी मिला।

मैं यह देखकर आश्चर्य चकित हूं कि डॉ. ज्योति प्रसाद की यह दिव्य ज्योति ऐसी फैली कि उनका सम्पूर्ण परिवार उससे आलोकित हो उठा। उनके ज्येष्ठ पुत्र डॉ. शशि कान्त स्वयं भी पी–एच.डी. हैं तथा उत्तर प्रदेश शासन में विशेष सचिव रहकर अनेक वर्ष पूर्व सेवा–निवृत्त हो चुके हैं। उनके छोटे भाई रमा कान्त जैन भी उत्तर प्रदेश शासन में उप सचिव रहकर सेवा निवृत्त हुये थे। जैन धर्म तथा दर्शन पर उनकी अच्छी पकड़ थी। वे कुछ वर्ष पूर्व दिवंगत हो चुके हैं, परन्तु अपने कृतित्व से वे आज भी जीवित हैं।

डॉ. शशि कान्त अंग्रेजी तथा हिन्दी दोनों भाषाओं के पंडित हैं। उनके परिवार के सभी बच्चे अपने पितामह की कीर्ति पताका को उन्नत

किये हुए हैं। मुझे यह देखकर सुखद आश्चर्य होता है कि ये लोग जैन धर्म की शिक्षा को अपने व्यवहार में भी साकार करने में लगे हुए हैं। जब भी मैं अपनी पुस्तक डॉ. शशि कान्त को भेजता हूं वे फोन पर उसकी प्राप्ति स्वीकार कर मुझे धन्यवाद देते हैं। समय–समय पर मेरा हाल–चाल पूछते हैं। मेरे जन्म–दिन पर मुझे बधाई देते हैं। ऐसा व्यवहार किसको प्रिय नहीं लगता! एक देहाती कहावत है –

'बाढ़इ पूत पिता के धरमा।'

सोचता हूं तो मुझे लगता है डॉ. ज्याति प्रसाद वास्तव में ज्योति स्वरूप हैं। उनकी स्मृति को मेरा सादर नमन।

'जड़िया–निवास', 51, खत्री टोला, मशकगंज, लखनऊ–226018

✦✦✦

श्रद्धा के कुसुम

ओ जैन जगत के प्रदीप्त सूर्य,
जन मन के नयन सितारे।
श्रद्धा के कुसुम समर्पित हैं,
स्वीकार करो पूज्यवर प्यारे।

– लूणकरण नाहर जैन

✦✦✦

श्रद्धांजलि

एक इतिहास–मनीषी, निर्वाण प्राप्त कर गये,
स्वयं इतिहास बन, अपना ज्योति नाम सार्थक कर गये जो।

जो भी किसी दिन आया है,
उसको एक दिन तो जाना है।
पर आना तो उसी का सार्थक है,
जो मर करके भी आज जिये।

एक इतिहास–मनीषी, निर्वाण प्राप्त कर गये,
स्वयं इतिहास बन, अपना ज्योति नाम सार्थक कर गये जो।

किन शब्दों में मैं याद करूं
हैं शब्द नहीं वे मेरे पास।
कहने को श्वसुर हमारे थे,
पर पिता से ज्यादा प्यारे थे।

एक इतिहास–मनीषी, निर्वाण प्राप्त कर गये,
स्वयं इतिहास बन, अपना ज्योति नाम सार्थक कर गये जो।

हम सब के तो प्यारे थे ही,
पूरी जैन समाज की आंखो के तारे थे।
पग–पग पर सम्मान प्राप्त कर,
अपनी चिर सन्तति को गौरव दे गये जो।

एक इतिहास–मनीषी, निर्वाण प्राप्त कर गये,
स्वयं इतिहास बन, अपना ज्योति नाम सार्थक कर गये जो।

विद्यावारिधि, इतिहास–रत्न, इतिहास–मनीषी
उपाधि मात्र नहीं थीं उनकी।
मनीषा और प्रतिभा के धनी,
संस्कृति की सम्पदा छोड़ गये जो।

एक इतिहास–मनीषी, निर्वाण प्राप्त कर गये,
स्वयं इतिहास बन, अपना ज्योति नाम सार्थक कर गये जो।

अपनी हरी–भरी फुलवारी में
यश और प्रतिभा की महक छोड़ गये जो।
'ज्योति निकुंज' में ज्ञान की ज्योति,
कभी न बुझे, आशीष छोड़ गये जो।

एक इतिहास–मनीषी, निर्वाण प्राप्त कर गये,
स्वयं इतिहास बन, अपना ज्योति नाम सार्थक कर गये जो।

— सौ. मंजरी जैन

श्रद्धा–सुमन

हमारे बाबा जी का जीवन एवं उपलब्धियां हम सब बच्चों के लिए प्रेरणा स्रोत हैं। वे एक निष्काम कर्मयोगी थे जिन्होंने अपना सारा जीवन बिना किसी अपेक्षा के देश, समाज और परिवार को समर्पित किया। चंद पंक्तियां उनको समर्पित कर स्मृतियों को विराम देता हूं –

हटा, व्यर्थ है,
डटा, वह समर्थ है
पथ–निर्माण, प्रदर्शन
जीवन का अर्थ है।

दुनिया की भीड़
कोयले की खान है
जग–मग दिखलाना
हीरे की पहचान है।

घरौंदों का निर्माण
समय का नुकसान है
कुछ ठोस जो करे
वह मनु–सन्तान है।

अग्नि से विनाशे
वह दुष्ट शैतान है
अनल से तम हटाये
वह इन्सान है।

कर्म–पथ पर जो
मील का पाषाण है
आदर्श का अनुमापन
हमारे बाबा जी वह इंसान है।

– राजीव कान्त जैन

✦✦✦

स्मृति–पटल पर पू0 बाबा जी

बचपन की कुछ पुरानी यादें मेरे स्मृति पटल पर झिलमिलाने लगी, जब अभी मुझे पू0 मौसा जी (डॉ. शशि कान्त जी) से ज्ञात हुआ कि वे पूज्य बाबा जी की स्मृति में **शोधादर्श** का स्मृति अंक प्रकाशित कर रहे हैं।

मेरा बचपन मेरे ननिहाल आरा (बिहार) में व्यतीत हुआ है, पर प्रत्येक ग्रीष्मावकाश मैं हर साल अपनी पू0 मौसी मां (श्रीमती मंजरी) एवं पू. मौसा जी तथा दो मौसेरे छोटे भाई (चि. शिरीष एवं चि. नलिन) के साथ ही व्यतीत करती थी। उस समय पू. मौसी मां एवं पू. मौसा जी का असीम स्नेह एवं वात्सल्य तो मुझ पर बरसता ही था, साथ ही पू. बाबा जी के वात्सल्य एवं हंसमुख स्वभाव का भी सौभाग्य चखने का अवसर प्राप्त हुआ।

आज भी ड्राइंगरूम में किताबों से घिरे हुए अपनी चौकी पर बैठे कुछ लिखते–पढ़ते हुए पू. बाबा जी की छवि आंखों के सामने ताजी सी लगती है। इतनी व्यस्तता, लेखन, पठन, दफ्तर जाना उन सब के बावजूद हम तीनों बच्चों के साथ हंसना, चुटकुले सुनाना, शिक्षाप्रद कहानियां सुनाना नहीं भूलते थे। साथ ही बराबर मेरी मौसी से मेरे विषय में कि कहीं घुमाया कि नहीं, कुछ खिलाया कि नहीं पूछते रहते थे।

मेरी शिक्षा की प्रगति पर बहुत आशीर्वाद एवं मार्गदर्शन किया करते थे। आज जो कुछ साहित्यिक चेतना मैं अपने अंदर पाती हूं उसमें बचपन में बिताएं उन दिनों की ही छाप है जो ऐसे महामना के साथ बिताने के सौभाग्य से मिला है। यह मेरी स्मृति की अतुल्य धरोहर है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी पू. बाबा जी के विषय में मैं क्या लिखूं, ऐसे महामना का किसी परिवार में होना ही बड़े गौरव की बात है।

शत–शत प्रणाम, वंदन!

– श्रीमती सरिता अग्रवाल

61–ए, पार्बती घोष लेन, कोलकाता–700007

✦✦✦

विरासत

मौत के सन्नाटे को शब्द परिभाषित नहीं कर सकते अथवा यों कहें कि मृत्यु का खालीपन शब्दों का मोहताज नहीं है। जब ताऊ जी (डॉ0 शशि कान्त जैन) ने बताया कि इस बार **शोधादर्श** का अंक बाबा जी, छोटे बाबा जी एवं पापा जी की स्मृति–अंक के रूप में निकलना है, मैं भी अतीत के पन्नों को पलटने बैठी। स्मृतियां मानों चलचित्र सदृश चलायमान हो उठीं और 'ज्योति–निकुंज' के प्रांगण में आज भी उनकी उपस्थिति का आभास करवाने लगीं। जीवन–यात्रा में आदि से अन्त तक न जाने कितने रिश्ते जुड़ते–टूटते हैं। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति के आने–जाने से जीवन–धारा प्रभावित नहीं होती है। कुछ रिश्ते सम्पूर्ण जीवन पर अपनी छाप छोड़ जाते हैं। मेरा सफर भी बाबा जी, छोटे बाबा जी एवं पापा जी के साथ शुरू हुआ। मेरे लिये यह अत्यंत गौरव की बात है कि मेरा जन्म उस परिवार में हुआ जहां 'डॉ. ज्योति प्रसाद जैन – इतिहास–मनीषी, विद्यावारिधि, लेखक, सम्पादक, समीक्षक', 'श्री अजित प्रसाद जैन जी – अवकाश–प्राप्त उप सचिव, उ.प्र. शासन, लेखक, सम्पादक', और 'श्री रमा कान्त जैन जी– अवकाश–प्राप्त उप सचिव, उ.प्र. शासन, सम्पादक–सरताज, साहित्य–रत्न, तमिल–कोविद, कवि, लेखक, सम्पादक', सरीखे विलक्षण प्रतिभा के धनी व्यक्तित्वों ने जन्म लिया। उनकी बड़ी–बड़ी उपलब्धियों को तो बड़े होने पर पहचाना। किन्तु घर की बड़ी बेटी होने के नाते, उनके स्नेह, दुलार की छत्र–छाया में मेरा बचपन पला–बढ़ा है। उनके कृतित्व पर लिखने के लिये तो प्रकाण्ड पण्डित हैं। अतः मैं उनके व्यक्तित्व के उन पहलुओं से आपको अवगत करवाऊंगी, जिनसे आप अनभिज्ञ हैं।

बाबा जी अनुशासन प्रिय, सादगी पसन्द एवं सन्तोषी प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। घड़ी की सुईयों के अनुसार उनकी दिनचर्या चलती थी। प्रातः चार बजे बिस्तर त्याग देना और रात नौ बजे सो जाना। इस बीच व्यायाम, मन्दिर, खाने–पीने, लिखने–पढ़ने, हर चीज का समय निर्धारित था। हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू इन चार भाषाओं पर उनकी मजबूत पकड़ थी। उनका अध्ययन बहुत व्यापक था। मैंने अपनी याद्दाश्त में उन्हें तख्त पर बैठे, कुछ–न–कुछ पढ़ते एवं लिखते हुए ही देखा था। घर में कोई भी पुस्तक आये, उसे जब तक समाप्त नहीं कर लेते थे, उनका मन किसी भी कार्य में नहीं लगता था। हम बच्चों को जब कभी पढ़ाई से सम्बन्धित कोई समस्या आती थी, तो बाबा जी उसे चुटकियों में हल कर देते थे। उनके

समझाने का तरीका बहुत अच्छा था। सभी त्योहारों को बहुत हर्ष–उल्लास के साथ मनाते थे। त्योहारों पर मिठाईयां और पकवान बनवाना, होली पर ठंडाई बनवाना और रंग खेलना, दीपावली पर तो आठ दिन पहले से ही हम सब बच्चों को बैठाकर हठरी, कण्डील व रंगोली बनवाते थे। सभी त्योहारों की कथा सुनाकर उसके महत्व को बताते थे। हमारे छोटे भाई अंशु जी तो उनसे इतना प्रभावित थे कि नौ साल की अल्पायु में ही उन्होंने पुस्तक लिखना प्रारम्भ कर दिया था। गर्मी की छुट्टियों में जब बच्चे खेलते थे, अंशु जी ने 'बाल मित्र पत्रिका' के नाम से एक हस्त–लिखित पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में घर का प्रत्येक सदस्य अपनी रचनायें लिखता था, बड़ों का आशीर्वाद रहता था। कक्षा 6 से 10 तक पत्रिका के पांच अंक निकले थे। इस प्रकार प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में बाबा जी के संस्कार हम सभी बच्चों में समाहित होते चले गये।

शायद ही कोई व्यक्ति होगा जो पापा जी की सरलता और नेकदिली का कायल न हुआ हो। वह विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। इतने सम्मान पाने के पश्चात् एवं इतने बड़े पद पर रहते हुए भी, उनकी विनम्रता को देखकर 'फलों से लदे वृक्ष' का स्मरण हो उठता है। बेहद सन्तोषी, हर परिस्थिति में खुश रहने वाले, वह हर किसी की मदद में तत्पर रहते थे। अपने घर एवं आफिस में कार्य करने वाले कर्मचारियों के प्रति भी अत्यंत उदार थे। उनकी याद में आज भी लोग आंखें नम कर लेते हैं। मान–सम्मान, सुख–दुख, निंदा–प्रशंसा जैसी चीजें उन्हें प्रभावित नहीं करती थीं। अपना–पराया जैसे शब्द तो उनके शब्द–कोश में ही नहीं थे। वह कहते थे कि "बेटा! गरीब का मजाक मत बनाओ, न जाने किस मजबूरी में वह ऐसा जीवन जी रहा है। गरीब भले ही अमीर न बन पाये किन्तु अमीर को गरीब बनने में पल भर भी नहीं लगेगा। कुरूप का उपहास मत करो, रूपवान को कुरूप होने में क्षण भर भी नहीं लगेगा। कभी भाग्य पर घमण्ड मत करो, न जाने कौन सा वक्त आ जाये? हमेशा वही वचन बोलो, जो तुम दूसरों से सुनना चाहते हो। ज्यादा अपेक्षा, ज्यादा तकलीफ देती है, किसी से भी ज्यादा उम्मीद मत करो।" सचिवालय में भी उनकी छवि मेहनती, ईमानदार और सत्चरित अफसर की थी। उनके व्यक्तित्व पर उनकी मां का प्रभाव अधिक था। संसार में रहकर भी एक तपस्वी–सा उनका जीवन था। पापा जी के इन्हीं गुणों के सांचे में हम बच्चों का जीवन भी ढलता चला गया।

छोटे बाबा जी हर रविवार को घर पर आते थे। ताऊ जी एवं पापा जी के साथ उनकी धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक विषयों पर चर्चा होती थी। पापा जी और ताऊ जी में परस्पर इतना प्रेम था कि हर जगह साथ जाते थे। अतः सचिवालय में भी ये 'दो भाइयों की जोड़ी' के नाम से मशहूर थे।

हमें बाबा जी और पापा जी से कुछ ऐसे संस्कार विरासत के रूप में मिले हैं जो आज की पीढ़ी में भी परिलक्षित हो रहे हैं।

प्रतिदिन प्रातः काल उठकर, सभी बड़ों को प्रणाम करके, उनका आशीर्वाद लेना। आपस में सबके दुख–सुख पूछना दिनचर्या का अंग है।

बहुत ज्यादा पूजा–पाठ अथवा व्रत आदि तो परिवार में नहीं था, किन्तु नहाने के पश्चात् घर में बने 'पूजा–घर' में जाकर दर्शन की परम्परा आज भी है। कर्म–काण्ड एवं जातिवाद से ऊपर उठकर मानवता के गुण परिवार के सभी सदस्यों में विद्यमान हैं। बाबा जी स्वयं भी 'सर्वधर्म सम्मेलन' से जुड़े थे। सभी धर्मो के बारे में जानने की जिज्ञासा उनमें थी, वह स्वयं भी कट्टर पंथी मानसिकता के विरोधी थे। इसके विपरीत सत्य, अहिंसा, दया, प्रेम, करुणा का पालन करना ही परिवार में धर्म समझा जाता है।

चार पीढ़ियो से परिवार में सतत् रूप से ज्ञान गंगा प्रवाहित हो रही है जिसके परिणाम स्वरूप परिवार के ज्यादातर सदस्य, उच्च पदों को सुशोभित करते हुए, देश, समाज और परिवार को गौरवान्वित कर रहे हैं। कई बार लोग उपहास भी उड़ाते हैं, कि इतनी सच्चाई और ईमानदारी से आज के जमाने में तो सफलता हासिल ही नहीं की जा सकती है। किन्तु हमारे समक्ष तो परिवार का स्पष्ट उदाहरण है।

परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता है– परिवार के बच्चे हों अथवा बहू–बेटियां। पर्दा–प्रथा नहीं थी किन्तु वाणी की मर्यादा का सभी पालन करते थे। बेटे–बेटियों को समान अधिकार प्राप्त हैं। बहुओं को बेटियों के समान दुलार देने में बाबा जी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सभी सदस्य ड्राइंगरूम में एक साथ बैठते थे और अपने विचार रखते थे। कठोर नियम नहीं थे किन्तु संस्कार पूर्ण अनुशासित जीवन था। यह सभी परम्परायें आज भी परिवार में निहित हैं।

निश्चित रूप से जो उपलब्धियां आज परिवार के सदस्यों ने हासिल की हैं, उनमें हमारे पूर्वजों से मिले संस्कारों की महत्वपूर्ण भूमिका है। अतः मैं अपने पूर्वजों को नमन करती हूं कि इसी प्रकार उनका

आशीर्वाद आने वाली पीढ़ियों को भी मिले। चंद पंक्तियां बाबा जी और पापा जी को समर्पित –

"वर्तमान अब 'भूत' हो गया"

कल का 'है' आज 'था' हो गया।
वर्तमान अब 'भूत' हो गया।।
नाम था पहचान जिसकी,
वह सदेही निराकार हो गया।
वर्तमान अब 'भूत' हो गया।।

मुखरित अब मूक हो गया,
जल बुलबुला सा विलुप्त हो गया।
हिण्डोला सा डोलता हुआ,
अस्तित्व अदृश्य हो गया।
वर्तमान अब 'भूत' हो गया।।

मां का आंचल सून हो गया,
पत्नी का सुहाग लुट गया।
बच्चों का अधिकार खो गया,
संवाद निराधार हो गया।
वर्तमान अब 'भूत' हो गया।।

— सौ. इन्दु कान्त जैन

बंसी कुटी, 21, दुली मोहल्ला, गुबरैला स्ट्रीट, फिरोजाबाद–283203

धुंधली यादें

आज विवाह के लगभग 27 वर्ष बीत जाने के बाद घर के उस आंगन में झांकने की कोशिश कर रही हूं जिसमें मैं अपने माता–पिता, चाचा–चाची एवं बाबा–दादी के साथ रहा करती थी। हम लोग संयुक्त परिवार में रहते थे। कुछ धुंधली–धुंधली यादें स्मृति–पटल पर उभर कर आ रही हैं। मेरे चाचा जी बहुत ही स्नेही स्वभाव के थे। वे 'गंगास्नान' पर हम सब बच्चों को मेला दिखाने अवश्य ले जाते थे और मेले से कुछ–न–कुछ अवश्य खरीदवाते थे। इसी प्रकार 'जन्माष्टमी' पर झांकी दिखाने ले जाते थे। मुझे याद आ रहा है कि एक बार हम लोगों ने चौक में 'खुनखुन जी की झांकी" देखने के लिए ज़िद की, तो वे हमें वह भी दिखा कर लाएं, ट्रैफिक काफी होने के कारण लौटने में हमें रात में काफी देर हो गई, पर हम सब बहुत खुश थे। हमारे खुशी से भरे चेहरे देखकर वह बहुत प्रसन्न हुए। उनका कहना था – बच्चों की खुशी से बढ़कर कुछ नहीं है। वे बहुत ही सादगी और स्नेह से परिपूर्ण स्वभाव के मालिक थे।

आदरणीय बाबा जी को याद करती हूं तो उनका जन्मदिन याद आ जाता है। बाबा जी के जन्मदिवस पर घर पर एक भव्य आयोजन हुआ करता था। उसमें काली टोपी और जैकेट पहनकर बैठे हुए उनकी छवि बहुत ही गरिमामयी प्रतीत होती थी। विद्वान तो वे थे ही, साथ ही अत्यधिक अनुशासन प्रिय थे। उनकी छत्र छाया में हम सभी बच्चों ने अच्छे संस्कार प्राप्त किये। उनका कहना था – "किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके संस्कारों से बनता है, आचार–विचार से बनता है और उसकी नींव तुम सब बच्चों में इस घर में रखी जा चुकी है।"

छोटे बाबा जी (श्री अजित प्रसाद जैन) का घर हमारे घर से थोड़ी दूरी पर था। बचपन में हमलोग प्रत्येक रविवार को उनके यहां जाया करते थे और टेलीविजन पर 'मूवी' देखकर ही वापस आते थे। हमें देखकर वे कितने प्रसन्न होते थे यह शब्दों में नहीं लिखा जा सकता, सिर्फ महसूस किया जा सकता है। मेरे विवाह के बाद जब भी मैं घर जाती थी तो 'हमलोग आए हैं', यह सुनकर मंदिर से ही वे हमारे घर आ जाया करते थे।

स्मृति–त्रय अंक में अपने स्मृति–पटल से कुछ धुंधली यादों के साथ आदरणीय बाबा जी, छोटे बाबा जी एवं चाचा जी को मैं भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करती हूं।

– सौ. शेफाली मित्तल

ए–14, एल्डिको ईडन पार्क, नीमरांना–301705

श्रद्धेय डॉ. साहब की लेखनी से प्रसूत कुछ चिन्तन–प्रसून

इतिहास की उपयोगिता

सुप्रसिद्ध पुराणेतिहासकार भगवज्जिनसेनाचार्य के अनुसार 'इति इह आसीत्' – यहां ऐसा हुआ – इस प्रकार अतीत में घटित घटनाओं का क्रमबद्ध प्रामाणिक विवरण इतिहास, इतिवृत्त या ऐतिह्य कहलाता है। वह 'महापुरुषसम्बन्धी' तथा 'महन्महदाश्रयात्' होता है, अर्थात् महापुरुषसंज्ञक उल्लेखनीय एवं चिरस्मरणीय व्यक्तियों से सम्बन्धित होता है और उन्हीं के महत्वपूर्ण चरित्र या कार्यकलापों पर आधारित होता है। इसी के साथ वह 'महाभ्युदयशासनम्' भी होता है, अर्थात् जो उसे पढ़ते, सुनते और गुनते हैं, उनके महान् अभ्युदय रूप लौकिक उत्कर्ष का भी कारण होता है।

वस्तुतः अतीत की कहानी मानव की स्पृहणीय निधि है। अपने पूर्वजों का चरित्र और उनकी उपलब्धियों को जानने की मनुष्य में स्वाभाविक जिज्ञासा एवं लालसा होती है। महाराज परीक्षित के मुख से **महाभारत**कार कहलाते हैं –

'न हि तृप्यामि पूर्वेषां श्रृण्वानश्चरितं महत्'

– मैं अपने पूर्व पुरुषों के महत् चरित्र को सुनते हुए अघाता नहीं, इच्छा होती है कि सुनता ही रहूं, सुनता ही रहूं।

एक बात और भी है, जैसा कि एक नीतिकार ने कहा है –

स्वजातिपूर्वजानां तु यो न जानाति सम्भवम्।
स भवेत् पुंश्चलीपुत्रसदृशः पितृवेदकः।।

अर्थात् जो व्यक्ति अपने पूर्वजों के इतिहास से अनभिज्ञ है वह उस कुलटा पुत्र के समान है जो यह नहीं जानता कि उसका पिता कौन है।

इसके अतिरिक्त, अपने पूर्व पुरुषों के गुणों एवं कार्यकलापों को जानकर मनुष्य स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करता है, उनसे प्रेरणा और स्फूर्ति प्राप्त करता है, और सबक़ भी लेता है जिससे उनके द्वारा की गयी ग़लतियों को दुहराने से बचता है। इस प्रकार अतीत के पृष्ठों का सदुपयोग वर्तमान के सन्दर्भ में करके लाभान्वित हुआ जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति, संस्था, समाज या जाति अपने अतीत के आदर्शो को कार्यान्वित करने का प्रयास करते हुए ही फलती–फूलती है और प्रगतिपथ पर उत्तरोत्तर अग्रसर होती जाती है। अतीत से सर्वथा कटकर वर्तमान का मूल्य नगण्य रह जाता है। भावी के बीज भी तो वर्तमान में ही रोपे जाते हैं। महाकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' के शब्दों में इतिहासकार का यही उद्देश्य होता है कि –

प्रियदर्शन इतिहास कण्ठ में
आज ध्वनित–हो काव्य बने।
वर्तमान की चित्रपटी पर
भूतकाल सम्भाव्य बने।।

वर्तमान के सन्दर्भ में ही अतीत का मूल्य है। भूतकाल में जो कुछ आदर्श और अनुकरणीय है उसे वर्तमान में सम्भाव्य बनाने में ही इतिहास की यथार्थ उपयोगिता है। इसी हेतु इतिहासकार भी यह प्रयत्न करता है कि वह

इतिहासप्रदीपेन मोहावरणघातिना।
सर्वलोकधृतं गर्भ यथावत्सम्प्रकाशयेत्।

अर्थात् इतिहासरूपी दीपक द्वारा अतीत सम्बन्धी अज्ञान एवं भ्रन्तियों के अन्धकार को दूर करके बीती हुई घटनाओं और तथ्यावलि को निष्पक्ष दृष्टि से यथावत् प्रकाशित कर दे। किन्तु इतिहासकार की भी अपनी सीनाएं और अक्षमताएं हैं। उसे महाकवि मैथिलीशरण गुप्त की इस उक्ति से सन्तोष करना पड़ता है कि –

प्राचीन पुरुषों के गुणों को कौन कह सकता यहां?
सम्पूर्ण सागर नीर यों घट मध्य रह सकता कहां?

तथापि अपनी बुद्धि, शक्ति और साधनों के अनुसार वह प्रयत्न करता है। उसे यह आशा भी रहती है कि आगे आनेवाला इतिहासकार उसके कार्य से प्रेरणा लेकर प्रकृत विषय को और अधिक विकसित, विस्तृत, संशोधित और परिमार्जित करेगा।

इस विषय में दो मत नहीं हैं कि किसी व्यक्ति, समाज या जाति की मान–मर्यादा उसके इतिहासबद्ध पूर्व–वृत्तान्त पर बहुत कुछ निर्भर करती है। जैन परम्परा की इतिहास सम्बन्धी अनभिज्ञता उसके विषय में प्रचलित अनेक भ्रन्तियों का मूल कारण है। स्वयं जैनों को अपने इतिहास में जैसा चाहिए वैसी अभिरुचि नहीं रही। इतिहास के ज्ञान बिना यदि जातीय जीवन में चेतना, स्फूर्ति, स्वाभिमान और आशा का तिरोभाव हो जाता है, तो इतिहास का सम्यक्ज्ञान सोतों को जगा देता है।

आकाशवाणी लखनऊ से 24 जनवरी, 1988, को
नदिया एक, घाट बहुतेरे
कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रसारित **जैन धर्म** पर डॉ. साहब की वार्ता

जैन परम्परा में वस्तु–स्वभाव को धर्म कहते हैं – किसी भी वस्तु का जो परानपेक्ष, निजी स्वभाव होता है, वही उसका धर्म कहलाता है। सम्पूर्ण चराचर विश्व में जड़, अचेतन या भौतिक पदार्थो से सर्वथा भिन्न जो जानने, चिन्तन करने, अनुभव करने वाला संवेदनशील चेतन, जीवात्मा या आत्मा नामक वस्तुतत्व है, उसका अपना निजी गुणसमूह या स्वभाव ही उसका धर्म है। दूसरे शब्दों में, सत्य, अहिंसा, क्षमा, घृति, आर्जव, मार्दव, निर्लोभता, संयम, त्याग, तितिक्षा, अवैरभाव आदि गुणसमूह ही आत्मा का स्वभाव है, अतः उसका धर्म है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद्, मत्सर आदि विकार भावों के कारण वह स्वभाव दबा रहता है। जब ये विकार भाव आत्मा से दूर हो जाते हैं, तो वह अपने शुद्ध स्वरूप में चमक उठता है, पूर्णता को प्राप्त कर लेता है, आत्मा से परमात्मा बन जाता है।

राग, द्वेष, काम, क्रोधादि समस्त विकारों के पूर्ण विजेता को **जिनदेव** कहते हैं, उनके द्वारा अनुभूत, आचरित ओर प्रतिपादित मार्ग को ही व्यवहार में **धर्म** कहते है, तथा उस मार्ग पर चलने वालों को **जैन** कहते हैं। मानवी इच्छाओं, कमजोरियों और विकारों से भरे हुए संसार–प्रवाह को प्रायः सभी परम्पराओं में नदी या सागर की उपमा दी गई है। उसको पार करके मुक्ति या परम प्राप्तव्य को प्राप्त करना ही धर्म का लक्ष्य है। जिस स्थान पर नदी को सुगमता से पार किया जा सकता है, उसे **घाट** या **तीर्थ** कहते हैं। अतएव, जैन परम्परा में संसार–सागर से सुगमतापूर्वक पार कराने वाले साधनों, उपायों या मार्ग को **धर्मतीर्थ** कहते हैं, और उस धर्मतीर्थ के पुरस्कर्ता को **तीर्थंकर** कहते हैं। पुरातन काल में वृषभादि–वर्धमान महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकर जिनदेव या अर्हत परमात्मा हो गये हैं, जो सर्वज्ञ–वीतराग, हितोपदेशी थे और जिन्होंने प्राणीमात्र के हित–सुख के लिए अपने–अपने समय में, पुनः–पुनः धर्मतीर्थ की स्थापना की थी।

इस अध्यात्म–सत्य–अहिंसा–समता–सदाचार एवं निवृत्ति प्रधान धर्म–तीर्थ का लक्ष्य आत्मा या मानव का सर्वतोमुखी उन्नयन है – उसका भौतिक, दैहिक, मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नयन है। इस धर्म–तीर्थ की साधना में वर्ण, जाति, कुल, गोत्र, वय, लिंग, धनी–निर्धन, ऊंच–नीच का कोई भेदभाव नहीं है। सभी स्त्री–पुरुषों को अपने–अपने

व्यक्तित्व में मानवोचित मूल्यों को विकसित करने का, अच्छे और सच्चे मानव बनने का प्रयत्न करने का पूर्ण एवं समान अधिकार है। सभी आत्महित एवं आत्मकल्याण का ही नहीं, अपितु स्वपर–कल्याण का अपनी–अपनी शक्ति, क्षमता एवं परिस्थितियों के अनुसार साधन करने में स्वतंत्र हैं। प्रत्येक व्यक्ति सच्चा इंसान, सच्चा मानव, अपने देश और राष्ट्र का ही नहीं, विश्व का सच्चा, अच्छा और उपयोगी नागरिक बन सकता है। मात्र 'जीओ और दूसरों को जीने दो' ही नहीं, वरन् 'सबके जीने में सहायक बनो', समता, सहयोग एवं सह–अस्तित्व की भावना से जीवन यापन का अभ्यास करो। पापी से नहीं पाप से घृणा करो, शत्रु से नहीं शत्रुता से परहेज करो। सबके साथ मित्रवत् आचरण करो। दीन–दुखियों, रोगियों, विपत्तिग्रस्तों, अभावग्रस्तों की भरसक सेवा, सहायता के लिए सदैव तत्पर रहो। धर्म–अर्थ–काम रूपी त्रिवर्ग या पुरषार्थो की आत्मानुशासनपूर्वक निर्विरोध साधना करने से व्यक्ति का मोक्ष रूपी लक्ष्य स्वतः उत्तरोत्तर निकट आता चला जायेगा। ऐहिक अभ्युदय सम्पादन करते हुए मुक्ति रूप निःश्रेयस या परमार्थ की सिद्धि का यही राजमार्ग है। जैन धर्म के तात्विक, सैद्धान्तिक या दार्शनिक तथ्यों की चर्चा न करके उसकी कतिपय विशेषताएं जो उसके प्रत्येक स्वर में मुखर होती हैं वे हैं –आत्मौपम्य, अहिंसा, अपरिग्रह, आत्मपुरुषार्थ और अनाग्रह।

आत्मौपम्य का अर्थ है कि सभी प्राणी समान हैं; एक दूसरे से स्वतन्त्र हैं; सभी को समान रूप से दुख–सुख की अनुभूति होती है; दुख और विपत्ति से सभी बचना चाहते हैं और सभी सुख चाहते हैं। प्रत्येक आत्मा स्वयं में पूर्ण है, असीम शक्तियों का पुंज है, उसमें पूर्ण दिव्यत्व निहित है और परमात्मा बनने की शक्ति है। जब सब प्राणी समान हैं तो हमें प्रत्येक के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये जैसा कि हम चाहते हैं वे हमारे साथ करें। व्यक्ति–व्यक्ति में बाहरी भेदों को लेकर कोई भेद न करें, सबको अपने समान मानकर और जानकर उनका यथोचित सम्मान करें, उनके अधिकारों का मान करें। उनके सुख–दुख, सुविधाओं–असुविधाओं का ध्यान रखें और उनके जीवन–पथ को प्रशस्त बनाने में सहयोगी बनकर इस सुखद् समताभाव या समदर्शिता को चरितार्थ करें।

अहिंसा से तात्पर्य है कि हम किसी भी प्राणी को अपने मन, वचन या काय से मानसिक या शारीरिक कष्ट अथवा पीड़ा न पहुंचावें, अपितु दूसरों के कष्ट–पीड़ा को दूर करने के लिए सदा तत्पर रहें। वास्तव में प्रत्येक आत्मा स्वयं में पूर्ण अहिंसक होती है, किन्तु अपने लौकिक स्वार्थों,

जिह्वा के स्वाद, मनोविनोद या शत्रुता–वैर आदि के कारण एक प्राणी दूसरे प्राणी को पीड़ा पहुंचाता है, उसकी हत्या करता है। उसके मन में जब इस प्रकार दूसरों को कष्ट पहुंचाने के भाव होते हैं तब पहले तो स्वयं उसकी भाव हिंसा होती है और फिर उसके परिणामस्वरूप उस दूसरे प्राणी की भी कायिक एवं मानसिक हिंसा होती है। वास्तव में जैसा कि महात्मा गांधी ने भी कहा है – 'सत्य ही भगवान है और जब हम व्यवहार में सत्य का प्रयोग करते हैं, दूसरों के प्रति सत्याचरण करते हैं तो उसी का नाम अहिंसा है।' सत्य और अहिंसा का उपासक सबका मित्र होता है। वह सर्वथा निर्वैर होता है। वह जहां भी जाता है सुख और शान्ति का ही प्रसार करता है। हिंसा से हिंसा कभी समाप्त नहीं होती। अहिंसा ही वह शस्त्र है जिससे सब प्रकार की हिंसा समाप्त हो सकती है। सच्चा वीर ही सच्चे अर्थों में अहिंसा का पालन कर सकता है। अहिंसक व्यक्ति को प्रत्येक दीन–दुखी, विपत्तिग्रस्त, अभावग्रस्त प्राणी के प्रति दया, करुणा, अनुकम्पा स्वतः होती है। जिस व्यक्ति में सुदृढ़ आत्मबल, आत्मविश्वास, सहनशक्ति और धैर्य होता है वही मन–वचन–काय से अहिंसक हो सकता है। वह बैरी से भी प्रेम करेगा। शत्रुता या प्रतिशोध की भावना उसके मन में नहीं आती। वह अपनी क्षमाशीलता द्वारा बड़े से बड़े शत्रु को भी अपना मित्र बना सकता है। इसका यह अर्थ भी नहीं होता कि अन्याय का, अत्याचार का, सामाजिक अपराधों का प्रतिकार न किया जाये और निष्क्रिय होकर उन्हें सहन कर लिया जाये तथा देश की रक्षा, संस्कृति की रक्षा, परिवार की रक्षा या अपने प्राणों की या धन–सम्पत्ति की रक्षा के लिये अपनी पूरी शक्ति के साथ सक्रिय न हुआ जाये।

अपरिग्रह भी सत्य और अहिंसा के आचरण का एक प्रमुख रूप है। प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण अधिकार है कि वह अपनी उचित इच्छाओं की पूर्ति के लिये अपनी पूरी क्षमता के साथ न्यायोचित उपायों से अर्थ का उत्पादन और उपार्जन करे, किन्तु साथ ही अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को सीमित रखने का भी प्रयत्न करता रहे और उससे बचे आर्थिक साधनों का उपयोग सार्वजनिक हित के लिये करे। धनलिप्सा, तृष्णा, लोभ आदि से बचने का, कोई आर्थिक अपराध न करने का और दूसरों का शोषण न करने का सबसे समर्थ साधन 'अपरिग्रहवाद' है। अपरिग्रही मनोवृत्ति वाले समाज में समाजवाद या साम्यवाद स्वतः प्रतिष्ठित हो जाता है।

जैन धर्म नियतिवाद का विरोधी है और **आत्मपुरुषार्थ** के ऊपर पूरा बल देता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है। जैसा

बोता है, वैसा काटता है। जैसा कुछ वह करता है उसका फल उसे ही स्वयं भोगना पड़ता है। कोई दैवी या बाह्य शक्ति किसी को दण्ड या वरदान नहीं दे सकती, उसको उसके किये कर्मों के फल से नहीं बचा सकती। स्वयं अपने पुरुषार्थ द्वारा, अपने सदाचरण, अपने स्वयं के त्याग, तप, संयम आदि के द्वारा वह स्वयं पूर्व में किये दुष्कर्मों के फल का भी निवारण कर सकता है और शनैः शनैः कर्म–बन्धनों से मुक्त होकर आत्मपुरुषार्थ द्वारा ही परमात्मा भी बन सकता है।

जैन धर्म को 'अनेकान्त दर्शन' भी कहते हैं क्योंकि इसकी विशेषता है **अनाग्रह** अर्थात् यह किसी एकान्त पक्ष का कदाग्रह नहीं करता, अपितु प्रत्येक वस्तु को सभी विभिन्न दृष्टिकोणों से देखने और समझने का प्रयत्न करता है। अतएव जैन धर्म का अनुयायी किसी भी मत, धर्म या पन्थ के साथ निर्विरोध रह सकता है। दूसरों के विचार, दृष्टि या पक्ष को उन्हीं के दृष्टिकोण से समझने और जानने के प्रयत्न द्वारा सहज ही उनके साथ समन्वय या सामंजस्य स्थापित कर लेता है। इसका प्रतिफल समदर्शिता, सर्वधर्म समभाव या परधर्म सहिष्णुता, होता है। शायद यही कारण है कि जैन धर्म के अनुयायी सदैव और सर्वत्र एक शान्तिपूर्ण समाज के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं। इतिहास में अनेक युग ऐसे आये जब कई प्रदेशों में जैनधर्म का प्राधान्य रहा, शक्तिशाली राज्य सत्ताओं का भी इसे प्रश्रय मिला, किन्तु धर्म के नाम पर अन्य धर्मियों पर किसी प्रकार का अत्याचार करने का कोई दृष्टान्त नहीं मिलता।

इस प्रकार उपरोक्त **पंच–सूत्रीय–स्वर** जैन धर्म और संस्कृति में सदैव गुंजायमान होता रहा है। इस धर्म के अनुयायी सभी वर्णों, जातियों और वर्गों में इस महादेश भारतवर्ष के कोने–कोने में सदैव से रहते आये हैं – कभी कहीं बहुसंख्या में, कभी कहीं अल्पसंख्या में। वे अपनी शान्तिप्रियता, दयालुता, सद्नागरिकता के लिये प्रायः प्रख्यात रहे हैं। साथ ही देश के ज्ञान, विज्ञान, साहित्य, कला आदि प्रायः सभी क्षेत्रों में उन्होंने भारतीय संस्कृति को समृद्ध बनाने में प्रशंसनीय योग दिया है। परोपकारी या सर्वजनोपयोगी अनगिनत संस्थायें एवं प्रवृत्तियां इनके द्वारा स्थापित और संचारित होती आई हैं। देश के राष्ट्रीय एकीकरण, स्वतंत्रता प्राप्ति संग्राम और नवनिर्माण में भी इनका पूरा योग रहा है। **'नदिया एक, घाट बहुतेरे' की उक्ति को चरितार्थ करने वाले सद्धर्म के रूप में 'जैन धर्म' अपना उल्लेखनीय स्थान रखता है।**

सिन्धु घाटी सभ्यता

(यह अनुचिंतन डॉ. साहब की पुस्तक *भारतीय इतिहास : एक दृष्टि* से संकलित है।)

नृतत्त्वविज्ञान (Anthropology) सम्बन्धी एवं पुरातात्त्विक अन्वेषणों से प्राप्त निष्कर्षों की प्राचीन अनुश्रुतियों एवं मान्यताओं के साथ संगति बैठाने से यह स्पष्ट है कि प्राचीनतम काल में जब मनुष्य की सभ्यता का सर्वप्रथम उदय हो रहा था, कम–से–कम भारतवर्ष से सम्बन्धित मनुष्य जाति तीन प्रधान् समुदायों में विभक्त थी जिनके आचार–विचार और संस्कृति एक दूसरे से भिन्न थे।

प्रथम समुदाय उत्तरी भारत के पूर्वी मैदानी भाग में गंगा–यमुना के दोआबे से लेकर अंग–मगध पर्यन्त निवास करता था। ये लोग शान्तिप्रिय और शाकाहारी थे, लोक–परलोक, आत्मा के अस्तित्व, पुनर्जन्म, जीववाद आदि में विश्वास करते थे, वे मूर्तिपूजक थे और महापुरुषों की भक्ति करते थे। योगादि द्वारा शरीर और मन के नियन्त्रण में इनकी आस्था थी। इनके आचार–विचार अहिंसक एवं निवृत्त्यात्मक थे। इनका सांस्कृतिक रुझान आध्यात्मिकता की ओर विशेष था। सम्भव है कि उनकी निवास–भूमि के भौतिक एवं भौगोलिक वातावरण, जलवायु, सर्व प्रकार के भोज्य शाकाहार की प्रचुरता एवं सुलभता, जीवन निर्वाह के लिए किसी प्रकार के विशेष उद्यम की आवश्यकता न होना तथा उनका विशिष्ट बौद्धिक संस्थान या पूर्व संस्कार इनकी ऐसी मनोवृत्ति में सहायक रहे हों। अवश्य ही उक्त प्रारम्भिक काल में बहुत कुछ विकसित हो जाने पर भी उसके उपर्युक्त विचार एवं विश्वास अति अस्पष्ट, अव्यवस्थित, संक्षिप्त और सरल थे। यह समुदाय **मानव वंश** के नाम से प्रसिद्ध हुआ क्योंकि मनुओं एवं कुलकरों का जन्म इसी जाति में हुआ था और उन्होंने समय–समय पर इस जाति का पथ–प्रदर्शन किया था। आध्यात्मिक एवं बौद्धिक दृष्टि से अपने आपको औरों से श्रेष्ठ समझने के कारण सम्भवतया कालान्तर में यह अपने आपको आर्य भी कहने लगे। अन्तिम मनु एवं प्रथम मानव तीर्थंकर ऋषभदेव का जन्म भोगभूमि के अन्त में इस मध्यदेशीय मानव वंश में हुआ था और इस जाति में कर्म–भूमि या कर्म–प्रधान जीवन का विधिवत् प्रवेश उन्होंने कराया था, ऐसा विश्वास किया जाता है।

दूसरा समुदाय उत्तर, दक्षिण तथा पूर्व के अधिकतर पर्वतीय प्रदेशों में सीमित था। इस समुदाय के लोग **विद्याधर** कहलाते थे। आध्यात्मिक दृष्टि से ये लोग पूर्वोक्त मानवों की अपेक्षा हीन थे किन्तु कला–कौशल एवं उद्योग–धन्धों में वे उनसे बहुत बढ़े–चढ़े थे। इन दिशाओं में उन्होंने मानवों की अपेक्षा अधिक शीघ्रता के साथ पर्याप्त उन्नति कर ली थी और मानवों में कर्मभूमि के आगमन के उपरान्त भी बहुत काल पीछे तक वे उनसे इन विषयों में आगे ही रहे। यदि मानवों ने ज्ञान का विकास किया तो इन विद्याधरों ने विज्ञान का विकास किया। नाग, ऋक्ष, यक्ष, वानर आदि अनेक कुलों में विभाजित यह भारतीय विद्याधर जाति भारतीय महासागर में फैले हुए विभिन्न द्वीपों एवं प्रदेशों में भी शनैः–शनैः फैल गयी। कालान्तर में इस विद्याधर जाति के वंशजों को ही द्रविड संज्ञा दी गयी। मानवों और विद्याधरों के बीच प्रारम्भ से ही घनिष्ठ मैत्री सम्बन्ध रहे। परस्पर विवाह आदि भी होते थे जिससे रक्त मिश्रण बढ़ा। विद्याधरों ने मानवों के ज्ञान से लाभ उठाया तो मानवों ने विद्याधरों के विज्ञान से।

तीसरा समुदाय मानव वंश की ही एक शाखा थी जो किसी बहुत पूर्व समय में मध्यदेशीय मूल मानवजाति से पृथक होकर उत्तर–पश्चिम के पर्वतीय प्रदेशों की ओर चली गयी थी। यह समुदाय ज्ञान–विज्ञान दोनों में ही बहुत पीछे तक पिछड़ा रहा। पशुपालन इसका प्रधान कर्म रहा। यह समुदाय घुमक्कड़ था और उत्तर–पश्चिम भारतवर्ती अपने मूल स्थान से चलकर इसके अनेक दल हिन्दुकुश के दर्रों से पार होकर मध्य एशिया तक फैल गये। वहां से एक शाखा कुछ उत्तर की ओर जा बसी, दूसरी पश्चिम की ओर यूरोप के यूनान आदि में और तीसरी ईरान में बस गयी। किन्तु इन सभी शाखाओं का परस्पर यातायात एवं सम्पर्क चिरकाल तक बना रहा, जब तक कि वे विभिन्न भूभागों में स्थायी रूप से बसकर अपनी–अपनी स्वतन्त्र सभ्यता के विकास में संलग्न न हुई। अपने देश–काल, रहन–सहन, जीवन–व्यापार आदि परिस्थितियों के कारण ये लोग सामान्यतया भौतिकवादी, प्रकृति या प्राकृतिक शक्तियों के उपासक, मांसाहारी, हिंसक एवं प्रवृत्ति–प्रधान रहे। ये ही लोग कालान्तर में **आर्य** अथवा **इण्डोआर्य** नाम से प्रसिद्ध हुए। ये न तो मध्यदेशीय मानव आर्यों की भांति आत्मज्ञानरत थे और न विद्याधरों की भांति विज्ञान एवं कला–कुशल। अतएव इनकी सभ्यता के विकास का आरम्भ उन दोनों से पीछे हुआ।

अस्तु, अयोध्या प्रदेश के नाभिसुत **ऋषभदेव** ने पाषाणकालीन प्रकृत्याश्रित असभ्य युग का अन्त करके ज्ञान–विज्ञान संयुक्त **कर्म–प्रधान**

मानवी सभ्यता का भूतल पर सर्वप्रथम ॐ नमः किया। अयोध्या से हस्तिनापुर पर्यन्त प्रदेश इस नवीन सभ्यता का प्रधान केन्द्र था। उन्होंने असि, मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य और विद्या रूप लौकिक षट्कर्मो का तथा देवपूजा, गुरुभक्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दान रूप धार्मिक षट्कर्मो का मानवों को उपदेश दिया, राज्य–व्यवस्था की, समाज संगठन किया और नागरिक सभ्यता के विकास के बीज वपन किये। कर्माश्रय से क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के रूप में श्रम विभाजन का भी निर्देश किया। वे स्वयं इक्ष्वाकु कहलाये, इससे उन्हीं से भारतीय क्षत्रियों के प्राचीनतम इक्ष्वाकु वंश का प्रारम्भ हुआ। लोक को लौकिक एवं पारलौकिक उपदेश देकर उन्होंने निःस्पृह निरीह योगमार्ग अपनाया और कैलाश पर्वत से निर्वाण लाभ किया।

ऋषभ के पुत्र सम्राट **भरत चक्रवर्ती** ने सर्वप्रथम सम्पूर्ण भारत को राजनीतिक एकसूत्रता में बांधने का प्रयत्न किया। उन्हीं के नाम से यह देश **भारतवर्ष** कहलाया और प्राचीन आर्यो का भरतवंश चला। ऋषभ के ही एक अन्य पुत्र का नाम द्रविड था जिन्हें उत्तरकालीन द्राविडों का पूर्वज कहा जाता है। सम्भव है, किसी विद्याधर कन्या से विवाह करके ये विद्याधरों में ही जा बसे हों और उनके नेता बने हों, जिससे वे लोग कालान्तर में द्राविड कहलाये। भरत के पुत्र अर्ककीर्ति से सूर्यवंश, उनके भतीजे सोमयश से चन्द्रवंश तथा एक अन्य वंशज कुरु से कुरुवंश चला, ऐसी भी अनुश्रुतियां हैं।

ऋषभ द्वारा उपदेशित यह अहिंसामय सरल आत्मधर्म उस काल में सम्भवतः ऋषभधर्म, आर्हदधर्म, मग्ग या मार्ग अर्थात् मुक्ति और सुख का मार्ग कहलाया। इसके द्वारा अनुप्राणित संस्कृति ही **श्रमण संस्कृति** कहलायी। ऋषभ के उपरान्त आने वाले अजितनाथ आदि विभिन्न तीर्थंकरों ने इस संस्कृति का पोषण किया और उक्त सदाचार प्रधान योगधर्म का पुनः–पुनः प्रचार किया।

सिन्धु घाटी सभ्यता

जिस काल में मध्यदेश में उपर्युक्त श्रमण संस्कृति धीरे–धीरे विकसित हो रही थी, प्रायः उसी काल में उक्त ऋषभ धर्म एवं श्रमण संस्कृति से कथंचित् प्रभावित विद्याधरों की लौकिकता एवं भौतिकता प्रधान उत्कृष्ट **नागरिक सभ्यता** का प्रारम्भ एक ओर नर्मदा नदी के काठे में और दूसरी ओर सिन्धु नदी की घाटी में हो रहा था।

20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में भारतीय पुरातत्व विभाग की ओर से सिन्धु प्रान्त के लरकाना जिले में तथा पश्चिमी पंजाब के माण्टगुमरी

जिले में जो महत्वपूर्ण खुदाई एवं खोज–शोध हुई है उससे भारत में एक अत्यन्त प्राचीन एवं अत्युत्कृष्ट नागरिक सभ्यता के अस्तित्व पर आश्चर्यजनक प्रकाश पड़ा है। सिन्धु घाटी की **मोहनजोदड़ों** (मुर्दों का टीला) नाम से विख्यात उक्त **सभ्यता** सभ्य मानव की अधुनाज्ञात् प्राचीनतम सभ्यता मानी जाती है। पुरातत्वज्ञों ने एक पूरा नगर खोद निकाला है जिसकी नगर योजना, पक्की ईंटों के सुन्दर सुचारु भवन, हाट–बाजार, चौरस्ते, सभा भवन, विविध अस्त्र–शस्त्र, आभूषण, खेल–खिलौने, मुद्राएं, मूर्तियां आदि विविध पुरातात्विक सामग्री ने जो वहां से प्राप्त हुई है, वर्तमान संसार को आश्चर्याभिभूत कर दिया है। गेहूं की खेती और उसका भोज्यान्न के रूप में उपयोग, रुई की खेती और उससे वस्त्र बनाना, स्वर्ण के आभूषण आदि सिन्धु घाटी के इन प्राचीन विद्याधरों के ही आविष्कार माने जाते हैं। विद्वानों के मतानुसार इस सभ्यता का जीवनकाल ई.पू. 6000 से लेकर 2500 वर्ष तक रहा प्रतीत होता है। अब तक पिरेमिडों एवं फैराओ बादशाहों के पूर्ववर्ती प्राचीनतम मिस्र की नील घाटी की सभ्यता तथा पश्चिमी एशिया में दजला–फ़रात की घाटी की सुमेर सभ्यता ही सर्व–प्राचीन समझी जाती थीं। किन्तु अब उपर्युक्त सिन्धु घाटी की मोहनजोदड़ों सभ्यता उन दोनों से ही पूर्ववर्ती ही नहीं वरन् मानव की सर्वप्रथम नागरिक एवं औद्योगिक सभ्यता अनुमान की जाती है, और प्राचीन मिस्री, सुमेरी आदि सभ्यताएं उसके पीछे की तथा अनेक रूपों में उसकी ऋणी मानी जाती हैं। यह सभ्यता लोहे के आविष्कार से पूर्व की अर्थात् **धातु–पाषाण (Chalcolithic)** या **ताम्र युग** की मानी जाती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि **तीसरे तीर्थंकर सम्भवनाथ** के समय में सर्वप्रथम इस प्राचीन सभ्यता का प्रारम्भ हुआ। सम्भवनाथ का विशिष्ट लांछन अश्व है और सिन्धु देश चिरकाल तक अपने सैन्धव अश्वों के लिए प्रख्यात रहा है। मौर्य काल तक सिन्धु में एक सम्भूत्तर जनपद और साम्भव (सम्बूज) जाति के लोग विद्यमान थे जो बहुत सम्भव है कि सिन्धु सभ्यता के मूल प्रवर्तकों एवं तीर्थंकर सम्भवनाथ के मूल अनुयायियों की ही वंश–परम्परा में हों। यह सभ्यता अवैदिक एवं अनार्य ही नहीं वरन् प्राग्वैदिक थी तथा इसके पुरस्कर्ता ऋषभ प्रणीत योग–धर्म के अनुयायी और श्रमण संस्कृति के उपासक प्राचीन विद्याधर अर्थात् भारतीय द्रविड जाति के पूर्वज थे, ऐसा प्रतीत होता है।

सर जॉन मार्शल का कथन है कि "सिन्धु संस्कृति एवं वैदिक संस्कृति के तुलनात्मक अध्ययन से यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि इन

दोनों संस्कृतियों में परस्पर कोई सम्बन्ध या सम्पर्क नहीं था। वैदिक धर्म सामान्यतया अमूर्तिपूजक है जबकि मोहनजोदड़ों एवं हड़प्पा में मूर्तिपूजा सर्वत्र स्पष्ट परिलक्षित होती है। मोहनजोदड़ों के मकानों में हवन–कुण्डों का सर्वथा अभाव है।" इन अवशेषों में नग्न पुरुषों की आकृतियों से अंकित मुद्राएं बहुसंख्या में मिलती हैं। जॉन मार्शल के अनुसार वे प्राचीन योगियों की मूर्तियां हैं। एक अन्य विद्वान का कथन है कि "ये मूर्तियां स्पष्टतया सूचित करती हैं कि धातुपाषाण काल में सिन्धु घाटी के निवासी न केवल योगाभ्यास ही करते थे बल्कि योगियों की मूर्तियों की पूजा भी करते थे।" रामप्रसाद चांदा का कथन है कि "सिन्धु घाटी की अनेक मुद्राओं में अंकित न केवल बैठी हुई देवमूर्तियां योगमुद्रा में हैं और उस सुदूर अतीत में, सिन्धु घाटी में योग मार्ग के प्रचार को सिद्ध करती हैं बल्कि खड्गासन देवमूर्तियां भी योग की कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं और यह कायोत्सर्ग ध्यान मुद्रा विशिष्टतया जैन है। **आदिपुराण** आदि में इस कायोत्सर्ग मुद्रा का उल्लेख ऋषभ या वृषभदेव के तपश्चरण के सम्बन्ध में बहुधा हुआ है। जैन ऋषभ की इस कायोत्सर्ग मुद्रा में खड्गासन प्राचीन मूर्तियां ईस्वी सन् के प्रारम्भ काल की मिलती हैं। प्राचीन मिस्र में प्रारम्भिक राज्यवंशों के समय की दोनों हाथ लटकाये खड़ी मूर्तियां मिलती हैं। किन्तु यद्यपि इन प्राचीन मिस्री मूर्तियों तथा प्राचीन यूनानी कुरोई नामक मूर्तियों में प्रायः वही आकृति है तथापि उनमें उस देहोत्सर्ग–निस्संग भाव का अभाव है जो सिन्धु घाटी की मुद्राओं पर अंकित मूर्तियों में तथा कायोत्सर्ग मुद्रा से युक्त जिन मूर्तियों में पाया जाता है। ऋषभ शब्द का अर्थ वृषभ है और वृषभ जैन ऋषभदेव का लांछन है।" वस्तुतः सिन्धु घाटी की अनेक मुद्राओं में वृषभ युक्त कायोत्सर्ग योगियों की मूर्तियां अंकित मिली हैं जिससे यह अनुमान होता है कि वे वृषभ लांछन युक्त योगीश्वर ऋषभ की मूर्तियां हैं। ऋषभ या वृषभ का अर्थ धर्म भी है, शायद इसीलिए कि लोक में धर्म सर्वप्रथम तीर्थंकर ऋषभ के रूप में ही प्रत्यक्ष हुआ। प्रो. रानाडे के मतानुसार "ऋषभदेव ऐसे योगी थे जिनका देह के प्रति पूर्ण निर्ममत्व उनकी आत्मोपलब्धि का सर्वोपरि लक्षण था।" उत्तरकालीन भारतीय सन्तों के योगमार्ग में भी ऋषभदेव को उक्त मार्ग का मूल प्रवर्तक माना गया है। प्रो. प्राणनाथ विद्यालंकार न केवल सिन्धुघाटी के धर्म को जैन धर्म से सम्बन्धित मानते हैं वरन् वहां से प्राप्त एक मुद्रा (नं. 449) पर तो उन्होंने 'जिनेश्वर' (जिन इइसरह) शब्द भी अंकित रहा बताया है और जैन आम्नाय की श्रीं, हीं, क्लीं आदि देवियों की मान्यता भी वहां रही बतायी है। वहां से नागफण के छत्र से युक्त योगी

मूर्तियां भी प्राप्त हुई हैं जो सातवें तीर्थंकर सुपार्श्व की हो सकती है। उनका लांछन स्वस्तिक है और तत्कालीन सिन्धु घाटी में स्वस्तिक एक अत्यंत लोकप्रिय चिह्न दृष्टिगोचर होता है, सड़कें और गलियां तक स्वस्तिकाकार मिलती हैं।

कुछ विद्वान मोहनजोदड़ों सभ्यता के प्राग्आर्यकालीन होने में सन्देह करते हैं। इनके अनुसार आर्यो का मूल निवास स्थान भारतवर्ष ही है और सिन्धु सभ्यता आर्य सभ्यता की ही एक प्राथमिक अवस्था है। किन्तु मत–बाहुल्य इसी पक्ष में है कि सिन्धु सभ्यता अनार्य ही नहीं थी वरन वह निश्चयतः द्रविड थी। उसकी भाषा, धर्म, संस्कृति इत्यादि सब द्रविडीय थे। डॉ. हेरास के अनुसार "मोहनजोदड़ों का प्राचीन नाम नन्दूर अर्थात मकरदेश था और नन्दूर लिपि मनुष्य की सर्वप्रथम लिपि तथा यह सभ्यता मनुष्य की भूतल पर सर्वप्रथम सभ्यता थी।" डॉ. हेरास इस सभ्यता को द्रविडीय ही मानते हैं। इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने योग्य है कि 'मकर' नौवें तीर्थंकर पुष्पदन्त का लांछन हैं। जॉन मार्शल इस सिन्धु सभ्यता की जननी उत्तर भारत के मध्यदेश में उदित एवं विकसित संस्कृति को मानते हैं। प्रो. एस. श्रीकण्ठ शास्त्री का कहना है कि "अपने दिगम्बर धर्म, योग मार्ग, वृषभ आदि विभिन्न लांछनों की पूजा आदि बातों के कारण प्राचीन सिन्धु सभ्यता जैन धर्म के साथ अद्भुत सादृश्य रखती है, अतः वह मूलतः अनार्य अथवा कम–से–कम अवैदिक तो है ही।"

अस्तु, ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त प्राचीन सिन्धु सभ्यता के पुरस्कर्ता प्राचीन विद्याधर जाति के लोग थे जिन्हें द्रविडों का पूर्वज कहा जा सकता है। किन्तु साथ ही उनके प्रेरक एवं धार्मिक मार्गदर्शक मध्यदेश के वे मानववंशी मूल आर्य थे जो तीर्थंकरों के आत्मधर्म और श्रमण संस्कृति के उपासक थे। तीसरे तीर्थंकर सम्भवनाथ से लेकर नौंवे तीर्थंकर पुष्पदन्त तक का काल सिन्धु सभ्यता के विकास का काल है। प्रायः इसी समय **हड़प्पा** नाम से सूचित प्रदेश में लघुभगिनी के रूप में एक अन्य सभ्यता विकसित होनी शुरू हुई। इसका काल ई.पू. 3000 से 2000 वर्ष माना जाता है। हड़प्पावाले भी अनार्य और अवैदिक थे, किन्तु इनमें उन पश्चिमी आर्यो का, जो कालान्तर में वैदिक संस्कृति को जन्म देने वाले थे, कुछ मिश्रण रहा हो सकता है। कम–से–कम नवोदित वैदिक आर्यो का हड़प्पावालों के साथ ही सर्वप्रथम एवं सबसे भीषण संघर्ष हुआ। वैदिक साहित्य के दस्यु, असुर आदि यही थे। पश्चिमी एशिया में एक के बाद एक आने वाली सुमेर, अस्सुर, बाबुली आदि सभ्यताओं का सम्पर्क अपने से ज्येष्ठ मोहनजोदड़ों

एवं समकालीन हड़प्पा सभ्यता के साथ विशेष रहा। मिस्र की प्राचीनतम सभ्यता भी प्रायः इसी काल की है। ई.पू. 2350 के लगभग हड़प्पावालों के साथ पश्चिमी एशिया की सुमेरी सभ्यता का सम्पर्क निश्चित रूप से रहा प्रतीत होता है। तत्कालीन कालगणना में यह तिथि महत्वपूर्ण है। हड़प्पा सभ्यता के चिह्न गंगा, चम्बल और नर्मदा के काठों में, पश्चिमी उत्तर प्रदेश (हस्तिनापुर) आदि में, पश्चिमी राजस्थान तथा गुजरात—काठियावाड़ आदि प्रदेशों में भी प्राप्त हो चुके हैं जो उसके विस्तृत प्रसार के सूचक हैं। इस सभ्यता की उत्तराधिकारिणी झूकर आदि परवर्ती सभ्यताएं मानी जाती हैं, और तदुपरान्त आर्यो (इण्डो—आर्यनों) का तथा उनकी वैदिक सभ्यता का उदय हुआ माना जाता है।

✦✦✦

वीतरागस्वरूपं

न रागं न द्वेषं, न मोहं न क्षोभं।
न कोपं न मानं, न माया न लोभं।।
न योगं न भोगं, न व्याधि न शोकं।
चिदानंदरूपं नमो वीतरागं।। 1 ।।

न हस्तौ न पादौ, न घ्राणं न जिह्वा।
न चक्षु न कर्ण, न वक्त्रं न निद्रा।।
न स्वामी न भृत्यो, न देवो न मृत्याः।
चिदानंदरूपं नमो वीतरागं।। 2 ।।

न बंधो न मोक्षो, न नामं न रूपं।
न जन्मं न कर्म, अलक्ष्यं अनूपं।।
सनातन विशुद्धं, परं ज्योति स्वरूपं।
चिदानंदरूपं नमो वीतरागं।। 3 ।।

✦✦✦

जय महावीर नमो!

जय त्रिशला–नन्दन महावीर नमो!
भव–भय–भंजन वीर नमो!!
सिद्धारथ राजदुलारे, तिहुं जग के उजियारे।
जन–जन के प्यारे, जय महावीर नमो!
पाप–निकंदन वीर नमो!!
लेकालोक प्रकाशी, भविजन कमल विकाशी।
गुण अनन्त की राशी, जय महावीर नमो!
हरि–कृत–वन्दन वीर नमो!!
मोक्ष–मग–नेता, करम–कलंक–विजेता।
शुद्धातम–चेता, जय महावीर नमो!
रहित–सपंदन वीर नमो!!
करुणा–सागर पर–उपकारी, सत्य–अहिंसा अवतारी।
सुधर्म–ध्वज–धारी, जय महावीर नमो!
भक्त–उर–चन्दन वीर नमो!!
सन्मति के दाता, वर्द्धमान सुख–साता।
अखिल जग–त्राता, जय महावीर नमो!
ज्योति–मन–रंजन वीर नमो!!

(डॉ. साहब की उपरोक्त पद्य रचनाएं जैन धर्म की दृष्टि से विशिष्ट हैं। **वीतराग स्वरूपं** में उन्होंने निराकार निर्विकार शाश्वत आत्म–तत्व का स्वरूप निर्दिष्ट किया है। **जय महावीर नमो** कीर्तन शैली में है।)

✦✦✦

श्रद्धेय डॉ. साहब के विशिष्ट प्रकाशन

The Jaina Sources of the History of Ancient India (100 BC-AD 900)

It was presented as a thesis for Ph.D. It is the first comprehensive work dealing with the Jaina sources of the history of Ancient India. Besides indicating the source material, it finally determines the dates of Mahavira's Nirvana, Vikrama Era, Saka Era and Earlier Saka Era. It also dwells upon the importance of the Sarasvati Movement, that is, the movement for redaction of scriptures among the Jains.

It was first published in 1964 and its revised edition has been published in 2005.

It can be had from Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd., Post Box 5715, 54, Rani Jhansi Road, New Delhi-110055.

Jainism, The Oldest Living Religion

It was first published by the Jaina Cultural Research Society, Varanasi, in 1951. Its 2nd edition was published in 1988 by P.V. Research Institute, now Parshwanath Vidyapeeth, I.T.I. Road, Karaundi, Varanasi-221005, and can be had from there.

It was translated in Gujrati (जैन–धर्म साहुधी वधु प्राचीन अनेजुवन्त धर्म) by Hemant J. Shah in 1979. It has also been translated in Hindi (जैन धर्म : प्राचीनतम जीवित धर्म) by Pulak Goyal and published in 2011, which can be had from Rich Marketing, 1535, Sarasvati Colony, Cherital Ward, Jabalpur-482002.

Religion And Culture Of the Jains

It is a handy compendium of Jainism for the general reader who wants to acquaint himself with the genesis, history, tradition, philosophy, way of life, art, literature and other cultural aspects of this ancient but still flourishing religion of India.

It was first published in 1975 on the 2500th anniversary of Mahavira's Nirvan. Since then its editions have been brought out in 1977, 1983, 1999 and 2006.

It can be had from the Bharatiya Jnanpith, 18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110003.

भारतीय इतिहास : एक दृष्टि

प्रागैतिहासिक काल से 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति तक का भारत का समग्र इतिहास इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि सभी ऐतिहासिक स्रोतों का संज्ञान लेकर और भारत के सभी प्रदेशों को दृष्टि में रखते हुये एक प्रवाहपूर्ण विवरण प्रस्तुत किया जाये। इसका पहला संस्करण 1961 में प्रकाशित हुआ था और शीघ्र ही 1966 में इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ। तत्पश्चात् 1999 और 2004 में इसके अनुवर्ती संस्करण प्रकाशित हुए।

इसे भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली–110003, से प्राप्त किया जा सकता है।

प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलाएं

इसमें महावीर युग (600–500 ईसा पूर्व) से आधुनिक युग 1947 ई. तक के उन व्यक्तियों का परिचय और राष्ट्र एवं समाज के प्रति उपलब्धियों का विवरण दिया गया है जो जैन धर्म के अनुयायी थे। जैन धर्मानुयायियों के कृतित्व के सम्बन्ध में प्रायः जन सामान्य में अज्ञान है और कुछ भ्रान्त धारणायें भी हैं जिनका निरसन इस पुस्तक के माध्यम से होता है। इसका प्रकाशन प्रथमतः 1975 में हुआ था और दूसरा संस्करण 2000 में प्रकाशित हुआ।

इसे भी भारतीय ज्ञानपीठ से प्राप्त किया जा सकता है।

युग–युग में जैन धर्म

86–पृष्ठीय इस पुस्तक में जैन धर्म का ऐतिहासिक परिचय संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। जैन धर्म और दर्शन, अनुश्रुतिगम्य इतिहास, ऐतिहासिक काल में जैन धर्म, जैन इतिहास के साधन स्रोत, जैन कला, और भारतीय संस्कृति को योगदान, शीर्षकों के अन्तर्गत, विषय का विवेचन, सरल भाषा और सहज शैली में किया गया है। सहायक ग्रन्थ सूची भी दी गई है ताकि जिज्ञासु पाठक उन ग्रन्थों के माध्यम से अपनी जिज्ञासा का निवारण कर सकें।

डॉ. साहब के देहावसान के उपरांत 2002 में इसका प्रकाशन हो सका। इसे प्राच्य श्रमण भारती, 12/1, प्रेमपुरी, निकट जैन मंदिर, मुजफ्फर नगर–251001 से प्राप्त किया जा सकता है।

भगवान महावीर स्मृति ग्रन्थ

भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष में "श्री महावीर निर्वाण समिति, उत्तर प्रदेश" द्वारा इस ग्रन्थ का प्रकाशन 1975 में किया गया था। इसका सम्पादन और अधिकांश लेखन श्रद्धेय डॉ. साहब द्वारा किया गया था। यह सात खण्डों में व्यवस्थित है। खण्ड एक में महावीर वचनामृत, खण्ड दो में महावीर स्तवन (इसमें प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत और हिन्दी भाषा में उपलब्ध रचनाएं दी गई हैं), खण्ड तीन में महावीर युग, जीवन और देन, खण्ड चार में जैन धर्म, दर्शन और संस्कृति, खण्ड पांच में शाकाहार, खण्ड छह में उत्तर प्रदेश और जैन धर्म, और खण्ड सात में श्री महावीर निर्वाण समिति के गठन, कार्यकलाप एवं उपलब्धियां, सम्बन्धी विविध सामग्री संचयित है। यह ग्रन्थ संदर्भित सभी विषयों पर प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध कराता है परन्तु इसका खण्ड छह उत्तर प्रदेश में जैन धर्म के महत्व को विशेष रूप से रेखांकित करता है।

इस ग्रन्थ को 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–226004' से प्राप्त किया जा सकता है।

प्रकाशनाधीन महत्वपूर्ण प्रकाशन

Jainism Through The Ages

जैन ज्योति : ऐतिहासिक व्यक्तिकोश

प्रकाशित जैन साहित्य (1950 तक) (1958 में प्रकाशित यह पुस्तक अब अप्राप्य है परन्तु इसके महत्व को दृष्टिगत रखते हुए इसका पुनः प्रकाशन अभीष्ट है।)

डॉ. साहब के लेखों तथा पुस्तिकाओं के संकलन भी प्रकाशित किया जाना अभीष्ट है।

यदि कोई प्रकाशक उपरोक्त के प्रकाशन में सहयोग करेंगे तो हम उनके आभारी होंगे। वे इस सम्बन्ध में **शोधादर्श** के सम्पादक श्री नलिन कान्त जैन से सम्पर्क कर सकते हैं।

✦✦✦

युग–पुरुष

श्रद्धेय श्री अजित प्रसाद जैन

आगमन	महाप्रयाण
1 जनवरी, 1918 ई.	25 जून, 2005 ई.
मेरठ	लखनऊ

विषय सूची

		शीर्षक	लेखक	पृ.
⊗	1	गुरुगुण–कीर्तन : युग–पुरुष श्री अजित प्रसाद जैन	श्री रमा कान्त जैन	73–79
⊗	2	भाई अजित प्रसाद	श्री ज्ञानचंद जैन	80–83
⊗	3	आदर्श सम्पादक : श्री अजित प्रसाद	श्री संजीव 'ललित'	84–87
⊗	4	अपराजेय व्यक्तित्व : श्री अजित प्रसाद जैन	डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल	88–93
⊗	5	सेतु : स्व. श्री अजित प्रसाद	श्री अंशु जैन 'अमर'	94–98
*	6	श्री अजित प्रसाद जैन का अभिनन्दन	श्री रमा कान्त जैन	99–100
⊗	7	अंतिम यात्रा	श्री नलिन कान्त जैन	101–102
⊗	8	स्मृति के झरोखे से	डॉ. शशि कान्त	103–105
	9	संस्मरण श्रद्धांजलि	श्री निर्मल कुमार जैन सेठी	106
	10	सादर समर्पित	श्री लूणकरण नाहर जैन	106
+	11	समाधिमरण	श्री अजित प्रसाद जैन	107–109
●	12	समाज सुधार में धर्म गुरुओं की महत्वपूर्ण भूमिका हो	,,	110–111
☼	13	कुत्ते भौंकते रहें, कारवां चलता गया	,,	112–114

स्रोत : * शोधादर्श 40 व 50

● शोधादर्श 53

\+ शोधादर्श 55

⊗ शोधादर्श 57

☼ समन्वय वाणी, मई 2000, प्रथम पक्ष

गुरुगुण–कीर्तन : युग–पुरुष

श्री अजित प्रसाद जैन

अगणित स्मृतियां मानस पर छायी हुई हैं
उनमें 'अजित' की ज्योति समायी हुई है।
अभिभावक, शिक्षक, मार्गदर्शक, सखा रहे वह मेरे,
उनकी आरती करने थाली सजायी हुई है।।

आज इस स्तम्भ के अन्तर्गत जिन महामना का स्मरण करने जा रहा हूं वह कोई और नहीं मेरे अपने सगे चाचा जी श्री अजित प्रसाद जी हैं। शैशव में उन्होंने मुझे अपनी गोद में खिलाया था, किशोरावस्था में जब पिता जी प्रवास पर रहते थे उन्होंने अभिभावक, शिक्षक और मार्गदर्शक के कर्तव्यों का निर्वहन किया था और अब वृद्धावस्था में उनका सखा भाव मैंने पाया। वह वय में मुझसे 18 वर्ष बड़े थे। वह 87 पार चुके थे और मैं 69। इस वय में भी युवकोचित उमंग के धनी चाचा जी के रहते हुए मैं उनके सामने अपने को बच्चा ही मानता रहा भले ही औरों की दृष्टि में वृद्ध हो चला था। जीवन का बहुभाग, लगभग 63 वर्ष, मेरा लखनऊ में ही बीता और इस अवधि में चाचा जी का सतत स्नेहपूर्ण सान्निध्य प्राप्त रहा। मैंने उन्हें यहां युवा से वृद्ध होते हुए देखा। अपने शैशव से अब तक की लम्बी अवधि के अगणित प्रिय प्रसंग स्मृति–पटल में दबे पड़े हैं। उन सबको ढूंढ कर, झाड़ पोंछकर बाहर निकालना और फिर तरतीब से सजाना सरल नहीं। फिर समय पर उपयुक्त शब्द भी सामने नहीं पड़ते। लेखनी रुक–रुक जाती है।

उनके महाप्रयाण से पूर्व के 6 मासों में उनकी रुग्णावस्था के दौरान कदाचित् ही कोई दिन ऐसा रहा हो जब मैं और भाई साहब डॉ. शशि कान्त जी, अर्थात् हम दोनों, उनसे मिलने उनके आवास न गये हों और उनके साथ दो–तीन घंटे न बिताये हों। वह बड़ी आतुरता से हम दोनों के आने की प्रतीक्षा करते रहते थे। वह हम दोनों से मित्रवत व्यवहार करते थे। विभिन्न विषयों पर चर्चा करते थे और हंसी मजाक करते थे। अपनी गम्भीर बीमारी में भी वह यथाशक्य प्रसन्नचित्त रहने का प्रयास करते थे। काल ने अनेक बार उनके द्वार पर दस्तक दी, किन्तु मृत्युंजयी बन वह उसे अपने पास से भगाते रहे। अनेक व्याधियों से ग्रसित दिन प्रतिदिन शिथिल होती जा रही जर्जर कांया और अतीव दृष्टिमंदता के कारण जब पढ़ना–लिखना

तो दूर ठीक से उठना—बैठना भी उन्हें दूभर हो रहा था उन्हें दुनिया जहान की खबरें जानने और सामाजिक गतिविधियों से अवगत होते रहने की ललक बनी रहती थी। वह बड़ी उत्सुकता से उनके बारे में हमसे पूछते थे। आये हुए पत्रों को ध्यान से सुनते थे और उन पर अपना मन्तव्य व्यक्त करते थे। उनकी मनः शान्ति हेतु हम लोग उनके प्रिय धार्मिक पाठों, स्तोत्रों आदि को सुनाते रहते थे। **भक्तामर स्तोत्र** और **बारह भावना** उन्हें बहुत प्रिय थे।

22 जून की प्रातः शौचालय जाने हेतु बिस्तर से उठते समय उनका वॉकर असन्तुलित हो गया, गिरकर उनका सिर दीवार के कोने से जा टकराया और रक्त बहने लगा। वह अचेत हो गये। उपचार के लिये उन्हें नर्सिंग होम ले जाया गया। सात टांके लगे। जब हम लोगों को पता चला तुरन्त हम उन्हें देखने गये। वह होश में आ गये थे, बिस्तर पर लेटे हुए थे। घाव की पीड़ा तो थी ही, ठीक से बोल पाना भी कठिन हो रहा था, किन्तु मानसिक सन्तुलन बना हुआ था। कुछ देर बाद उन्होंने धीरे से आवाज दी, "रमा कान्त, इधर आना।" अपने पास बुलाया और बोले, "देखो मेरे कागजों में सुरभि (उनकी कनिष्ठ पौत्रवधू) को लिखाया हुआ एक कागज रखा है उसे निकाल लाओ और कागज—कलम लेकर आओ।" आदेशानुसार उनके कागजों में से ढूंढ कर वह कागज मैंने निकाला। उस पर लिखा था 'चमत्कार की जयजयकार'। वह पहले भी दो—तीन बार मुझे बता चुके थे कि इस बार उनकी इच्छा इस विषय पर सम्पादकीय लिखने की है। अतः मैं समझ गया कि वह उनका सम्पादकीय है। उन्होंने कहा, "पढ़कर सुनाओ।" मैंने उन्हें पढ़कर सुनाया। उन्हांने बड़े ध्यान से उसे सुना, कुछ संशोधन बताये और फिर मुझे आगे लिखाया और कहा, "इसे ठीकठाक कर लेना।" मैंने उसी दिन उनके उस आलेख को साफ किया और इस प्रकार **शोधादर्श** के लिये उनका अन्तिम सम्पादकीय तैयार हो गया।

23 जून की प्रातः सूचना मिली कि वह अचेत हो गये हैं। हालत गम्भीर है। हम लोग फौरन पहुंचे। डाक्टर को बुलाया, दिखाया। उसने बताया, "कॉमा में चले गये हैं। तुरन्त नर्सिंग होम ले जायें।" वह मधुमेह के रोगी रहे थे। उन्हें तुरन्त एम्बुलेन्स द्वारा अवध नर्सिंग होम, जहां वह पहले भी कई बार इन्टेन्सिव केयर यूनिट में भर्ती रहे थे, ले गये। वहां उपचार से उन्हें चेत आ गया। ज्ञात हुआ कि उनकी शुगर शून्य हो गई थी। ड्रिप चढ़ रही थी। होश में आते ही कहने लगे, "मुझे यहां क्यों ले

आये? घर ले चलो।" और अगले दिन 24 जून की अपराह्न तक जबर्दस्ती अस्पताल से छुट्टी कराकर अपने घर आ गये।

उसी दिन संध्या समय जब मैं उन्हें घर पर देखने पुनः गया वह आंगन में चारपाई पर चुपचाप अचेत–सी अवस्था में लेटे हुए थे। उनकी यह दशा देख मैंने कहा, "चाचा जी, आप अस्पताल से क्यों चले आये?" वह काफी देर तक कुछ बोले नहीं। फिर धीरे से उनके मुख से बोल फूटा, "अरे बेटा, थोड़ा थक गया था। घबराने की कोई बात नहीं है।" फिर बोलने–बतियाने का जो क्रम चला वह लगभग एक घण्टे तक मुझसे प्रेमपूर्वक बतियाते रहे। और अगले दिन 25 जून, 2005, की प्रातः ही उन्होंने हम सबसे मुंह मोड़ लिया।

श्री अजित प्रसाद जी का जन्म 1 जनवरी, 1918 ई., को मेरठ शहर के एक संभ्रान्त धर्मनिष्ठ दिगम्बर जैन गोयल गोत्रीय अग्रवाल परिवार में श्री पारसदास और श्रीमती रामकटोरी की तीसरी व अन्तिम सन्तति के रूप में हुआ था। इतिहास–मनीषी, विद्यावारिधि स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन उनके अग्रज रहे और मैनावती बड़ी बहन। उनकी शिक्षा मेरठ और आगरा में हुई थी। सन् 1936 ई. में मेरठ कालेज (आगरा विश्वविद्यालय से सम्बद्ध) से बी.ए. परीक्षा उत्तीर्ण की और संघ लोक सेवा आयोग से चयनित होकर सेना मुख्यालय, शिमला, चले गये। वहां पर सन् 1939 ई. तक सेवारत रहे। तदनन्तर उ.प्र. लोक सेवा आयोग से चयनित होकर लखनऊ उ.प्र. सचिवालय में कार्य करने आये और निरन्तर प्रगति करते हुए सन् 1976 ई. में उप सचिव, उ.प्र. शासन, वित्त एवं सह–वित्तीय सलाहकार, खाद्य एवं रसद विभाग, के पद से वह ससम्मान सेवा–निवृत्त हुए। सेवा–निवृत्ति के उपरान्त भी सन् 1977 ई. में उन्हें राज्य सरकार द्वारा उ.प्र. संस्कृत अकादमी की स्थापना होने पर उसका मानद कोषाध्यक्ष–सदस्य नियुक्त कर दिया गया।

उ.प्र. सचिवालय में अपने 37 वर्ष के सेवाकाल में श्री जैन यूं तो विभिन्न महत्वपूर्ण विभागों में महत्वपूर्ण पदों पर आसीन रहे और उनकी छवि एक कर्तव्यनिष्ठ, कुशल एवं ईमानदार अधिकारी की रही, किन्तु इस अवधि में उनकी दो विशिष्ट उपलब्धियां रहीं। पहली यह कि सन् 1947 ई. से 1950 ई. के मध्य राज्य सरकार द्वारा गठित समितियों में क्रमशः सह–सचिव और सचिव के पदों पर कार्यरत रह उन्होंने प्रदेश के चिकित्सा क्षेत्र में देशी चिकित्सा पद्धतियों – आयुर्वेद और यूनानी – के उन्नयन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन समितियों की संस्तुतियों के फलस्वरूप प्रदेश

में स्वतंत्र आयुर्वेद विभाग और राजकीय आयुर्वेदिक कालेज अस्तित्व में आये। उन्होंने आयुर्वेद विभाग की एक मैनुअल (संहिता) भी तैयार की। प्रदेश में आयुर्वेदिक–यूनानी अकादमी की स्थापना हुई और एक वृहद् आयुर्वेदिक–यूनानी पुस्तकालय का बीजारोपण हुआ।

दूसरी यह कि सन् 1974 ई. में जब भगवान महावीर स्वामी का 2500वां निर्वाण महोत्सव मनाने हेतु राज्य सरकार द्वारा 'श्री महावीर निर्वाण समिति, 'उ.प्र.,' गठित की गई तब उस समिति में मानद उप सचिव के रूप में समिति का प्रायः सारा कार्यभार (अपने सेवा कार्यो के अतिरिक्त) संभालकर समिति की संस्तुतियों को साकार रूप दिया और प्रदेश भर में समिति द्वारा संस्तुत कार्यक्रमों को अपने मार्गदर्शन में सम्पन्न कराया।

अपने अग्रज डॉ. ज्योति प्रसाद जी के संसर्ग में बाल्यकाल से ही उनमें पढ़ने–लिखने और धार्मिक एवं सामाजिक कार्यो में भाग लेने की अभिरुचि रही। वह जैन कुमार सभा, मेरठ, के सक्रिय सदस्य रहे और उसकी हस्तलिखित पत्रिका के सम्पादक भी। सन् 1935 ई. में मेरठ कालेज की वार्षिक पत्रिका में उनका लेख 'कविवर वृन्दावन का काव्य सौष्ठव' प्रकाशित हुआ था। सन् 1937 ई. में शिमला में वहां की जैन सभा के अन्तर्गत एक जैन पुस्तकालय की स्थापना उन्होंने कराई और उसके प्रथम मंत्री बने। लखनऊ आने पर यहां चारबाग में जैन मित्र मण्डल की स्थापना कराने वालों में वह रहे। कालान्तर में जैन मिलन स्थापित हो जाने पर वर्षो तक उसकी कार्यकारिणी के सदस्य तथा तदनन्तर उसके संरक्षक भी रहे। जैन शिक्षा संस्थान, लखनऊ, के भी वह वर्षो महामंत्री व उपाध्यक्ष रहे। स्थानीय अग्रवाल सभा एवं अग्रवाल शिक्षा संस्थान से भी वह लगभग 50 वर्ष तक सक्रिय रूप से जुड़े रहे और उसकी स्वर्ण जयन्ती स्मारिका के प्रधान सम्पादक रहे।

राज्य सरकार द्वारा गठित 'श्री महावीर निर्वाण समिति' का कार्यकाल पूरा हो जाने पर सन् 1976 ई. में उसकी उत्तराधिकारी संस्था के रूप में "तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र." के गठन का श्रेय श्री अजित प्रसाद जी को है। वह इसके संस्थापक–महामंत्री रहे और अन्त तक इसकी सभी प्रवृत्तियों का सुचारू संचालन जिस निष्ठा के साथ करते रहे उसका उदाहरण विरल है।

सन् 1977 ई. में जब उत्तर प्रदेश (अब उत्तराखण्ड) दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी गठित हुई तब 10 वर्ष तक संयुक्त महामंत्री के रूप में कमेटी के प्रायः सभी कार्यो को उन्होंने सम्पादित किया।

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा और उसके मुख पत्र **'जैन गज़ट'** का कार्यालय अजमेर से लखनऊ लाने में श्री अजित प्रसाद जी की विशिष्ट भूमिका रही और सन् 1981 ई. से 1988 ई. तक वह उक्त साप्ताहिक के प्रकाशन एवं समाचार संपादन से जुड़े रहे। अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद और दिगम्बर जैन महासमिति से भी उनका सक्रिय जुड़ाव रहा तथा समाज के शीर्ष नेताओं से सम्पर्क बना रहा।

दिगम्बर जैन समाज ही नहीं श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरापंथ प्रभृति सभी आम्नायों के विद्वत्जन, त्यागीवृन्द और श्रावकों से उनका परिचय–सम्बन्ध भगवान महावीर स्वामी के 2500वें निर्वाण महोत्सव हेतु सरकारी आयोजनों के सिलसिले से जो जुड़ा वह अन्त तक सद्भावपूर्ण बना रहा। तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., का गठन भगवान महावीर के सभी अनुयायियों का समान रूप से प्रतिनिधित्व करने के लिये किया गया। इस समिति द्वारा स्थापित शोध पुस्तकालय में जैन दर्शन, संस्कृति, साहित्य आदि में शोध करने वाले छात्रों एवं अन्य जिज्ञासुओं के उपयोग हेतु जैन धर्म की सभी आम्नायों का धार्मिक साहित्य ही नहीं अपितु तुलनात्मक अध्ययन के लिये जैनेतर बौद्ध, वैदिक आदि अन्य धर्मो का साहित्य भी संग्रहीत किया गया। साथ ही, सामान्य पाठकों के लिये रुचिकर लौकिक साहित्य भी प्रचुर परिमाण में संकलित हुआ।

फरवरी 1986 ई. में समिति ने इतिहास–मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की प्रेरणा से उनके प्रधान सम्पादकत्व में एक चातुर्मासिक शोध पत्रिका **शोधादर्श** का प्रकाशन प्रारम्भ किया। जून 1988 ई. में डॉक्टर साहब के महाप्रयाण के उपरान्त चाचा जी ने हम दोनों भाइयों से **शोधादर्श** का सम्पादन संभालने को कहा। वह केवल उसकी प्रबन्ध व्यवस्था से ही जुड़े हुए थे। **शोधादर्श** या किसी अन्य पत्र–पत्रिका ने सामान्यतया उनकी लेखनी का स्पर्श नहीं किया था। किन्तु नवम्बर 1988 ई. में **शोधादर्श** के अंक 8 में 'चिन्तन–कण' के अन्तर्गत (1) 'णमोकार महामंत्र की ऐतिहासिकता पर एक दृष्टि' तथा (2) 'चम्पा के राजा श्रीपाल' पर उन्होंने जो अपनी लेखनी चलानी प्रारम्भ की वह अविकल अन्त तक चलती रही। नवम्बर 1996 ई. से उन्होंने **शोधादर्श** के प्रधान सम्पादक का दायित्व संभाल लिया। **शोधादर्श** के **अंक 8 से अंक 56** तक 49 अंकों में श्री अजित प्रसाद जी की लेखनी से प्रसूत **39 सम्पादकीय/अग्रलेख, 60 अन्य लेख, 163 समाचार विमर्श** तथा **तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र**

समिति विषयक 22 प्रगति प्रतिवेदन आदि प्रकाशित हुए। साथ ही **'साहित्य–सत्कार', के अन्तर्गत 294 कृतियों का समीक्षात्मक परिचय** देने का उन्हें श्रेय रहा।

श्रमण संस्था और जैन समाज में परिलक्षित हो रही विकृतियों और शिथिलाचार से वह दुखी थे। उनके विरुद्ध निर्भीक हो उन्होंने अपनी धारदार लेखनी चलाई। उनके अग्रलेखों, चिन्तन–कणों और समाचार–विमर्शो ने समाज को झकझोरा और अनेक प्रबुद्ध जन उनके विचारों से सहमत हो उनके प्रशंसक हो गये। **शोधादर्श** के अतिरिक्त जयपुर से प्रकाशित पाक्षिक **समन्वय वाणी** के भी मई 1993 से प्रधान सम्पादक रहे और उक्त पत्रिका में जनवरी 2005 तक उनके **74 सम्पादकीय** प्रकाशित हुए। इन दोनों पत्रिकाओं के माध्यम से उन्होंने जैन पत्रकारिता को नये आयाम प्रदान किये और इन पत्रिकाओं की प्रतिष्ठा में चार चांद लगाये। जैन पत्रकारिता के क्षेत्र में उनके द्वारा किये गये उत्कृष्ट योगदान हेतु उन्हें सन् 1999 ई. में प्राच्य श्रमण भारती द्वारा 'आचार्य विमलसागर (भिण्ड) श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार' से तथा सन् 2003 में अहिंसा इन्टरनेशनल द्वारा 'प्रेमचंद जैन पत्रकारिता पुरस्कार – वर्ष 2002' से सम्मानित किया गया।

यही नहीं, उनकी विद्वत्ता और अन्य उपलब्धियों को दृष्टि में रखते हुए अन्तर्राष्ट्रीय संस्था अमेरिकन बायोग्रैफिकल इन्स्टीट्यूट, नार्थ कैरोलीना, यू.एस.ए., ने अक्टूबर 2003 में अपनी प्रतिष्ठात्मक उपाधि 'Man of the Year-2003' से तथा सन् 2004 ई. में उन्हें अपने Research Board of Advisors में Honorary Appointment देकर सम्मानित किया। जैन मिलन लखनऊ, अग्रवाल सभा लखनऊ, अनन्त–ज्योति विद्यापीठ और उ.प्र. सचिवालय सेवा अधिकारी संघ आदि स्थानीय संस्थाओं द्वारा भी वह सम्मानित किये गये।

चाचा जी का विवाह 18 जनवरी, 1937 ई., को सरूरपुर (जिला बागपत) निवासी ला. नाहरसिंह जैन की सुपुत्री धनवती से हुआ था। उनके दो पुत्र सूर्यकान्त और मणिकान्त तथा दो पुत्रियां सरोज और सन्तोष हुईं जो संभ्राम्त घरानों में विवाहित हैं। क्रूर काल ने उनके जीवनकाल में ही पहले 4 नवम्बर, 1993 ई., को उनकी जीवनसंगिनी को तथा तदनन्तर क्रमशः 21 जुलाई, 2000 ई., को उनके कनिष्ठ पुत्र और 21 अगस्त, 2002 ई., को उनके ज्येष्ठ पुत्र को उनसे छीन लिया। हृदय आघात और दृष्टिमन्दता से वह पहले से ही ग्रसित थे। किन्तु ये सब आघात समताभाव से सहते हुए वह अविकल अपने कर्तव्य–पथ पर चलते रहे, अपने

पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन करते रहे और अध्ययन–लेखन कार्य में लगे रहे। चाचा जी की दिनचर्या बड़ी नियमित थीं। वह पहले घर में ही योगासन करते थे, बाद के वर्षो में टहलने के लिए डी.ए.वी. कालेज तक जाने लगे और वहीं योगासन करने लगे। जब तक सामर्थ्य रही वह प्रतिदिन प्रातः जिन मन्दिर दर्शन हेतु जाते रहे। सामर्थ्य न रहने पर घर में ही पूजा–पाठ करने लगे। उन्हें अनेक स्तोत्र–पाठ आदि कण्ठस्थ थे। अखबार पढ़े बिना उन्हें चैन नहीं थी। जितनी पत्र–पत्रिकाएं उनके पास आती थीं उन्हें पूरा पढ़ते थे और यथा–आवश्यक उनमें निशान भी लगाते थे। पुस्तकालय हेतु जो पुस्तकें आती थीं उन्हें भी यथासंभव पूरा पढ़ डालते थे। कोई भी अभ्यागत उनके पास से जलपान किये बिना जा नहीं सकता था। उनमें गज़ब की इच्छा शक्ति थी और जीवन जीने की कला वह जानते थे।

सहज मानवीय दुर्बलताओं के रहते हुए वह सद्‌गुणों से भरपूर एक संवेदनशील मानव थे जो दूसरों की यथाशक्य सहायता करने को तत्पर रहते थे। अपने परिवारजनों के लिये तो वह वात्सल्यमूर्ति थे ही अन्य जन जो भी उनके सम्पर्क में आते थे उनके मधुर व्यवहार से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते थे। उनके चले जाने से जहां समाज ने बहुमुखी प्रतिभा के धनी, समाज के सजग प्रहरी एक निडर पत्रकार को खो दिया है वहीं मुझे भी व्यक्तिगत क्षति हुई कि मुझे अब 'बेटा' कहकर पुकारने वाला कोई नहीं रहा। भले ही वह अब सदेह हमारे बीच नहीं हैं उनकी स्मृतियां मेरे मन–मन्दिर में सजी रहेंगी।

उनके जीवन के विविध पहलुओं, बहुआयामी व्यक्तित्व और कृतित्व को रेखांकित करने के उद्‌देश्य से उनके महाप्रयाण पर उनके स्वजनों, इष्टमित्रों, स्नेहीजनों और प्रशंसकों से प्राप्त संस्मरणों, भावोद्‌गारों और श्रद्धासुमनों को इस अंक (57) में संजोया गया है। उनकी लेखनी से कुछ चयनित अंश और **शोधादर्श** एवं **समन्वय वाणी** में किये गये उनके योगदान का विवरण भी इसमें समाहित है। यदि यह अंक उनकी पुण्य स्मृति को अक्षुण्ण रखने में और पाठकों को उनके व्यक्तित्व से प्रेरणा लेने में सक्षम हो सका तो यह हमारी उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

– रमा कान्त जैन

भाई अजित प्रसाद

— पत्रकारिता–भूषण श्री ज्ञानचंद जैन

भाई अजित प्रसाद पुरुषार्थ में विश्वास करते थे। बड़े जीवट के आदमी थे। उनके व्यक्तित्व में विनम्रता के साथ फौलादी दृढ़ता की रेखाएं भी थीं। दृढ़ संकल्पवान थे। बुद्धि और युक्तियुक्त तर्क से शासित होते थे, अंधविश्वासों, अंधरूढ़ियों तथा सामाजिक मूढ़ताओं के कट्टर विरोधी थे। दबंग आदमी थे।

वह पत्रकारिता के क्षेत्र में मेरे सहधर्मी थे। मेरे जीवन की आधी शती हिन्दी भाषा तथा साहित्य की सर्वतोमुखी उन्नति और उसके माध्यम से समाज तथा देश के नवजागरण में अपना यत्किंचित् योगदान करने के महत् उद्देश्य की डोर में बंधकर दैनिक हिन्दी पत्रकारिता में बीती। भाई अजित प्रसाद ने उत्तर प्रदेश की प्रशासनिक सेवा से अवकाश–ग्रहण के बाद जैन धर्म तथा समाज की सेवा करने की पूत भावना से पत्रकारिता को अपना क्षेत्र बनाया। अपने स्वनामधन्य इतिहास–मनीषी बड़े भाई डॉ. ज्योति प्रसाद की भांति जैन धर्म में दृढ़ आस्था उन्हें अपने पारिवारिक परिवेश से प्राप्त हुई। भगवान महावीर को वह आदर्श महापुरुष और अपना इष्टदेव मानते थे।

वह मानते थे — तीर्थंकर महावीर ने निर्भय होकर मरने की कला ही नहीं सुखपूर्वक जीने की कला भी सिखाई। जीने की कला अर्थात् किंचित् संयम का पालन करते हुए पूर्ण स्वस्थ रहकर मर्यादापूर्वक इन्द्रियों के भोगोपभोग का भरपूर आनन्द लेते हुए गृहस्थाश्रम में सुखपूर्वक जीवन यापन करना, इसी का नाम जैन श्रावकाचार है। श्रावकाचार जैन धर्म की सदाचार–संहिता है, आदर्श गृहस्थ एवं समाज के आदर्श सदस्य बनने की विधि है, आदर्श समाज संरचना का प्रयास है। वह जैन धर्म को आध्यात्मिक उत्कर्ष का धर्म मानते थे। उसमें कर्मकाण्ड का मेल बाद में हुआ।

उन्होंने अपने पत्रकार धर्म का निर्वाह यत्नपूर्वक किया। पत्रकारिता के आवश्यक गुण हैं — उत्तरदायित्व, सभी प्रकार के दबावों से परे रहकर अपनी लेखनी की स्वतंत्रता की रक्षा, जो बात हृदय में सच लगे उसे निर्भयता तथा निष्पक्षता से प्रकट करना, सबके प्रति न्याय की भावना। अपने सम्मान में आयोजित एक समारोह में उन्होंने कहा था — "हमारी दृष्टि में पत्रकार की भूमिका केवल एक समाचार वाहक तक सीमित नहीं है वरन् उसकी यह भी एक चुनौतीपूर्ण जिम्मेदारी है कि वह सामाजिक–

धार्मिक क्षेत्र को प्रभावित करने वाली घटनाओं का पूर्ण निष्पक्षता के साथ विश्लेषण कर समाज का मार्गदर्शन करे। पत्रकार को धर्म के क्षेत्र में नित नवीन उत्पन्न हो रही विसंगतियों के प्रति भी समाज के प्रबुद्ध वर्ग का ध्यान आकर्षित कर उन्हें सचेत करना चाहिए ताकि उन विसंगतियों की रोकथाम हो सके और इस प्रकार उसे धर्म–समाज के एक सजग प्रहरी की भूमिका भी अदा करनी चाहिए।" **शोधादर्श** के प्रधान सम्पादक का पद–भार ग्रहण करने के बाद उन्होंने अपनी इस भूमिका का निर्वाह अपनी पूरी योग्यता के साथ किया।

शोधादर्श के आद्य सम्पादक डॉ. ज्योति प्रसाद के समय से मैं उसके प्रथम अंक से उसका नियमित पाठक रहा। डॉ. ज्योति प्रसाद उपाधि से नहीं वास्तव में विद्यावारिधि थे। उन्होंने जैनविद्या के शोध, अन्वेषण तथा अनुसंधान में उल्लेखनीय योगदान किया। **शोधादर्श** को एक शोध पत्रिका का रूप दिया। उनके न रहने पर बंधुवर डॉ. शशि कान्त ने उनका पदभार संभाला। वह भी भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्व के मान्य विद्वान हैं। चिन्तक भी हैं। उन्होंने **शोधादर्श** को उसी पूर्व निर्धारित पथ पर चलाया। भाई अजित प्रसाद ने अपने सम्पादन काल में उसमें एक सामयिक पत्रिका का रस भी भर दिया। मैं उनके विचारपूर्ण लेख, सम्पादकीय तथा सामयिक टिप्पणियों को बड़े मनोयोग से पढ़ता था। वे विचारप्रेरक होते थे। वह अपने हृदय के सच्चे उद्‌गारों को बड़ी निर्भीकता तथा प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करते थे। उनमें गहरी आस्था के साथ बुद्धि–तत्व का भी मेल रहता था। क्या ही अच्छा हो, उनका जो श्रद्धांजलि अंक निकाला जाये उसमें उनके कुछ यादगार लेखों, सम्पादकीय तथा टिप्पणियों के मुख्य अंशों को भी संकलित कर दिया जाये।

भाई अजित प्रसाद किस धातु के बने थे, इसकी जानकारी उनके जीवन की कतिपय घटनाओं से मिलती है। जिस वर्ष परिवारजनों ने उनका अमृत महोत्सव मनाया, उसी वर्ष उनकी जीवन–संगिनी का वियोग हुआ। वह जीवन संग्राम में अकेले पड़ गये, फिर भी अपने कर्तव्य–पथ पर आरूढ़ रहे। बुढ़ापे में पुत्र ही पिता का सहारा बन जाते हैं। उनके दो पुत्र थे। कनिष्ठ पुत्र के वियोग का दुख अपनी आयु के 82वें वर्ष में उठाना पड़ा। उसके दो वर्ष बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र का भी देहांत हो गया। उनके बुढ़ापे की दोनों लाठियां आयु के 84वें वर्ष में उनके हाथ से छिन गई। एक पिता के जीवनकाल में ही उसके दो जवान पुत्रों का इस रीति से चला जाना

कितना बड़ा वज्रपात होता है, इसे भुक्तभोगी ही जान सकते हैं। फिर भी वे अपने कर्तव्य–पथ पर अविचलित भाव से चलते रहे।

उनको पहला हृदयाघात सत्तर की आयु पार करने के बाद 1989 में हुआ था। चार वर्ष बाद दूसरा गंभीर हृदयाघात हुआ। एक वीर योद्धा की भांति इन दोनों हृदयाघातों को झेल गये और निरंतर अध्ययन, मनन तथा लेखन–कर्म में लगे रहे। आंखों की रोशनी क्षीण हो जाने से चश्मा काम नहीं करता था। माइक्रोस्कोपिक लेन्स की सहायता से लिखने–पढ़ने का काम करते थे। दूसरे हृदयाघात के बाद तीन और आघात झेलने पड़े। शरीर एकदम जर्जर हो गया। बिस्तर से लग गये। गत वर्ष जुलाई के **शोधादर्श** में अपनी अन्तिम अभिलाषा अभिव्यक्त की। उसमें लिखा – "मैंने अपने धर्म और समाज से बहुत कुछ सीखा और पाया है। उनके उपकार से कभी उऋण नहीं हो सकता। मेरी एक यही अभिलाषा है कि जिनेन्द्रदेव की अनुकम्पा से मुझमें इतनी शक्ति बनी रहे कि मैं अन्तिम श्वांस तक धर्म व समाज की कुछ–न–कुछ सेवा करता रह सकूं।"

उन्होंने अपना यह संकल्प पूरा किया। आसन्न मृत्यु से तीन दिन पूर्व उन्होंने **शोधादर्श** के लिए अपना अन्तिम सम्पादकीय लिखवाया।

वह अन्तिम क्षण तक एक वीर योद्धा की भांति मृत्यु से संघर्ष करते रहे। **शोधादर्श** में जब उनका 'अंतिम अभिलाषा' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ तो अनेक स्नेही बंधुओं और शुभचिंतकों ने उन्हें समाधिमरण की सलाह दी। उन्होंने समाधिमरण पर स्वानुभव अपनी आसन्न मृत्यु से पांच महीना दस दिन पूर्व अंकित कराये। उनका यह एक पठनीय लेख है और उनके रूढ़ि–मुक्त स्वतंत्र चिंतन–मनन का परिचायक है। **शोधादर्श** (मार्च 2005) में प्रकाशित है।

उन्होंने **समाधिमरण पाठ, समाधि दीपक** आदि का अध्ययन–मनन किया। मृत्यु महोत्सव को समर्पित **'दिशा बोध'** का अंक भी पढ़ा। उन्हें लगा, यह सारा साहित्य उस समय रचा गया जब उनके रचयिताओं से आसन्न मृत्यु कोसों दूर थी। यदि उनकी मृत्यु आसन्न होती तो शायद उस साहित्य की रचना न कर पाते।

उन्हें लगा, समाधिमरण की जो प्रक्रिया (विधि–विधान) बताई जाती है वह तो आसन्न मृत्यु के समय स्वतः सम्पन्न होती जाती है। भूख–प्यास, तृष्णाएं शान्त हो जाती हैं। वस्त्राभूषण आदि का शौक भी छूटता चला जाता है। जहां तक परिग्रह–त्याग का सम्बन्ध है या आहार की मात्रा धीरे–धीरे घटाने की बात है, वह सामान्य आसन्न मृत्यु की स्थिति

में स्वतः कम होते चले जाते हैं। यद्यपि लोभ और मोह, राग और द्वेष पूर्णतः तो नहीं छूट पाते, किन्तु जीवन और दुनिया के अनुभवों से परिपक्व वृद्ध व्यक्ति जीवन के इस अन्तिम पड़ाव पर काफी—कुछ इनसे अपने को मुक्त कर लेता है। रही अन्त समय धर्म ध्यान में मन लगाने की बात, उन्होंने लिखा "स्वअनुभव के आधार पर आपसे पूछना चाहूंगा कि जब शारीरिक या मानसिक वेदना से ग्रसित हो आपके मुख से 'हाय, हाय' निकल रही हो, तब प्रभु नाम कैसे उच्चारित होगा, भले ही सारी जिन्दगी आप धर्मनिष्ठ रहे हों।"

जिस समाधिमरण, सल्लेखना आदि को धर्म—मरण, मृत्यु—महोत्सव आदि कहकर महिमा—मंडित किया जाता है वह उन्हें आत्महत्या अथवा इच्छा—मृत्यु का पर्यायवाची लगा।

उनका सुविचारित मत था — जब तक आत्मपखेरू स्वयं ही देहतत्व से मुक्त नहीं हो जाता मनुष्य को अपनी ओर से उसे विलग नहीं करना चाहिए और संतोषपूर्वक अपने यत्किंचित् कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए अपनी जीवन—डगर पर बढ़ते चला जाना चाहिए।

भाई अजित प्रसाद के बड़े भाई डॉ. ज्योति प्रसाद से मेरा घनिष्ठ सौहार्द भाव था। मुझे विद्वानों, गुणीजनों, इतिहासवेत्ताओं तथा साहित्यकारों का सत्संग प्रिय है। अतएव मैं उनके यहां अक्सर चला जाता था। उनके नाते उनके परिवार के सभी सदस्यों से मेरा सौहार्द भाव था। भाई अजित प्रसाद से मेरा परिचय कम से कम पांच दशक से था, किन्तु उनके व्यक्तित्व का अंतरंग परिचय उनके **शोधादर्श** के सम्पादकत्व काल में मिला। वह मेरे आयु—वर्ग के थे, मुझसे एक महीना और सात दिन बड़े थे। उनके चले जाने से मैंने भी अपना एक बंधु खो दिया है।

शिखर भवन, यहियागंज, लखनऊ

(18 जुलाई, 2006, को स्वयं भी स्मृति—शेष हो गये।)

आदर्श सम्पादक : श्री अजित प्रसाद

— श्री संजीव 'ललित'

पलकों से तूफान उठाया जा सकता है।
मौन रहके भी शोर मचाया जा सकता है।।

पत्रकारिता के माध्यम से समाज जागृति की मौन क्रांति का शंखनाद करने वाले **शोधादर्श** के सम्पादक श्री अजित प्रसाद जी अब हमारे बीच नहीं रहे यह विचार केवल उन लोगों का हो सकता है जो उन्हें औदारिक शरीर मात्र से जानते थे। मेरे अनुसार वे अब भी हैं और उनके द्वारा धर्म प्रभावना, समाज जागृति के लिए दिए गए विचारों से वह सदैव यशस्वी शरीर से जीवित रहेंगे।

1 जनवरी, 1918, को मेरठ में बाबू पारसदास जी के घर जन्मे श्री अजित प्रसाद जी ने हिन्दी साहित्य की अभूतपूर्व सेवा की है। आप 1939 में उ.प्र. की लोक सेवा आयोग द्वारा प्रथम बैच में सचिवालय सेवा परीक्षा में उत्तीर्ण हुए।

आपके अग्रज भ्राता मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जी की वात्सल्य पूर्ण शिक्षा ने आपके पत्रकारिता के गुणों को विकसित करने में उर्वरक का काम किया जिससे आप एक सुलझे हुए पत्रकार बन गये। डॉ. ज्योति प्रसाद जी के पश्चात् **शोधादर्श** पत्रिका को आपने अपनी लगन, कठिन परिश्रम एवं सेवाभाव से आज तक नामानुरूप शोध के लिए आदर्श बनाए रखा। सम्पूर्ण साहित्यिक क्षेत्र व जैन समाज आपकी इस सेवा से चिरकाल गौरवान्वित एवं लाभान्वित हुआ है। पत्रिका के सम्पादन दायित्व को बखूबी निभाते हुए अनुसंधान के नये—नये आयाम खोजना आपकी विशेषता रही।

अपने विचारों की तर्क पूर्ण एवं आगम के परिप्रेक्ष्य में विवेचना आप जिस निर्भयता से करते रहे वैसे निर्भीक, सजग सम्पादक अब समाज में उंगलियों पर गिनने लायक बचे हैं। आपने मान—अपमान आदि की परवाह न करते हुए समाज मार्ग—च्युत न हो जाए इसके लिए अन्तिम श्वास तक प्रयत्न किया।

मैंने अजित प्रसाद जी को साक्षात् देखा तो नहीं पर पं. पद्मचन्द्र जी शास्त्री एवं श्री महावीर प्रसाद जी सर्राफ 'शाकाहार प्रचारक' को लिखे गए उनके पत्र पढ़ने का सौभाग्य मुझे गत वर्षों से मिलता रहा है। वीर सेवा

मंदिर में कार्यरत होने से श्री अजित प्रसाद जी के पत्र पंडित पद्मचन्द्र जी को पढ़कर सुनाता रहा हूं तथा श्री महावीर प्रसाद जी भी आपका पत्र आने पर दूरभाष या पत्र के माध्यम से सूचित कर देते थे। आपने पंडित पद्मचन्द जी के **अनेकान्त** 55/3 में छपे 'भरतक्षेत्र के सीमन्धर आचार्य कुन्दकुन्द' लेख की समीक्षा करते हुए पत्र में लिखा था कि – "आपने सीमन्धर शब्द की व्याख्या एवं श्री कुन्दकुन्द की विदेह गमन की अनुश्रुति का खंडन बड़े सुन्दर ढंग से किया है। पर मेरी मान्यता है कि कुन्दकुन्द पद्मनन्दि से भिन्न आचार्य थे।" आपके पत्रों में विशेषता यह रहती थी कि आप अपने एवं जिसको पत्र लिखा है उसके बारे में बहुत कम लिखकर दिगम्बर आगम के साथ हो रही अवमानना एवं समाज के जैनत्व से गिरते स्तर पर चिंता एवं उसके समाधान को विस्तार से लिखते थे। इन सब अनुभवों एवं **शोधादर्श** में छपी उनकी टिप्पणियों के पढ़ने पर मैं दृढ़ता से लिख सकता हूं कि वे तर्क पूर्ण मनीषा के स्वामी थे, वे उच्चारण से उच्च आचरण को अधिक महत्व देते थे, धर्म के नाम पर कोरी आडम्बरता उन्हें पसन्द नहीं थी, सत्य के उद्भावन से उन्होंने कभी समझौता नहीं किया।

श्री अजित प्रसाद जी के लेखों के कुछ अंशों का उद्धरण मैं यहां **अनेकान्त** के पाठकों को इस आशा से दे रहा हूं कि जिन पाठकों ने श्री अजित प्रसाद जी को देखा, सुना, पढ़ा नहीं है वे भी उनके बहुआयामी व्यक्तित्व से परिचित होकर उनके विचारों का लाभ अवश्य उठाऐंगे।

आप एक सफल पत्रकार रहे हैं – 20 अप्रैल, 2003, को नई दिल्ली में अहिंसा इंटरनेशनल द्वारा 'प्रेमचन्द जैन पत्रकारिता पुरस्कार' प्राप्त करते हुए उन्होंने अपने हृदय की वेदना व्यक्त करते हुए पत्रकार एवं पत्रिका के विषय में भाषण दिया था। आपने खेद के साथ कहा कि "इस समय सम्पूर्ण जैन समाज में लगभग 200 पत्रिकायें छपती हैं, अकेले दिगम्बर जैन समाज में छपने वाली पत्रिकाओं की संख्या लगभग 100 है। पर विचारिये पत्रिका की परिभाषा – उत्तरदायित्व, अपनी स्वतंत्रता, सभी दबावों से परे रहना, सत्यता प्रकट करना, निष्पक्षता, समान व्यवहार एवं समाज आचरण की कसौटी पर आज की कितनी पत्रिकायें खरी उतर सकती हैं। हमारे कितने पत्रकार, लेखक भाई पत्रकारिता के इन कर्तव्यों का निर्वाह कर पा रहे हैं। अधिकांश पत्रिकाये तो व्यक्ति या पक्ष विशेष की प्रशंसाओं से ही भरी रहती हैं।"

श्री अजित प्रसाद जी जैन दर्शन, जैन सिद्धान्त के अच्छे जानकार थे। जैन दर्शन के जानकार होने से ही आपकी लेखनी केवल सामाजिक

विषयों तक सीमित न होकर दर्शन क्षेत्र के गूढ़ रहस्योद्घाटन में भी सफल रही। **शोधादर्श** के नवम्बर 2001 के अंक में आपने पार्श्वगिरि पर आचार्य प्रतिमाओं की स्थापना के समाचार मिलने पर लिखा था कि – "आचार्यो/मुनियों की तदाकार प्रतिमाओं की विधिवत् प्राण–प्रतिष्ठा कर जिन मंदिर में विराजमान करना बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध की ही देन है। इन साधु प्रतिमाओं की प्राण–प्रतिष्ठा के क्या अर्थ हैं, हम जैसे अल्पज्ञों की सामान्य बुद्धि के लिए अगम्य है।"

शोधादर्श नवम्बर 2002 के सम्पादकीय – 'मंगलम् पुष्पदंताद्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम्' में आपके व्यंग्यात्मक शैली में लिखे गए सजग दूरदर्शी विचार सभ्य समाज की रक्षा के लिए सजग प्रहरी के समान हैं। मार्च 2002 के अंक में आपने विद्वत् परिषद के बिखराव की व्यथा भी लिखी थी। आप धर्म परायण थे अतः आप आगम के मूल रूप में छद्म परिवर्तन करने वालों से समाज को सजग करने का अपना कर्तव्य आखिर तक निर्वहन करते रहे।

श्री अजित प्रसाद जी सच्चे मुनि भक्त थे। आप केवल आगमानुकूल चर्यारत गुरुओं के प्रति अनन्य श्रद्धा रखते थे। आपकी स्पष्ट मान्यता थी कि समाज सुधार धर्मगुरुओं के माध्यम से ही हो सकता है। 'समाज सुधार में धर्मगुरुओं की महत्वपूर्ण भूमिका हो' लेख में आपने लिखा है कि– "आज अकेले दिगम्बर जैन आम्नाय में पिच्छीधारी धर्मगुरुओं/गुरुणियों की संख्या 500 के लगभग होगी तथा उनके अकेले चातुर्मास काल पर ही समाज का अरबों व्यय हो जाता है। हमें धर्म प्रभावना के नाम से किए गये किसी भी आयोजन पर कोई आपत्ति नहीं है, यद्यपि वैभवपूर्ण प्रदर्शनों से समाज का कोई भला नहीं होता। वृहद् क्रिया काण्ड भी जैन धर्म की मूल भावना से मेल नहीं खाते।

हमारे धर्मगुरु/गुरुणियां जिनके प्रति समाज में अत्यंत श्रद्धा व सम्मान है कुछ समाज सुधार की ओर भी ध्यान दें तो उनका समाज पर स्थायी उपकार रहेगा। जैसा कुछ मुनि श्रावकों को दिन में विवाह करवाने, विवाह में अपव्यय न करने, दहेज कुप्रथा का विरोध करने आदि का उपदेश अपने प्रवचनों में देकर कर रहे हैं।"

प्रकाण्ड तर्कणा शक्ति के धनी श्री अजित प्रसाद जी का जीवन सादा एवं सरल था। वे दिखावे में विश्वास नहीं रखते थे। आपने देश, समाज से अल्प लेकर बहुत अधिक दिया है। आप उत्तम कोटि के पुरुष थे। कविवर बुधजन की ये पंक्तियां आप पर बिल्कुल सटीक बैठती हैं –

अलप थकी फल दे घना, उत्तम पुरुष सुभाय।
दूध झरै तृण को चरै, ज्यों गोकुल की गाय।।

आपने **शोधादर्श** जुलाई 2004 के अंक में "मेरी अन्तिम अभिलाषा' शीर्षक से लिखा है – "मेरी एक ही अन्तिम अभिलाषा है। मैंने अपने धर्म और समाज से बहुत कुछ सीखा और पाया है। उनके उपकार से मैं कभी उऋण नहीं हो सकता। मेरी यही एक अभिलाषा है कि जिनेन्द्र देव की अनुकम्पा से मुझमें इतनी शक्ति बनी रहे कि मैं अन्तिम श्वास तक धर्म व समाज की कुछ–न–कुछ सेवा कर सकूं तथा यदि मेरे किसी सुकृत्य के फलस्वरूप मुझे पुनः नरभव प्राप्त हो तो मेरा जन्म जैन धर्म व जैन समाज में ही हो।"

श्री अजित प्रसाद जी जैसे व्यक्ति को खोना जैन समाज से अमूल्य रत्न छिन जाना है। आपने जीवनकाल में साहित्य एवं समाज की जो अनवरत सेवा की है उससे साहित्य वर्ग एवं समाज वर्ग कभी उऋण नहीं हो सकता। समाज पत्रिकाओं में उनके स्वर्गवास पर खेद प्रकट करने तक अपनी श्रद्धांजलि सीमित न रखे वरन् उनके द्वारा साहित्य के क्षेत्र में दिए गये योगदान को प्रकाशित करवाकर ही इतने बड़े व्यक्तित्व को एक छोटी सी श्रद्धांजलि दे सकता है। समाज की ओर से यही एक सच्ची श्रद्धांजलि होगी जिससे आने वाली पीढ़ी उनके व्यक्तित्व एवं वृहद् कृतित्व से प्रेरणा ले सकेंगी।

वीर सेवा मंदिर से प्रकाशित **अनेकान्त** पत्रिका में भी आपके तथ्यपरक आगम सम्मत दार्शनिक एवं पुरातात्त्विक लेख छपते रहे हैं। आपके कठिन परिश्रम एवं निर्भीकता से लिखे गये ये लेख शोध विद्यार्थियों एवं दर्शन, पुरातत्व के जिज्ञासुओं को दिशाबोध प्रदान करने वाले हैं।

वीर सेवा मंदिर परिवार इस महान व्यक्तित्व के दिवंगत होने पर स्तब्ध है। श्री अजित प्रसाद जी द्वारा जैन धर्म, जैन समाज को दिए गए योगदान को नमन करता है। आशा है कि श्री रमा कान्त जी, डॉ. शशि कान्त जी आपके द्वारा किए गए कार्यो को गति प्रदान करेंगे।

वीर सेवा मंदिर, नई दिल्ली

अपराजेय व्यक्तित्व : श्री अजित प्रसाद जी जैन

– डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल

पत्रकारिता असिधार पर चलने जैसा है। एक व्यक्तित्व ऐसा होता है जो अपने अस्थिर, अनिश्चित, अनैतिक एवं पक्षपातपूर्ण सोच के कारण अपने जीवन काल में ही मृत्यु–समान निस्तेज स्वयं तक से उपेक्षित हो जाता है; दूसरा व्यक्तित्व ऐसा होता है जो अपने स्थिर, निश्चित, नैतिक एवं निष्पक्ष–निर्भीक सोच के कारण मृत्यु उपरांत भी प्रकाश स्तंभ जैसा समाज को मार्गदर्शक–प्रेरक बना रहता है। उनके नाम की कीर्ति के लिए जीवन और मृत्यु दोनों समान होते हैं। ऐसा ही पत्रकारिता जगत का एक विराट व्यक्तित्व था – श्री अजित प्रसाद जैन, लखनऊ, जो 25 जून, 2005, को अनन्त में विलीन होकर भी अन्तहीन सिद्ध हुआ। श्री अजित प्रसाद जैन **शोधादर्श**, चातुर्मासिक एवं **समन्वय वाणी** पाक्षिक के प्रधान सम्पादक थे। वे कुशल प्रशासक, समर्पित समाजसेवी एवं निस्पृही, पक्षपात–रहित कुशल पत्रकार–सम्पादक थे। वे किसी संस्था, व्यक्ति या मत विशेष को समर्पित नहीं थे और न वे किसी के पैरोकार थे। उनका व्यक्तित्व विराट था। आगम उनकी दृष्टि थी। विवेक उनका सहचर था। आगम और विवेक की कसौटी पर वे प्रत्येक घटना को कसते थे और सारभूत रहस्य निकालकर प्रस्तुत कर देते थे। तटस्थता उनकी विशिष्ट पूंजी थी। शिथिलाचार, व्यभिचार, आगम के प्रतिकूल कुटकाचार, समाज विग्रह आदि कोई भी कटु विषय क्यों न हो वे कटु आलोचक/समीक्षक के रूप में प्रकट होकर भी विनम्रता, विनय में कभी संकोच नहीं करते थे। पद की मर्यादा के अनुसार सम्मानित शब्दों के सम्बोधन की सहृदयता–विनम्रता उनका वह निजी गुण था जो विषय के ऊपर उठकर प्रवाह में सहज तैरने की शक्ति देता था। बौद्धिक पैनापन और हृदय की निर्मलता का सुयोग किसी भी पत्रकार को शारीरिक व्याधियों से निरपेक्ष, महान बना देता है। यह सुयोग श्री अजित प्रसाद जी जैन को सहज ही प्राप्त हुआ था। वे हृदयरोग, मधुमेह, दृष्टिमंदता एवं श्रवण–मंदता के रोगों से पीड़ित होते हुए भी जीवन के अंतिम क्षणों तक स्वाध्याय, समीक्षा एवं सम्पादन के कार्य से जुड़े रहे। ऐसी जीवन्तता आत्म–शक्ति के वैभव के अनुभव के साथ ही मिलती है।

व्यक्ति की कार्यकुशलता, विश्वसनीयता, प्रामाणिकता और ईमानदारी आदि ऐसे तत्व हैं जो उसे जहां भी प्रतिष्ठित कर दो वह उस पद को गरिमा–मंडित बना देता है। संस्था का पद नहीं, उस पर प्रतिष्ठित व्यक्ति

का व्यक्तित्व ही उसे गरिमामय/गरिमाहीन बना देता है। यही चरितार्थ हुआ श्री अजित प्रसाद जी जैन के साथ। महासभा का प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र **जैन गज़ट**, जो अब विवादित है, पहले अजमेर से प्रकाशित होता था, जिसका प्रकाशन परिस्थितियों के संदर्भ में बंद हो गया था। उसे पुनर्जीवन देने का श्रेय आपको है। सन् 1981 में आप **जैन गज़ट** को अजमेर से लखनऊ लाये और उसका प्रकाशन प्रारम्भ किया। सन् 1988 तक आप उसके प्रकाशक व समाचार–सम्पादक रहे। इनकी प्रतिभा का प्रकाश हटते ही कालान्तर में **जैन गज़ट** समाज–विग्रह, शिथिलाचार–पोषण आदि विकृतियों का प्रतीक बनकर उभरा। प्रकाशक एवं सम्पादक महोदय अपने–अपने हितों का राग अपने ढंग से अलापते रहे और अंत में एक क्षण ऐसा आया जब दोहरे–व्यक्तित्व के धनी सम्पादक महोदय को उपेक्षित–जैसा पद त्याग कर समाज को अपना स्पष्टीकरण देना पड़ा। यह है दो व्यक्तित्वों का अंतर जो उनकी अंतरंग निर्मल परिणति के स्तर को अभिव्यक्त करता है।

कुशल प्रशासक के अलावा प्रारम्भ से ही आपकी अभिरुचि समाज एवं धर्म के क्षेत्र में रही। इस कारण आप विविध पत्र–पत्रिकाओं में समर्थ–निर्भीक–सम्पादक, उन्मुक्त विचारक एवं मार्गदर्शक के रूप में प्रसिद्ध हुए। आप स्वयं शोधपरक चिंतक एवं लेखक, समीक्षक तो थे ही अपनी पत्रिका के लेखकों के साथ भी उनका सीधा संवाद था। लेँख की समीक्षा करना और विषय सामग्री विषयक सुझाव देना उनकी विशिष्ट विशेषता थी। पत्रिका में प्रकाशित लेख की विषय सामग्री से उनका भावात्मक सम्बन्ध हो जाता था। प्रत्येक पत्र का उत्तर देना उनकी आदत में था। रूग्ण शैया पर उन्होंने 2–3 पेज तक के पत्रोत्तर 2–3 किश्तों में लिखकर अपना कर्तव्य निर्वाह किया। ऐसे जीवट के व्यक्तित्व विरल ही होते हैं। प्रकरण भ. महावीर की जन्मभूमि वासोकुण्ड–वैशाली के अनुचित रूप से अपहरण का था। आपने नालन्दा–कुण्डलपुर समर्थकों के आलेखों का साधार, सतर्क प्रतिकार किया, साथ ही वासोकुण्ड की आगम आधारित सिद्धि भी की। अपने द्वारा सम्पादित **शोधादर्श** के अंतिम 55वें अंक में आपने डॉ. सागरमल जैन द्वारा लिखित आलेख 'भ. महावीर का जन्म स्थलः एक पुनर्विचार' प्रकाशित कर वासोकुण्ड–वैशाली के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की।

व्यक्ति निजी पत्राचार में मुखर हो जाता है। इससे उसके अंतरतम के बेदाग विचारों/अनुभूतियों का पता चलता है। आइये देखिये कुछ नमूने–

1 पत्र दि. 11–8–02 – आपने भ. महावीर जन्म स्थली संबन्धी हमारे लेखों की प्रशंसा की। धन्यवाद। हमें तो प्राचार्य जी जैसे समझदार विद्वानों की मानसिकता पर दुख होता है जो कुतर्कों के सहारे नालन्दा जिले के कुण्डलपुर को सही जन्म स्थल प्रमाणित करने में अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन कर रहे हैं – केवल इसलिए कि कोई आर्यिकाजी की अनुकम्पा उन पर बनी रहे।

2 पत्र दि. 20–11–02 – गणिनी आ. ज्ञानमती, प्रज्ञाश्रमणी चन्दनाजी या प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी के कुण्डलपुर (नालन्दा) के पक्ष में दिए गए तर्क, तर्क कम कुतर्क अधिक हैं जिनकी किसी भी तटस्थ विद्वान से अपेक्षा नहीं की जाती। आपने अपने आलेख में उनका सुन्दर विश्लेषण किया है।

मेरे जीवन में प्रेरणास्पद होने जैसी कोई बात नहीं है। यह अनेक असफलताओं से भरा है। समता भाव की प्राप्ति तो परमसिद्ध है फिर सुख–दुख की कोई अनुभूति ही नहीं हो। हां प्रयास तो कर ही सकते हैं। स्नेह बनाए रखें। दृष्टि मंदता के कारण इस जीवन का अब पूरा उपयोग नहीं कर पाता।

3 पत्र दि. 22–2–03 – आपका पत्र दि. 21–2 प्राप्त हुआ। स्वास्थ्य धीरे–धीरे ठीक हो रहा है – दृष्टिमंदता बहुत बढ़ गई है। आपके पूज्य पिताजी के स्वर्गवास का समाचार अखिल बंसल ने टेलीफोन पर बताया था। श्री जिनेन्द्र भगवान से प्रार्थना है कि ऐसे पुण्यशाली धर्मनिष्ठ जीव का निकट भविष्य में ही भवसागर पार हो।

कुण्डलपुर के विषय में आपका अद्यतन लेख वीर (11 फरवरी) में पढ़ा। इसके पूर्व भी इस विषय पर प्रकाशित आपके लेख पढ़े हैं। उत्तम हैं। खोजपूर्ण हैं। आर्यिका ज्ञानमती जी निहित स्वार्थवश ही दुराग्रह से तथ्यों को तोड़–मरोड़ कर नालन्दा के कुण्डलपुर का प्रचार कर रही हैं/करवा रही हैं।

4 पत्र दि. 3–12–02 – आपका पत्र दिनांक 28–11–02 आज ही प्राप्त हुआ। कुण्डलपुर पर आपका लेख सचमुच ही श्रेष्ठ प्रस्तुति है पर हमारे साधु सन्तों ने तो सारे ज्ञान का ठेका स्वयं ही ले रखा है तथा अपनी धारणा के विरुद्ध कोई तर्क उन्हें प्रभावित नहीं करता। सबसे बड़ी विडम्बना तो यह है कि हमारे अनेक विद्वान उनसे उपकृत होकर या उपकृत होने

की प्रत्याशा में तर्क–कुतर्क के द्वारा उन्हीं के पक्ष का जोर शोर से पिष्ट–पेषण करते हैं।

5 पत्र दि. 28–1–04 – आपका कृपा पत्र दि. 13–1 प्राप्त हुआ। आपने गणिनी आ. ज्ञानमती के विषय में लिखा है वह तथ्यों पर आधारित है, सही है। वे धर्म को व्यापार का अर्थार्जन का साधन बनाने में निपुण हैं। सत्य की परिभाषा भी कदाचित् उन्होंने अपनी सुविधानुसार परिवर्तित कर ली है तथा गौबिल्स (हिटलर के सहायक) के इस वाक्य को कि "अपनी मिथ्या बात को इस तरह प्रस्तुत करो, उसका इतना प्रचार करो कि उसके आगे सत्य ही मिथ्या लगने लगे" चरितार्थ कर दिया है। कुछ तो उनका तथा प्रज्ञाश्रमणी चन्दना जी (गणिनी जी की गणधरा) का अध्ययन कदाचित् दिगम्बर जैन शास्त्रों तक ही सीमित रहने के कारण सामान्य ज्ञान के प्रति उनकी अनभिज्ञता है।

उदाहरण के लिये चन्दना जी इसी बात पर बिदक गई कि भगवान महावीर की जन्म नगरी कुण्डलपुर तो एक अति ऐश्वर्यशाली महानगरी थी, उसे किसी ने गांव (कुण्डग्राम) क्यों कहा।

माता जी दिगम्बर जैन आगमों की गहन अध्येता हैं। अतः ये तो वह जानती ही होंगी कि मायाचार से साधु को कौन गति का बन्ध होता है, फिर भी यदि वे वैसी ही प्रवृत्ति करती हैं तो उसके तो यही अर्थ होते हैं कि उन्हें शास्त्र कथन पर अंतरंग में विश्वास नहीं है।

3–12–03 को पड़े हार्ट अटेक (एक ही वर्ष में दूसरी बार) के बाद अभी तक स्वास्थ नॉरमल नहीं हो पाया। दृष्टिमंदता तो बहुत बढ़ गयी है। यह पत्र बेड पर लेटे–लेटे तीन चार किस्तों में लिख पाया हूं। नववर्ष आपको व आपके परिवार को सर्व मंगलमय सिद्ध हो। स्नेह बनाये रखें।

6 पत्र दि. 10–3–04 – आपका 27/2 का पत्र प्राप्त हुआ तथा आपकी वैशाली–वासोकुण्ड की यात्रा का सविस्तार वर्णन पढ़ा। हम तो प्रारंभ से ही कुंडग्रामपुर कुंडगाम–कुंडलपुर को वैशाली का ही कोई सबर्बन टाउन–बस्ती मानते आ रहे हैं। पर यह समझ में नहीं आता कि कुंडग्राम या क्षत्रियकुंड से वासोकुण्ड नाम कैसे पड़ा? क्या वासोकुण्ड में आज भी कोई ताल–पोखर–पुष्करणी है?

7 पत्र दि. 18–7–04 – प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश ने आपके **समन्वय वाणी** में प्रकाशित लेख 'वैशाली के लोकजीवन में महावीर का प्रभाव एक सर्वेक्षण" की प्रतिक्रिया स्वरूप 'अनर्गल प्रलाप क्यों?' शीर्षक से अपने लेख में बड़ी व्यंगात्मक तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की है तथा उसे अनेक पत्र–पत्रिकाओं

में प्रकाशित कराया है। आशा है आप उसका उपयुक्त उत्तर **समन्वय वाणी** में प्रकाशित कराएंगे। हमारी धारणा है कि प्राचार्य जी को माताजी की स्वयं की संस्था या उनकी जेबी संस्थाओं – भ. ऋषभदेव विद्वत महासंघ या डॉ. अनुपम जी की कुंदकुंद ज्ञानपीठ द्वारा पुरस्कृत किया जा चुका है।

8 पत्र दि. 1–9–04 – मैंने **समन्वय वाणी**, अगस्त (द्वितीय), में आपका तथा शशि कान्त का लेख दोनों पढ़े। नरेन्द्र प्रकाश जी को सटीक उत्तर दिया गया है। बधाई! हमें नहीं लगता कि आगे वे इस विषय पर कोई प्रति उत्तर देंगे।

धर्म, संस्कृति एवं समाज के जागरूक प्रहरी के रूप में श्री अजित प्रसाद जी सदैव "यदि तोर डांक सुने केऊ न आसे तवे एकला चलो" के अनुगामी रहे। प्रकरण चाहे गणिनी जी द्वारा अयोध्या के रायगंज के 13 पंथी–शुद्धाम्नायी मंदिर के 20 पंथी में बदलने का हो या 'कुन्दकुन्दाद्यो' के स्थान पर 'पुष्पदंताद्यो' का हो, या शिथिलाचार का हो, आपने अपनी सशक्त लेखनी से आगम–सम्मत बात कही। यह बात पृथक है कि अपरपक्ष ने उस पर गौर नहीं किया जिसकी परिणति इतर–समाज द्वारा हमारी विधिसंगत बातों की अवहेलना करना है। आखिर बीज की प्रकृति के अनुसार ही तो फल प्राप्त होते हैं। जिन दीक्षाधारियों एवं समाज में सत्य और तथ्य को स्वीकार कर सद्प्रवृत्ति करने की भावना का अभाव हो गया/हो रहा है जिससे धर्म के नाम पर वह सब हो रहा है जो कदाचित् गृहस्थ अवस्था में भी उपयुक्त नहीं माना जाता। सत्याग्रह तभी सफल होता है जब अपर पक्ष नैतिक और सहिष्णु हो, रिस्पेंसिव हो, सम्वेदनशील हो। स्वतंत्रता संग्राम की सफलता का रहस्य अंग्रेजों के इन गुणों में निहित है। सत्य की स्वीकृति का साहस और सत्य स्वीकार करवाने की शक्ति, सामर्थ्य इन दोनों के अभाव के कारण ही संस्कृति/समाज पतनोन्मुखी है। सत्य के उद्घाटन के बाद भी असत्य का सिक्का चल रहा है। सत्य के उद्घाटकों एवं श्री अजित प्रसाद जी को सत्य–उद्घाटक एक अपराजेय व्यक्तित्व के रूप में सदैव स्मृत किया जाता रहेगा। विषम परिस्थितियों में सत्य का उद्घाटन भी अनेक आपत्ति–विपत्तियों का कारण होने से सामान्य जन अब परिस्थितियों की उपेक्षा करने लगे हैं, टालने लगे हैं! विकास की दृष्टि से यह अशुभ चिह्न है।

श्री अजित प्रसाद जी ने सेवा–निवृत्त होते ही शोध, सहायता एवं पत्र प्रकाशन हेतु सन् 1976 में तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति की

स्थापना की। वे उसके संस्थापक महामंत्री बने। इस समिति द्वारा शोध पुस्तकालय, तीर्थंकर छात्र सहायता कोष, महावीर जन कल्याण निधि एवं **शोधादर्श** का प्रकाशन किया जाता है। इसका हिसाब भी **शोधादर्श** में प्रकाशित होता है। **शोधादर्श** नाम के अनुसार समाज की समग्र गतिविधियों का एन्साइक्लोपीडिया होता है। पत्रकारिता के क्षेत्र में **शोधादर्श** आदर्श रूप ही है, बेजोड़ है। इसके अलावा आप स्थानीय जैन मिलन, दि. जैन महासमिति, दि. जैन परिषद, जैन शिक्षा संस्थान, अग्रवाल शिक्षा संस्था तथा अग्रवाल समाज से जुड़े रहे और विभिन्न पदों पर रहकर शिक्षा और समाज के विकास में अपनी सेवाएं समर्पित करते रहे।

जैन पत्रकारिता के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान की स्मृति स्वरूप श्रुत संवर्धन संस्थान मेरठ ने आपका नाम 'आचार्य विमलसागर (भिण्ड) श्रुत संवर्धन पुरस्कार' (सन् 1999) एवं अहिंसा इण्टरनेशनल ने 'श्री प्रेमचंद जैन पत्रकारिता पुरस्कार' (2003) की गौरवमयी सूची में सम्मिलित कर अपने को उपकृत हुआ समझा। यह कार्य बहुत पहले हो जाना था, किन्तु समाज/संस्थाओं की गुणग्रहण करने की पद्धति एवं प्रक्रिया ऐसी है जिसमें स्वाभिमानी व्यक्तित्व उपेक्षित हो जाता है।

उन्होंने जो आदर्श स्थापित किये उनकी ज्योति के प्रकाश में मिथ्या लेखन, अनैतिकता, कूट–संदर्भ, अवसरवादिता की प्रवृत्ति का अंधकार तिरोहित होगा और वे सदैव प्रकाशवान रहेंगे। भाई रमा कान्त जी एवं डॉ. शशि कान्त जी पूज्य पिताश्री एवं काकाश्री के मिशन को वृद्धिंगत करेंगे, ऐसी आशा है।

ओ.पी.मिल्स कालोनी, अमलाई

सेतु : स्व. श्री अजित प्रसाद जैन

— श्री अंशु जैन 'अमर'

दिनांक 25 जून, दिन शनिवार, समय प्रातः के लगभग साढ़े 6 बजे दूरभाष पर सूचना मिली कि बाबा जी (स्व. श्री अजित प्रसाद जैन, जिन्हें हम लोग प्यार से 'छोटे बाबा जी' कहते थे) की तबियत अचानक बहुत खराब हो गयी है। जब तक हम लोग चारबाग स्थित ज्योति–निकुंज मकान से निकल पाते सुदूरस्थ अमेरिका प्रवासी छोटी बुआ जी (बाबा जी की कनिष्ठ पुत्री) का पापा के पास फोन आ गया कि "भैया, बाबू जी नहीं रहे।" यह सुन हम सभी परिजन एकदम स्तब्ध रहे गये क्योंकि कल रात ही ताऊ जी एवं पापा जी दोनों बाबा जी से मिलकर आए थे और उनके स्वास्थ्य में संतोषजनक सुधार हो चुका था। खबर निःसन्देह हम सभी पर वज्रपात थी। यह बाबा जी ही थे जो उस पीढ़ी की एकमात्र शेष कड़ी थे, जिन्होंने कभी–भी पारस–सदन से ज्योति–निकुंज की दूरी का एहसास नहीं होने दिया। एक मजबूत सेतु टूट चुका था।

आ. बाबा जी का जन्म 1 जनवरी, 1918, को श्री पारसदास जैन की तीसरी सन्तान के रूप में उस समय हुआ जब परिवार अत्यंत विषम स्थितियों से जूझ रहा था। उनके जन्म के साथ परिवार का श्री भाग्योदय हुआ। ये अपने माता–पिता के द्वितीय पुत्र थे, कदाचित् इसीलिए संघर्षरत दिगम्बर जैन तेरापंथ आम्नाय के धर्मनिष्ठ माता–पिता ने उनका नाम द्वितीय जैन तीर्थंकर अजितनाथ के नाम पर 'अजित प्रसाद' (अर्थात् द्वितीय तीर्थंकर के भेजे हुए) रख दिया।

आ. बाबा जी की अधिकांश शिक्षा मेरठ और आगरा में सम्पन्न हुयी। आगरा निवास के दौरान उन्हें ज्ञात हुआ कि वहां जैनेतर हिन्दू समाज के विरोध–भय के कारण महावीर–जयन्ती तक पर रथयात्रा नहीं निकलती है। उनके अग्रज श्री ज्योति प्रसाद जैन जी तथा उनकी सत्प्रेरणा एवं सहयोग से वर्ष 1933 में आगरा में पहली बार रथयात्रा निकाली गई।

वे जैन कुमार सभा, मेरठ, के संस्थापक सदस्यों में से एक थे। सभा की नियमित बैठकों में धार्मिक–दार्शनिक–सामाजिक–समसामयिक विषयों पर चिन्तन, व्याख्यान एवं परिचर्चाओं में वे सक्रिय रूप से भाग लेते थे। उनके विभिन्न विषयों पर प्रभावी अधिकार को देखते हुए ही मात्र 17 वर्ष की अल्पायु में **जैन कुमार पत्र**, मेरठ, का सम्पादन उन्हें सौंप दिया गया। अपनी प्रखर लेखनी से उन्होंने पत्र को नई ऊंचाईयों तक पहुंचा

दिया। मई 1938 के अंक में अल्पवय में जैन दर्शन में उनकी गहरी आस्था और ज्ञान को उनका लेख 'ईश्वर का अस्तित्व' प्रदर्शित करता है –

"इस अनन्त गुणों के समुद्र, निराकुल, अक्षयसुख की निधि तथा सच्चिदानंद स्वरूप आत्मा का ही दूसरा नाम ईश्वर है। यही जैन–धर्म का मर्म है, यही उसका ईश्वरवाद है।"

(**जैन कुमार पत्र**, मेरठ, मई 1938, पृ.–367)

वर्ष 1936 में आर्मी हेडक्वार्टर्स शिमला में लिपिक पद पर नियुक्ति होने के कारण उन्हें मेरठ छोड़ना पड़ा। लेकिन शीघ्र ही जनवरी 1937 में दाम्पत्य–सूत्र में बंधने के कारण मातृभूमि के विछोह से उत्पन्न एकाकीपन काफी हद तक दूर हो गया। शीघ्र ही अपनी कुशाग्र बुद्धि के कारण वर्ष 1939 में आप उ.प्र. सचिवालय सेवा में शामिल हो गये। और प्रगति करते हुए तत्समय संवर्ग को उपलब्ध उप सचिव के सर्वोच्च पद से वर्ष 1976 में ससम्मान सेवा–निवृत्त हुए।

जैन कुमार पत्र के युवा मस्तिष्क एवं लेखनी को 40 वर्षो की वैविध्यपूर्ण शासकीय सेवा एवं मिश्रित अनुभवों ने तराशकर और अधिक पैनापन प्रदान कर दिया था, जो तर्क और ज्ञान की कसौटी पर कहीं अधिक टिकाऊ और चमकदार थी। शीघ्र ही आपने **जैन गज़ट, समन्वय वाणी** एवं **शोधादर्श** जैसी स्तरीय पत्र–पत्रिकाओं को अपनी स्याही से अभिसिंचित कर पवित्र करना शुरू कर दिया। उनके लेख कितने विद्वत्तापूर्ण एवं मर्मस्पर्शी होते थे यह पत्र–पत्रिकाओं में प्रबुद्ध पाठकों की प्रकाशित संवेदनशील सकारात्मक प्रतिक्रियाओं से ही ज्ञात हो जाता है। निःसन्देह उनका लेखन 'बेबाक शैली' का उत्कृष्ट उदाहरण है। उनके आलेख अहर्निश अध्ययन–अनुशीलन एवं अनुभवों का सुपरिणाम हैं। उनके सम्पादकीय, चिन्तनकण, समाचार–विमर्श एवं साहित्य–सत्कार न केवल पाठकों को 'आंतरिक संतोष' प्रदान करते थे वरन् 'मस्तिष्क–पटल को झकझोरते' भी रहे। इसीलिए अनेक पाठक उन्हें 'विचारोत्तेजक लेखक' मानते हैं।

पत्रकारिता मात्र ज्ञान अथवा शब्दों का खिलवाड़ नहीं है। पत्रकारिता के लिए शालीनता, स्पष्टवादिता, तथ्यात्मकता, निर्भीकता, निष्पक्षता एवं अनेकान्तवादिता जैसे गुण अपरिहार्य हैं। इन गुणों से न्यूनाधिक सम्पन्न अपने इतिहास, संस्कृति, धर्म व दर्शन का ज्ञान रखने वाला, तथा समाज और देश पर निष्ठा रखने वाला समाज का सजग प्रहरी ही सच्चा प्रत्रकार है। आ. बाबा जी इन सभी मानकों पर खरे उतरे दिखायी पड़े। वे अपने धर्म–दर्शन–शास्त्र–संस्कृति के संरक्षण के लिये जैन समाज को अल्पसंख्यक

मान्यता प्रदान किए जाने के प्रबल समर्थक थे और जिनालयों में नित हो रही अमूल्य धरोहरों की चोरियों को रोकने के लिए एक राष्ट्रीय जैन संग्रहालय के निर्माण की आवश्यकता बताते थे। आ. बाबा जी सल्लेखना, केशलोंच, पिच्छि–परिवर्तन, सिंहरथ प्रवर्तन, दान महोत्सव आदि के भौंडे प्रदर्शन के रूप में बढ़ते शिथिलाचार के प्रबल विरोधी थे।

पूज्य आचार्य/आर्यिकाओं द्वारा 'गणधर' एवं 'गणिनी' विरुद धारण करने पर अपनी विरोधात्मक जिज्ञासा प्रकट करते हुए वे लिखते हैं–"भगवान महावीर स्वामी के अन्तिम गणधर सुधर्मा स्वामी के बाद विगत 2500 वर्षो में किसी महान से महान आचार्य को उनके शिष्यों ने गणधर तुल्य भी नहीं कहा। किन्तु अब 20वीं शती के अंतिम चरण में गणधराचार्य कुन्थुसागर महाराज से प्रारंभ होकर गणधरों की एक नयी खेप अवतरित होने लगी है और हमारी जानकारी में कम–से–कम तीन आचार्य तो अपने को इस उपाधि से अलंकृत करा ही चुके हैं। पता नहीं इन महामुनियों ने किस तीर्थंकर की प्रतीक्षा में पहले से ही गणधर पदवी धारण कर ली है।" (**समन्वय वाणी**, अगस्त 2004 (प्रथम), पृ. 3)

आ. बाबा जी का तो स्पष्ट मत था कि साधुओं में ऊंच–नीच का भेद असंभव है – "हमें तो किसी पूज्य आचार्य या आर्यिका माता के पद नाम के साथ 'शिरोमणि' की उपाधि लगाना या उन्हें सर्वोच्च घोषित करना भी बड़ा विचित्र लगता है। क्या साधुओं में आचार्य, उपाध्याय पदों के अतिरिक्त ऊंच–नीच का भेद किया जा सकता है? क्या किसी को शिरोमणि या सर्वोच्च प्रचारित करना उसी पद के धारी अन्य साधुओं की अवमानना नहीं है? सुधी जनों को विचार करना चाहिए।" (**शोधादर्श–32**, पृ.–109)

आचार्यो को भगवान जिनेन्द्र के समकक्ष रखकर उनकी **भक्तामर–स्तोत्र** से स्तुति किए जाने को अनुचित एवं शास्त्रों का अवमूल्यन मानते हुए उन्होंने लिखा है –"जिन शासन में कोई भी महान आचार्य भगवान जिनेन्द्र का स्थान नहीं ले सकता। किसी प्राचीन भक्त शिरोमणि आचार्य विरचित **भक्तामर काव्य** का या उसके किसी श्लोक का किसी आचार्य की स्तुति में उपयोग करना हमारी समझ में अनुचित है, इस उत्कृष्ट भक्ति काव्य का अवमूल्यन करना है। (**शोधादर्श–31**, पृ. 45)

कलियुगी आचार्यो के अंधभक्तों द्वारा पूज्य आचार्य की पुण्य–तिथि पर समाधि–स्थल पर प्रतिमा स्थापित कर पंचामृताभिषेक पूर्वक आरती–पूजन

को वे लोक–मूढ़ता मानते थे – "ऐसा लगता है कि कुछ वर्ष पूर्व आचार्य श्री को 'कलिकाल–सर्वज्ञ' की उपाधि से अलंकृत करने वाले उनके शिष्य एवं भक्तगण अपनी भक्ति एवं श्रद्धा के अतिरेक में यह विश्वास करते हैं कि आचार्य श्री ने इस नश्वर देह को त्याग कर सचमुच ही मोक्षगमन किया है। यदि ऐसा है तो यह उनकी दृष्टि में वर्तमान हुंडावसर्पिणी काल का एक ऐसा अछेरा होगा जिसकी कल्पना प्राचीन दिगम्बर जैन आचार्य गण नहीं कर पाये थे।.. किसी आचार्य–मुनि की प्रतिमा को वेदी में विराजमान कर उसका जिनेन्द्र प्रतिमा के समान अभिषेक–पूजा, आरती करना तो धर्म या लोकमूढ़ता ही कहलाएगी।" **(शोधादर्श–31**, पृ.–74)

प्रतिमा ही नहीं, मुनिराजों द्वारा 'कलिकाल–तीर्थंकर' जैसे विरुदों से अलंकृत होने पर वह कह उठते हैं – "प्राचीन आचार्यो ने 25वें तीर्थंकर की संभावना को सर्वथा नकार दिया है। भगवान महावीर के उपरांत किसी महान आचार्य को भी तीर्थंकर कहना या मानना तीर्थंकर का अवर्णवाद है।" **(शोधादर्श–32**, पृ.–109)

आधुनिक साधु–समाज द्वारा अर्हत् पद की प्राप्ति के लिए नित नये सुझाये जा रहे शार्ट–कट्स के प्रति करारी चोट करते हुए आपने लिखा है– "इस पंचम काल में तो उस श्रमणाचार के माध्यम से की गई कठोरतम साधना से भी अर्हन्त पद की प्राप्ति संभव नहीं – ऐसा स्वयं गणधर देव कह गये हैं। ऐसे में आर्यिका चन्दनामती जी ने 'श्री ज्ञानमती त्रिषष्ठि पताका' रचकर जैन जगत पर महान उपकार किया है क्योंकि इसके तो केवल श्रद्धा व रुचि से पढ़ने मात्र से त्रेसठ कर्म प्रकृतियों का नाश हो जायगा, ऐसा उनका वचन है। इस अतीव सरलतम नुस्खे को ईजाद करने के लिए आर्यिका चन्दनामती जी का जितना साधुवाद किया जाये, थोड़ा है। इस पंचम काल में अतीत में हुए महान योगी तपस्वी आचार्यो, मुनिराजों के समय में इस नुस्खे के ईजाद न होने से वे तो इसका लाभ उठाने से वंचित रह गये, पर हम आशा करते हैं कि न केवल रचयित्री आर्यिका जी स्वयं वरन् उनकी गुरुणी माताजी सहित संघस्थ सभी साध्वियां, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी इस नुस्खे से लाभ उठाकर अपने भवसागर को सफलतापूर्वक पार कर लेंगे।" **(शोधादर्श –32**, पृ.–168)

आ. बाबा जी ने मुनि संघों में बढ़ते अनाचार एवं दुराचार से चिंतित होकर बड़ी निर्भीकता एवं दृढ़तापूर्वक अपना सुझाव रखा था – "हमारी यह भी समझ में नहीं आता कि मुनि संघों में महिलाओं के (आर्यिका, ब्रह्मचारिणी, संघ संचालिका आदि किसी भी रूप में) तथा इसी प्रकार

आर्यिका संघों में पुरुषों के प्रवेश को कठोरतापूर्वक वर्जित करने में कौन सी बड़ी कठिनाई है।" (**समन्वय वाणी**, मई 2004 (प्रथम), पृ.–7)

वे धर्म–गुरुओं की समाज–सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार करते हुए पथ–प्रदर्शन करते हैं – "यदि हमारे मुनि–आर्यिकाएं भी अपने प्रवचनों में दहेज प्रथा निषेध तथा विवाहादिक सामाजिक आयोजनों को सादगी के साथ सम्पन्न करने पर जोर दें तथा श्रावकों से प्रतिज्ञा करावें तो इस समस्या का बहुत कछ निराकरण हो सकता है।" (**समन्वय वाणी**, जुलाई 2004 (द्वितीय), पृ.–3)

उनका यह विश्वास था कि धर्म–तीर्थ–स्थलों के विवादों का विभिन्न आम्नायों के साधुगण परस्पर वार्ता के माध्यम से सर्वमान्य हल खोज सकते हैं।

ऊपर उद्धृत लेखांशों के रूप में समाज में व्याप्त कुरीतियों, अनाचार एवं शिथिलाचार आदि के कारण धर्म के मूल स्वरूप में निरन्तर हो रहे अवमूल्यन के विरुद्ध इतनी स्पष्ट एवं निर्भीक अभिव्यक्ति एक स्वान्तः सुखाय पत्रकार ही कर सकता है, जो न सिर्फ प्रशंसनीय है, वरन् अभिनन्दनीय भी है।

इस भवसागर को पार करने में आचार्य–मुनि–आर्यिकागण रूपी सेतु ही जब वर्तमान कलियुग में स्वयं तूफान बन जाये तब सच्चे मार्ग के ऐसे प्रकाशक पत्रकारिता के श्रेष्ठ प्रतिमानों को स्थापित करते हुए स्वयं ही समाज के सेतु बन जाते हैं। निस्संदेह आ. बाबा जी मात्र दो मकानों अथवा दो पीढ़ियों के सेतु नहीं थे, वह तो समस्त जैन समाज के सेतु थे, और उसकी अमूल्य धरोहर भी। उनको हमारा शत्–शत् नमन् और अभिवन्दन!

✦✦✦

श्री अजित प्रसाद जैन का अभिनन्दन

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., के संस्थापक–महामंत्री श्री अजित प्रसाद जैन ने 1 जनवरी, 2000 ई., को 83वें वर्ष में प्रवेश किया। समिति की दिनांक 2 जनवरी, 2000 ई., को सम्पन्न साधारण सभा की बैठक में श्रद्धेय श्री जैन का उनके 83वें वर्ष में प्रवेश पर और **शोधादर्श** के प्रधान सम्पादक के रूप में जैन पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिये अजमेर में दिनांक 20 नवम्बर, 1999 ई., को उपाध्याय ज्ञानसागर जी के सान्निध्य में श्रुत संवर्द्धन संस्थान तथा प्राच्य श्रमण भारती द्वारा 'आचार्य विमलसागर (भिण्ड) स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार–99' से सम्मानित किये जाने के लिये समिति के सभी सदस्यों द्वारा भावभीना अभिनन्दन किया गया। समिति के अध्यक्ष श्री लूणकरण नाहर जैन ने तिलक लगा कर, श्रीफल प्रदान कर और शाल ओढ़ा कर श्री अजित प्रसाद जी का अभिनन्दन किया, उपाध्यक्ष श्री कन्हैया लाल जैन ने रौप्य मुद्रा से अभिनन्दन किया, और कोषाध्यक्ष श्री बिजय लाल जैन ने पुष्पहार पहना कर अभिनन्दन किया। डॉ. विनय कुमार जैन ने अभिनन्दन–पत्र का वाचन किया और उसे अध्यक्ष ने श्री अजित प्रसाद जी को सादर समर्पित किया।

डॉ. शशि कान्त ने श्री अजित प्रसाद जी का, समिति के प्रति उनकी मूल्यवान सेवाओं का उल्लेख करते हुए, संक्षिप्त परिचय दिया और यह भी अवगत कराया कि चूंकि अस्वस्थता के कारण वह अजमेर पुरस्कार समारोह में सम्मिलित नहीं हो सके थे, पुरस्कार चयन समिति के अध्यक्ष, प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन, ने पुरस्कार व प्रशस्ति–पत्र आदि लाकर दिनांक 8 दिसम्बर, 1999, ई. को श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा के लखनऊ कार्यालय में श्री अजित प्रसाद जैन को प्रदान किये थे और महासभा के अध्यक्ष श्री निर्मल कुमार सेठी ने शाल ओढ़ाकर उनका अभिनन्दन किया था।

यह उल्लेखनीय है कि श्रद्धेय अजित प्रसाद जी विभिन्न शासकीय दायित्वों का निर्वहन करते हुए अपने संवर्ग में तत्समय उपलब्ध सर्वोच्च पद (उप सचिव, उत्तर प्रदेश शासन) से वर्ष 1976 ई. में सेवा निवृत्त हुए थे और तदनन्तर वह विभिन्न सरकारी एवं गैर–सरकारी संस्थाओं के माध्यम से सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्रियाकलापों और पत्रकारिता में सक्रिय रहे।

जैन समाज की सभी अखिल भारतीय संस्थाओं में उनका बहुमान रहा है। तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., को सन् 1976 ई. में संस्थापन से ही श्रद्धेय अजित प्रसाद जी का मार्गदर्शन और सक्रिय योगदान प्राप्त रहा है, और यद्यपि विगत दस वर्षो से वह हृदय रोग से गम्भीर रूप से पीड़ित रहे हैं, उनकी कर्मठता और सूझ–बूझ से समिति के कार्यक्रमों का सुचारु संचालन होता रहा है।

सभी सदस्यों ने श्री अजित प्रसाद जी की छत्रछाया बने रहने की कामना की। श्री रमा कान्त जैन ने काव्य पाठ किया। श्री लूणकरण नाहर जैन, कु. हेमा सक्सेना, श्रीमती मंजरी जैन, श्रीमती मोहिनी जैन, श्रीमती सौम्या जैन और श्रीमती निधि जैन ने सुन्दर भजन प्रस्तुत कर समारोह को रससिक्त किया। श्री नरेश चन्द्र जैन ने अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए सभी समागत के प्रति आभार व्यक्त किया।

अहिंसा इण्टरनेशनल द्वारा सम्मान

अहिंसा इण्टरनेशनल द्वारा दिनांक 20 अप्रैल 2003 को चिन्माया सभागार, लोदी रोड, नई दिल्ली, में आयोजित सम्मान समारोह में **श्री अजित प्रसाद जैन,** प्रधान सम्पादक, **शोधादर्श** (लखनऊ) तथा **समन्वय वाणी** (जयपुर) को जैन पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिये **अहिंसा इण्टरनेशनल प्रेमचन्द जैन पत्रकारिता पुरस्कार 2002** से सम्मानित किया गया। केन्द्रीय राज्य मंत्री श्री विजय गोयल द्वारा शाल ओढ़ाकर सम्मान किया गया। इस अवसर पर महासभाध्यक्ष श्री निर्मल कुमार जी सेठी ने भी उनका सम्मान किया।

श्री अजित प्रसाद जैन ने अपने संक्षिप्त भाषण में अहिंसा इण्टरनेशनल तथा उसके पदाधिकारियों का सम्मान के लिए आभार व्यक्त करते हुये कहा कि "यह सम्मान उनका नहीं वरन् निष्पक्ष एवं जागरूक पत्रकारिता का सम्मान है। उनकी दृष्टि में पत्रकार को न केवल पूर्ण निष्पक्षता के साथ समाचारों का विश्लेषण करना चाहिए अपितु उसे समाज एवं धर्म के सजग प्रहरी की भूमिका भी निभानी चाहिए तथा धर्म एवं समाज में पनपती विसंगतियों एवं कुरीतियों के प्रति समाज के प्रबुद्ध वर्ग को सचेत करते रहना चाहिए।"

– रमा कान्त जैन

अन्तिम यात्रा

25 जून की प्रातः सब माया मोह छोड़, अपनों से मुंह मोड़, अनन्त– पथ के राही बने आदरणीय बाबा जी श्री अजित प्रसाद जी का पार्थिव शरीर, उनकी इच्छानुसार, हिंसा विरत प्रक्रिया से विद्युत शवदाह–गृह में 26 जून को पंचतत्व में विलीन हो गया।

उनकी अन्तिम यात्रा में जैन एवं जैनेतर समाज के लोग भारी संख्या में सम्मिलित रहे। जिन तीन संस्थाओं – यथा, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट और अनन्त–ज्योति विद्यापाठ, से वह अन्यतम रूप से सम्बद्ध रहे थे, की ओर से श्रद्धास्वरूप पुष्पचक्र उनके शव पर अर्पित किये गये।

28 जून को चारबाग, लखनऊ, में स्थित मुन्नेलाल कागजी धर्मशाला के प्रांगण में उनके प्रति लखनऊ की विभिन्न संस्थाओं के प्रतिनिधियों द्वारा श्रद्धांजलि अर्पित की गई। मेरठ से वहां की जैन बिरादरी के प्रतिनिधि श्री हुकमचंद जैन, टिकैतनगर से श्री लालचंद जैन, हरदोई जैन समाज के अध्यक्ष श्री सुमतप्रसाद जैन, स्थानकवासी समाज एवं ओसवाल जैन समाज की ओर से श्री लूणकरण नाहर, जैन शिक्षण संस्थान की ओर से श्री शैलेन्द्र जैन, दिगम्बर जैन महासमिति एवं मुन्नेलाल कागजी ट्रस्ट की ओर से श्री अजय कागजी, श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा की ओर से श्री विजय काला, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति की ओर से श्री नरेशचंद्र जैन, जैन मिलन की ओर से श्री विशाल जैन, अग्रवाल सभा के श्री जगदीश जिन्दल तथा अन्य प्रबुद्ध जनों यथा – श्री विष्णुदत्त शर्मा, डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त' और श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास' ने श्रद्धेय अजित प्रसाद जी के प्रति श्रद्धा–सुमन अर्पित किये। उनके भ्रातृज श्री रमा कान्त ने श्रद्धांजलि सभा का संचालन किया और ज्येष्ठ भ्रातृज डॉ. शशि कान्त ने उनके जीवन, कृतित्व और रुग्णावस्था के अन्तिम दिनों के सम्बन्ध में मार्मिक प्रकाश डाला।

श्रद्धांजलि सभा में ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट, लखनऊ; तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा; श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन सभा, लखनऊ; जैन मिलन लखनऊ तथा अनन्त–ज्योति विद्यापीठ द्वारा पारित शोक–प्रस्तावों का वाचन भी हुआ।

जैन पत्र–पत्रिकाओं में सर्वप्रथम लखनऊ से प्रकाशित साप्ताहिक **जैन गज़ट** ने अपने 30 जून के अंक में 'छपते–छपते' के अन्तर्गत उनके निधन की सूचना दी और 7 जुलाई के अंक में सचित्र भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। जयपुर से प्रकाशित पाक्षिक **समन्वय वाणी**, जिसके श्रद्धेय अजित प्रसाद जी प्रधान सम्पादक रहे थे, ने जुलाई 2005 (प्रथम पक्ष) के अंक में भावभीनी श्रद्धांजलि स्वरूप डॉ. अभय प्रकाश जैन का आलेख 'सूर्य जो अस्त हो गया' प्रकाशित कर समाचार को गति दी। जैन जगत अपने बीच से एक निर्भीक समाजसेवी पत्रकार के चले जाने से स्तब्ध रह गया।

जयपुर के सी–स्कीम स्थित परमानंद हॉल में अखिल विश्व जैन मिशन, दिगम्बर जैन महासमिति (न्यू कॉलोनी), और भारत जैन महामण्डल के संयुक्त तत्वावधान में डॉ. ताराचंद्र जैन बख्शी की अध्यक्षता में एक श्रद्धांजलि सभा आयोजित हुई जिसमें डॉ. बख्शी के अतिरिक्त सर्वश्री रणजीत सिंह शेखावत, संतोष शर्मा, रामकृष्ण मूंदड़ा, धनराज जैन, रिषभ कासलीवाल, जे.पी. अग्रवाल और एम.पी. कौल आदि वक्ताओं ने श्री अजित प्रसाद जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए अपने श्रद्धा–सुमन अर्पित किये।

माह जुलाई में नई दिल्ली से प्रकाशित मासिक **स्थूलिभद्र संदेश** और **जैन प्रचारक**, लखनऊ की मासिक पत्रिका **श्रुत संवर्धिनी** तथा चातुर्मासिक **शोधादर्श** और मथुरा से 27 जुलाई को प्रकाशित पाक्षिक **जैन सन्देश** ने तथा पहली अगस्त को आगरा से प्रकाशित साप्ताहिक **श्वेताम्बर जैन**, 2 अगस्त को पुणे के **धर्ममंगल**, अगस्त में इंदौर से मासिक **तीर्थंकर**, नई दिल्ली के पाक्षिक **दिगम्बर जैन महासमिति पत्रिका** (अगस्त 1–15) व मासिक **वीर** (अगस्त), पुनः मथुरा के पाक्षिक, **जैन सन्देश** ने 24 अगस्त के अंक में डॉ. राजाराम जैन के भावभीने सम्पादकीय, मुजफ्फरनगर से प्रकाशित **वर्णी प्रवचन** (अगस्त–सितम्बर), टीकमगढ़ की पत्रिका **वीतराग वाणी** (सितम्बर–अक्टूबर) और लखनऊ की मासिक पत्रिका **प्राचीन तीर्थ जीर्णोद्धार** (सितम्बर) ने श्री अजितप्रसाद जी के व्यक्तित्व और कृतित्व को नमन कर उन अजेय को अमर कर दिया। **समन्वय वाणी** (जयपुर) ने अपने अक्टूबर (द्वितीय पक्ष) के अंक को उनके प्रति श्रद्धा–सुमनों से सज्जित किया।

✧✧✧ **— नलिन कान्त जैन**

स्मृति के झरोखे से

श्री अजित प्रसाद जैन से मेरा आदर और स्नेह का सम्बन्ध था क्योंकि वे मेरे रक्त सम्बन्धी, स्नेह–भाजन और आदरणीय चाचा जी थे। उनके सम्बन्ध में जो स्मृतियां हैं वे मेरे जन्म–काल से ही जुड़ी हुई हैं, जब उन्होंने मुझे गोद में खिलाया था। वयस्क होने पर उनका मेरे प्रति एक मित्र के समान सद्भावपूर्ण व्यवहार रहा। धर्म के प्रति उनकी प्रगाढ़ निष्ठा थी, परन्तु वे मेरे खुले ढंग से सोचने की विधा को सम्मान देते थे। ऐतिहासिक प्रश्नों पर चर्चा में वे मुझसे प्रायः जिज्ञासा करते थे और सहमत भी होते थे।

एक ऐसा प्रकरण था कालानॉस के विषय में। कालानॉस एक साधु था जिससे भारत पर आक्रमण के समय यूनान के राजा सिकन्दर ने भेंट की थी और वह उसे अपने साथ ले भी गया था। कुछ जैन विद्वानों ने कालानॉस को 'कल्याण मुनि' के नाम से प्रसिद्ध कर दिया। चाचा जी ने मुझसे पूछा कि मेगस्थनीज़ ने अपनी भारत यात्रा का जो विवरण छोड़ा है उसमें इस प्रकरण का किस प्रकार उल्लेख है। जब मैंने उन्हें बताया कि कालानॉस के 'कल्याण मुनि' होने का प्रश्न ही नहीं उठता तो उन्होंने यह तो माना कि 'कल्याण मुनि' नाम का प्रश्न नहीं उठता, परन्तु फिर यह प्रश्न शेष रह जाता है कि इस शब्द के प्रयोग का क्या कारण था। मुझे समझ में आया कि जो भी मुनि या साधु रहे होंगे उन्होंने आशीर्वाद स्वरूप 'कल्याणम् अस्तु' कहा होगा और वह 'कल्याणमस्तु' ही विदेशी यूनानियों की भाषा में 'कालानॉस' बन गया। यह कुछ उसी प्रकार था जैसा कि कलकत्ता के सम्बन्ध में किंवदन्ति है कि जब जॉब चारनॉक उस स्थल पर पहुंचा तो वहां एक पेड़ कटा पड़ा हुआ था। जो लोग वहां दिखाई दिए उनसे चारनॉक ने पूछा कि इस स्थान का क्या नाम है। वे लोग समझे कि साहब यह जानना चाहते हैं कि यह पेड़ कब कटा और उन लोगों ने कहा "कल कटा"। चारनॉक साहब ने समझा कि इस स्थान का नाम कैलकटा' है और उन्होंने उसे इसी रूप में प्रख्यापित कर दिया। इस चर्चा के परिप्रेक्ष्य में कालनॉस के सम्बन्ध में चाचा जी का एक लेख **शोधादर्श 16–17** में "क्या Kalanos (कल्याण मुनि?) दिगम्बर जैन मुनि था?" शीर्षक से प्रकाशित हुआ है।

प्रायः इस प्रकार की चर्चाएं हम चाचा–भतीजे के बीच होती रहती थी। सामाजिक और धार्मिक विषयों पर भी हम लोगों की उन्मुक्त रूप से चर्चा होती थी। समाधिमरण पर वे स्वयं शास्त्रनिष्ठ श्रद्धान रखते थे, परन्तु मेरे विचारों पर भी ध्यान देते थे। जब वे मृत्यु से जूझ रहे थे तो उन्हें स्वयं *भी यह आभास हुआ कि शास्त्रोक्त विवेचन व्यावहारिक नहीं है और* उन्होंने अपने विचार **शोधादर्श 55** में अग्रलेख के रूप में दिए।

तदपि वे एक धर्मनिष्ठ श्रद्धालु दिगम्बर जैन तेरहपंथी शुद्ध–आम्नायी श्रावक थे। उनकी निष्ठा इतनी गहरी थी कि जब उनकी प्रायः सभी इंद्रियां अत्यंत शिथिल हो गई तो वे अपने प्रिय पाठों को स्मरण से ही दोहराया करते थे। अप्रैल 2004 में उनको जब चौथा व 5वां हृदय–आघात हुआ, उसके बाद मैंने और छोटे भाई रमा कान्त ने उनको दृढ़ता से घर से बाहर जाने–आने के लिए मना कर दिया था। हम दोनों भाई स्वयं ही उनसे सप्ताह में 2–3 बार मिलने जाते थे, परन्तु धर्म के जोश में वे गत वर्ष सुगन्धदशमी, अनन्त चतुर्दशी और क्षमावाणी के दिन मन्दिर चले गए और सीढ़ी चढ़ के दर्शन कर आए। दीपावली पर भी वे निर्वाण लाडू चढ़ाने चले गए। हमने इस पर अपना रोष भी प्रकट किया तो वे कहने लगे कि और सब नैत्यिक कार्य होते ही हैं इसलिए इन पर्व के दिनों में भगवान का दर्शन क्यों छोड़ा जाए।

हमारे घर से चाचा जी के घर का रास्ता लगभग 15 मिनट का है, इस रास्ते को तय करने में उन्हें लगभग एक घण्टे का समय लगा और बीच में कई जगह रुककर बैठना पड़ा। जब हमें मालूम हुआ तभी हमने उनसे स्पष्ट रूप से अनुरोध किया कि अब वे चलकर नहीं आवेंगे। हम उन्हें, जब उनकी इच्छा होगी, स्वयं लिवा लाएंगे। गत वर्ष 6 सितम्बर को मेरे कनिष्ठ पुत्र की बेटी के जन्म दिवस पर उनकी सब बच्चों से मिलने की प्रबल इच्छा हुई, अतः उन्हें उनका पौत्र गाड़ी में बैठाकर ले आया। अपने अग्रज के परिवार के सभी बच्चों से मिलकर उनको अतीव आनन्द हुआ। यह हमारे घर पर उनका अंतिम आगमन था।

दिसम्बर माह से वे पूरी तरह शैयाग्रस्त हो गए। तब हम दोनों भाई प्रतिदिन ही उनसे मिलने कुछ समय के लिए जाते थे। फरवरी में एक दिन जब ठण्ड का अत्यन्त प्रकोप था अर्द्ध रात्रि के समय हमारी छोटी बहू माया का टेलीफोन आया कि बाबू जी की तबियत बहुत खराब है और वे

आपसे मिलने को व्यग्र हैं। मैं और रमा कान्त उनके पास गए तो उनको एक प्रकार की शान्ति की अनुभूति हुई। हम दोनों भाइयों ने और बहुरानी ने उनके मनपसन्द **भक्तामर स्तोत्र** और **कल्याणमन्दिर स्तोत्र** का पाठ किया तो धीरे–धीरे उनको शान्ति मिली और नींद आ गई। उनके सो जाने के बाद हम लोग चले आए। यह उनका हम दोनों भाइयों के प्रति प्रगाढ़ स्नेह था कि जब भी वे असह्य बेचैनी का अनुभव करते थे तो हमें याद करते थे और हम दोनों भाई भी उनके सान्निध्य में पहुंच जाते थे।

चाचा जी के निधन से एक व्यक्तिगत क्षति तो यह हुई कि अब मुझे 'शशि' कहकर बुलाने वाला कोई बुजुर्ग नहीं रह गया, और दूसरी क्षति यह हुई कि अब धार्मिक और सामाजिक विषयों पर मुझसे उन्मुक्त रूप से और खुले दिमाग से चर्चा–विमर्श करने वाला सहृदय मनीषी भी नहीं रह गया। समाज, धर्म और जैन पत्रकारिता के क्षेत्र में उनके जाने से जो रिक्तता पैदा हो गई है वह अपनी जगह अपूरणीय है, परन्तु हम दोनों भाइयों के लिए और विशेष रूप से मेरे लिए जो स्नेह और वैचारिकता के क्षेत्र में शून्य उपस्थित हो गया है वह हमें निरन्तर ही सालता रहेगा।

— डॉ. शशि कान्त

संस्मरण श्रद्धांजलि

जब मैं 3 जनवरी, 1981, में कोटा में अध्यक्ष बना था, तब से स्व. अजित प्रसाद जी जैन मुझे सहयोग देते आ रहे थे। कोटा में उन्होंने तथा श्री सुमेरचन्द जी पाटनी ने वहां के लोगों को समझाकर मुझे अध्यक्ष बनाया। उसके बाद लखनऊ आने पर उन्होंने महासभा कार्यालय को अच्छी तरह से सम्भाल लिया और कई वर्षो तक मुझे सहयोग दिया, जिसे मैं कभी भी नहीं भुला सकता।

उनमें पत्राचार की अद्‌भुत क्षमता थी। उन्हें सरकार में रहने के कारण बहुत अनुभव था, जिसका लाभ समस्त जैन समाज को मिला। भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव में भी उन्होंने मुझे उत्तर प्रदेश की कमेटी का सदस्य बनाकर भी सरकार से सम्मान करवाया।

मैं भगवान जिनेन्द्र से प्रार्थना करता हूं कि उनकी आत्मा को शांति मिले और आप सब परिवार वाले उनके द्वारा दी गई सेवाओं को याद करते रहें और उससे मार्गदर्शन एवं उत्साह प्राप्त करते रहें।

— निर्मल कुमार जैन सेठी
अध्यक्ष, श्री भा.दि.जैन महासभा

✦✦✦

श्री अजित प्रसाद जी जैन को सादर समर्पित

जो **शोधादर्श** के प्रधान सम्पादक,
प्रज्ञावान विद्वान थे।
जैन जगत के जग–मग तारे,
अजित प्रसाद जी महान थे।
जन्मशती पूज्यवर की आई,
हम सब मिल गुण–गान करें।
चरणों में झुककर विद्वतवर के,
शत्–शत् बार प्रणाम करें।

— लूणकरण नाहर जैन

✦✦✦

श्री अजित प्रसाद जैन के चिन्तन प्रसून

यथार्थ–बोधक

समाधिमरण

मेरी दीर्घकालीन गम्भीर अस्वस्थता का समाचार पाकर मेरे अनेक स्नेही इष्टमित्रों ने चिन्ता व्यक्त की है और मेरे शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ करने की कामना की है। मेरे कुछ शुभचिन्तकों ने मेरी वय और निरन्तर बनी हुई अस्वस्थता को दृष्टि में रख तथा कदाचित् मृत्यु को आसन्न मान मुझे **'समाधि दीपक'** की कथाएं और दोनों **'समाधिमरण पाठ'** नित्य प्रति पढ़ने की सलाह भी दे डाली है। मैं इन सभी स्नेहीजनों और शुभचिन्तकों का हृदय से आभारी हूं।

अपने प्रिय स्तोत्रों आदि का प्रायः नित्यप्रति पाठ करते हुए जब–तब कई बार कवि द्यानतराय (ईस्वी सन् 1676–1726) कृत **समाधिमरण पाठ'** (दस पद) और पं. सूरचन्द्र द्वारा विक्रम संवत् 1955 (1898 ई.) की आश्विन कृष्ण सप्तमी को रचित **'समाधिमरण पाठ'** (बड़ा पाठ – 55 पद) को भी पढ़ा है। आर्यिका श्री विशुद्धमती माताजी द्वारा संकलित–सम्पादित **'समाधि दीपक'** पुस्तिका और उसमें संगृहीत उपसर्ग सहकर प्राण तजने वाले मुनिराजों की कथाएं भी मेरे दृष्टिपथ में आई। अभी कुछ समय पूर्व बन्धुवर डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा ने मृत्यु महोत्सव को समर्पित **'दिशाबोध'** का अंक निकाला था। वह भी देखने में आया था। जैन पत्र–पत्रिकाओं में आये दिन सल्लेखना लेने, समाधिमरण करने के समाचार और समाधिमरण को महिमामंडित करने वाले लेख आदि भी पढ़ने को मिलते रहे हैं।

वर्षों से हृदयरोग, मधुमेह, दृष्टिमंदता एवं श्रवणमंदता से ग्रसित जर्जर काया लिये 87 वर्ष पूर्ण कर जीवन–यात्रा के कगार पर खड़ा हूं। पांच हार्ट अटैक झेले हैं। कई बार ऐसा लगा मृत्यु स्पर्श कर पास से निकल गई। और अब तो शनैः–शनैः स्मरण–शक्ति भी जवाब देने लगी है। इन्द्रियां शिथिल हो चुकी हैं। यह अच्छी तरह जानता–समझता हूं कि जो भी जीव इस धरा पर जन्मा है उसकी एक–न–एक दिन मृत्यु अवश्यम्भावी है। मेरे बूढ़े कन्धों पर कोई विशेष जिम्मेदारी भी नहीं है। कोई अतृप्त इच्छा नहीं है। पर्याप्त यश–धन मर्यादित ढंग से पाया है। किन्तु जब तक आत्मपखेरू स्वयं ही देहतत्व से मुक्त नहीं हो जाता उसे अपनी ओर से अलग नहीं करना चाहता। मैं तो संतोषपूर्वक अपने यत्किंचित् कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए अपनी

जीवन–डगर पर बढ़े चला जा रहा हूं, भले ही सम्यक्त्वी प्राणियों की दृष्टि से समाधिमरण की पात्रता मैंने अर्जित कर ली हो और निर्धारित विधि से सल्लेखना न लेकर कोई पाप कर रहा हूं।

समाधिमरण, सल्लेखना के औचित्य पर मैंने गम्भीरतापूर्वक चिन्तन–मनन किया। यह आत्महत्या, Suicide और इच्छा–मृत्यु का पर्यायवाची लगा। अकाल (समय से पूर्व) मृत्यु भी इसमें भासित हुई। प्रायः जब कोई व्यक्ति शारीरिक, मानसिक या किसी अन्य कष्ट के कारण अपने जीवन से पूर्णतया ऊब जाता है तो वह अपने शरीरान्त का उपक्रम करता है जो कानून की दृष्टि से अपराध है क्योंकि किसी को भी अपना जीवन भी समय से पूर्व समाप्त करने का अधिकार नहीं है।

असाध्य रोग या अवस्था से जर्जरित देह लिये असीम कष्ट भोग रहे प्राणियों को पीड़ा मुक्त कराने के सद्उद्देश्य से कुछ मानवतावादी संगठन **Euthanasia** या **Mercy Death** की अनुमति प्रदान किये जाने की वकालत कुछ समय से करते आ रहे हैं। किन्तु इस सहुलियत का कितना सही उपयोग होगा और कितना निहितस्वार्थी व्यक्तियों द्वारा दुरुपयोग, इसका निर्णय कठिन है। इसीलिये कानून उसकी अनुमति देने से कतराता रहा है।

गृहत्यागी मुनिराज, आर्यिका आदि जो पूर्णतया वीतराग होते हैं उन्हें असाध्य रोग या अवस्था के कारण जर्जरित देह में असीम कष्ट होने पर मृत्यु आसन्न जान समाधिमरण लेने या लिवाने की परम्परा है, और उसे धर्म–मरण या मृत्यु–महोत्सव की संज्ञा दी जाती है। किन्तु वह भी कितनी उचित है, विचारणीय है। स्वेच्छापूर्वक है, तो ठीक है और यदि थोपी गई है, तो उसका औचित्य क्या है? गत शताब्दी में एक महाराजश्री ने, जो अपने को निमित्तज्ञानी मानते थे, एक अन्य महाराजश्री को यह बताकर कि उनका जीवन अब कुल इतने दिन शेष बचा है समाधिमरण दिलवा दिया। अवधि बीत गई, पर काल–घंटी नहीं बजी और वह क्षुधा–तृषा से त्रस्त हो उठे। समाधिमरण आर्तमरण में परिवर्तित होने लगा। जब उनके आचार्य श्री को यह विदित हुआ तो उन्होंने तथाकथित निमित्तज्ञानी जी को फटकरा और क्षुब्ध मुनिराज का समाधिमरण भंग कराया।

जहां तक गृहस्थों को समाधिमरण करने या दिलाने की बात है, कवि द्यानतराय ने तो सात व्यसनों से मुक्त, बाइस अभक्षों के त्यागी, संयमी, बारह व्रतों का पालन करने वाले, आरम्भी हिंसा भी न करने वाले, व्यापार में पराया धन न हड़पने वाले, देव–शास्त्र–गुरु की पूजा करने वाले, सेवाव्रती, परोपकारी, चार प्रकार का दान देने वाले, अल्प आहारी और सामायिक विधि जानने वाले

श्रावक को समाधिमरण करने का पात्र माना है। इतनी अर्हताएं रखने वाले और इस कसौटी पर खरे उतरने वाले कितने गृहस्थ हैं, इनकी गणना करना कठिन है। और समाधिमरण की जो प्रक्रिया (विधि–विधान) गृहस्थ के लिये बताई गई है उसे शनैः–शनैः भी पालन करना कितनों के लिये साध्य है, कहना कठिन है।

यह तो सभी जानते हैं कि मृत्यु अवश्यम्भावी है, पर कितने हैं जो मृत्यु आने से पहले मर जाना चाहते हैं? जहां तक परिग्रह त्याग का सम्बन्ध है या आहार की मात्रा को शनैः–शनैः कम करते जाने की बात है, वे तो, अपवादों को छोड़कर, समान्य आसन्न मृत्यु की स्थिति में स्वतः कम होते चले जाते हैं। रोगों से जर्जरित वृद्धकाया को कुछ वस्तुएं खाने–पीने पर जहां एक ओर डाक्टर या तीमारदारों द्वारा रोक लगा दी जाती है तो दूसरी ओर स्वयं वृद्ध रोगी की भी इच्छा, भूख–प्यास मर जाती है। वस्त्राभूषण पहनने आदि का शौक भी छूटता चला जाता है। अतः समाधिमरण की यह प्रक्रिया तो स्वतः सम्पन्न हो जाती है। यद्यपि लोभ और मोह, राग और द्वेष पूर्णतः तो नहीं छूट पाते, किन्तु जीवन और दुनिया के अनुभवों से परिपक्व वृद्ध व्यक्ति जीवन के इस अन्तिम पड़ाव पर काफी कुछ इनसे अपने को मुक्त कर लेता है। रही अन्त समय धर्म ध्यान में मन लगाने की बात, स्व अनुभव के आधार पर आपसे पूछना चाहूंगा कि जब शारीरिक या मानसिक वेदना से ग्रसित हो आपके मुख से 'हाय, हाय' निकल रही हो, तब प्रभु नाम कैसे उच्चरित होगा, भले ही सारी जिन्दगी आप धर्मनिष्ठ रहे हों?

यह कहना कि स्वात्मोपलब्धि हो जाने पर, केवल ज्ञान हो जाने पर मुक्ति मिल जाती है, हमारी समझ में तो केवल वैचारिक अवधारणा है, तर्कसंगत निष्कर्ष नहीं। हमें तो यही उचित प्रतीत होता है कि रोग–शोक का आवश्यक उपचार करते हुए सहज ढंग से मृत्यु का वरण किया जाये।

सामान्य गृहस्थ के मरण को भी सरल और धर्मनिष्ठ बनाने के उद्देश्य से रचे गये समाधिमरण पाठों और तत्सम्बन्धी अन्य साहित्य के प्रणेता मनीषियों की सदाशयता निस्संदिग्ध है। किन्तु यह विचारणीय है कि वे कितने व्यावहारिक हैं। धार्मिक आस्था अपनी जगह है और व्यावहारिकता अपनी जगह। इस प्रकार के साहित्य की रचना जिन्होंने जिस समय की वे उस समय आसन्न मृत्यु से कोसों दूर रहे, अतः व्यावहारिक बात न कह सके। यदि उनकी मृत्यु आसन्न होती तो वे इनकी रचना ही न कर पाते। उन्होंने धार्मिक निष्ठा के वशीभूत हो उपदेश दिया है और हमारा भी किंचित् भी आशय उनकी अवमानना का नहीं है और ना ही समाधिमरण को विधि–विधान सहित अंगीकार करने के लिये स्वेच्छा से समुत्सुक किसी भी धर्मात्मा को निरुत्साहित करने का। हमने तो जैसा स्वयं अनुभव किया, लिख दिया। इत्यलम्।

समाज सुधार में धर्मगुरुओं की महत्वपूर्ण भूमिका हो

जैन धर्म में गुरुओं का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है, बड़ा मान–सम्मान है, जितना कदाचित् ही किसी समाज में हो। मोक्ष मार्ग के साधक होने के कारण वे बड़े श्रद्धास्पद हैं। सतत वीतरागता, समता, इन्द्रिय संयम तथा अपनी देह से भी विरक्तता एवं सभी प्राणियों से मैत्री भाव की साधना करने वाले इन पंच महाव्रती गुरुओं में श्रावक तीर्थंकर महाप्रभु का साधनारत प्रतिबिम्ब खोजता है तथा उनकी गिनती अर्हन्त–सिद्धों के साथ परमेष्ठियों में करता है।

आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा से सभी पिच्छीधारी गुरु–गुरुणी चातुर्मास स्थापना करके एक ही स्थान (नगर–कस्बे–गांव) में स्थिरावास करते हैं। जहां कहीं किसी आचार्य–मुनि–आर्यिका माता श्री का चातुर्मास होता है वहां उनके सान्निध्य एवं प्रेरणा से हो रहे वृहद् पूजा विधान, उनके धर्म प्रवचन, धार्मिक गोष्ठियां, शोभा यात्राएं, चातुर्मास काल में पड़ने वाली उनकी तथा उनके गुरुवर्य की जन्म–दीक्षा–आचार्य पद तथा समाधि जयन्तियों को बड़े समारोहपूर्वक मनाने, अपने गुरुवर्य या स्वयं अपने द्वारा प्रायोजित करोड़ों की लागत से नवीन अतिशय क्षेत्रों के निर्माण–विकास या इसी प्रकार की अन्य भारी योजनाओं के लिए विपुल द्रव्य का दान देने के लिए श्रावकों को प्रेरणा देने, तीर्थभक्त, मुनिभक्त, धर्म–शिरोमणि, दानवीर आदि के विरुद से संबोधित कर उन्हें धर्म कार्यो के लिए अधिकाधिक दान देने के लिए उत्साहित करने से समाज में अपूर्व श्रद्धा व धर्म प्रभावना का वातावरण चातुर्मास भर बना रहता है। जिन मुनिश्री/आर्यिका माताश्री का चातुर्मास जितना वैभवपूर्ण ढंग से मनाया जाता है, वह उतने ही प्रभावक मुनिराज/माताश्री गिने जाते हैं। अभी दो वर्ष पूर्व हुए एक प्रवचन कुशल प्रभावक युवा मुनिश्री के चातुर्मास काल में हुए व्यय को चातुर्मास व्यवस्था समिति के आयोजकों ने लगभग 20 लाख रुपया बताया था। इस व्यय का कोई लेखा जोखा या हिसाब किसी को नहीं देना पड़ता। अतः उत्साही कार्यकर्ताओं की भी कोई कमी नहीं रहती। हमारे अधिकांश धर्म गुरुओं/गुरुणियों की धर्म प्रभावना की अवधारणा प्रायः उपर्युल्लिखित कार्यक्रमों तक ही न्यूनाधिक सीमित रहती है। आज अकेले दिगम्बर जैन आम्नाय में पिच्छीधारी धर्म गुरुओं/गुरुणियों की संख्या 500 के लगभग होगी तथा उनके अकेले चातुर्मास काल पर ही समाज का अरबों का व्यय हो जाता है।

हमें धर्म प्रभावना के निमित्त से किए गए किसी भी आयोजन पर कोई आपत्ति नही है यद्यपि वैभवपूर्ण प्रदर्शनों से समाज का कोई भला नहीं होता। वृहद् क्रिया–काण्ड भी जैनधर्म की मूल भावना से मेल नहीं खाते।

यदि हमारे धर्म गुरु/गुरुणी, जिनके प्रति समाज में अत्यंत श्रद्धा व सम्मान है, कुछ समाज सुधार की ओर भी ध्यान दें तो उनका समाज पर स्थायी उपकार होगा। आज दहेज प्रथा के अभिशाप से जैन समाज का कम सम्पन्न विशाल वर्ग बुरी तरह से त्रस्त है। होड़ा–होड़ी में वर पक्ष द्वारा दहेज की अधिकाधिक मांग तथा विवाह समारोह में वैभवपूर्ण प्रदर्शन से एक ही कन्या के विवाह से अनेक परिवारों की आर्थिक स्थिति ही चरमरा जाती है। परिणामस्वरूप अनेक कन्यायें बिना ब्याहे ही जीवन यापन करने के लिए विवश हो रही हैं। दहेज हत्याओं से भी यह अहिंसा परमो धर्मः का उद्घोष करने वाली समाज भी अछूती नहीं रह गयी है। यदि हमारी श्रद्धा के केन्द्र मुनि/आर्यिका माताएं जैन समाज को कुरीतियों से उबारना भी अपने साधु जीवन का मिशन बना लें तो निश्चय ही समाज को इन कुरीतियों से उबरने में देर नहीं लगेगी और वह एक आदर्श समाज बन सकेगा।

इसके लिए हमारा उनसे विनम्र निवेदन है कि अपने प्रवचनों में वे–

1 दहेज की कुप्रथा का डटकर विरोध करें तथा युवकों व उनके अभिभावकों से दहेज न मांगने–लेने के प्रतिज्ञा पत्र भरवाएं।

2 विवाह समारोह व अन्य पारिवारिक उत्सव सादगी से मनाए जाने पर जोर दें।

3 बिजली की सजावट, रोशनी व अनावश्यक साज–सज्जा पर अपव्यय रोकने की दृष्टि से तथा जैन धर्म की पहचान बनाए रखने के लिए सब विवाह कार्य दिन ही में सम्पन्न करने पर बल दें।

4 अब विवाह समारोहों में अपव्यय रोकने के लिए सामूहिक विवाह की भी प्रथा चल पड़ी है पर कदाचित् ही कोई सम्पन्न परिवार ऐसे समारोहों में सहभागी होता हो। यदि सम्पन्न परिवार इसमें अगुवाई करें तो कम सम्पन्न परिवार भी इस प्रथा को अपनाने में उत्साहित होंगे।

ये हमने केवल कुछ सुझाव दिये हैं जिन्हें अपनाकर हमारे श्रद्धेय मुनिगण एवं आर्यिका–माताएं अपने साधु जीवन का सार्थक उपयोग समाज कल्याण के लिए कर सकते हैं।

✧✧✧

उद्बोधक

कुत्ते भौंकते रहे, कारवां चलता गया

'सभी (जैन) विद्वान कुत्ते हैं।' चौंकिए मत, ये शब्द हमारे नहीं, एक वरिष्ठ दिगम्बर आचार्य जी के हैं। अ.भा. दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद द्वय में से एक के अध्यक्ष एवं **जैन संदेश** के प्रधान सम्पादक डॉ. राजाराम जी को वाराणसी से उनके दो विद्वान मित्रों ने उन्हें संयुक्त रूप से लिखे पत्र में सूचित किया है।

एक पूजनीय आचार्यजी द्वारा सभी विद्वतजनों के इस चौंकाने वाले मूल्यांकन से व्यथित होकर आदरणीय डॉ. साहब ने **जैन संदेश** दिनांक 1.3.2000 के अपने सम्पादकीय लेख में लिखा है कि ये मित्र कुछ माह पूर्व आचार्यश्री की प्रशंसा करते नहीं अघाते थे तथा उनके तत्वावधान में वाचनाओं एवं व्याख्यान मालाओं का आयोजन करते कराते रहे हैं।

इन आचार्यश्री की दीर्घ दीक्षावधि में अनेक विद्वान उनके सम्पर्क में आए होंगे। अतः समाज के विद्वानों के विषय में उनकी उपरोक्त धारणा निश्चय ही उनके स्वानुभव पर आधारित होगी। वैसे भी आचार्य श्री उत्कट तपस्वी हैं, सत्य महाव्रतधारी हैं। अतः उनके मुखारविन्द से जो भी वचन उच्चरित होंगे, वे सत्य के अलावा और कुछ नहीं हो सकते। उनकी इस स्पष्टोक्ति के लिए भले ही वह कटु लगे या कोई उन पर भाषा समिति का दोष लगाए हम उन्हें साधुवाद देते हैं। वस्तुतः आचार्यश्री के इस सटीक मूल्यांकन ने समाज के विद्वत्जनों को अपने अन्तर में झांकने के लिए ही प्रेरित किया है।

विचार करने पर इस चतुष्पाद प्राणी में तथा अपने विद्वतजनों में कई बिन्दुओं पर असाधारण समानता दृष्टिगोचर होती है। कुत्ता बड़ा ही स्वामीभक्त प्राणी है। हमारे अधिकांश विद्वत्जन भी अपनी मुनि भक्ति में कम नहीं हैं। कुत्ता स्वामी के गुण–दोष कुछ नहीं देखता बशर्ते वह उसे टुकड़ा डालता रहे। हमारे अधिकतर मुनिभक्त विद्वत्जनों की दृष्टि में भी वे सभी दिगम्बर वेशी मुनि पूजनीय हैं, संस्तुत्य हैं जो उन्हें सम्मान, पुरस्कार, उपाधियों का चारा डलवाते रहें, प्रमुदित मुद्रा में पिच्छी छुआकर उन्हें आशीर्वाद देकर व अन्य प्रकार समाज में उनकी प्रतिष्ठा वृद्धि में सहायक होते रहें। फिर चाहे मुनिश्री कैसी ही शिथिलाचारी प्रवृत्तियों में लिप्त हों, वे उनका स्तुतिगान करते रहेंगे और विद्वत्जन तो समाज की आंख होते हैं, उसके मार्गदर्शक होते हैं, समाज उनके पीछे–पीछे चलता है।

यदि कोई विद्वान (या प्रबुद्ध श्रावक) आंख से उपगूहन की पट्टी हटाकर किन्हीं मुनिजी के चर्या शैथिल्य को लक्ष्य करके पत्र–पत्रिकाओं में तीखी आलोचना करने का दुस्साहस कर भी दे तो या तो समाज का ही एक वर्ग मुनिश्री के पक्ष में खड़ा नजर आएगा या आलोचक को अपनी हरकतों से बाज आने के लिए किन्हीं अज्ञात व्यक्तियों से धमकी भरी चेतावनी प्राप्त हो जायेगी। वैसे भी मुनिजी पर तो उन आलोचनाओं का कोई असर होता नहीं, वे उनसे तनिक भी विचलित न होकर (इसे गली के श्वानों का भौंकना मात्र मानकर) मन्थर गति से अपनी डगर पर पूर्ववत् चलते रहते हैं।

कुछ समय पूर्व समाचार–पत्रों की सुर्खियों में बने एक आचार्यश्री पर उन्हीं की एक शिष्या आर्यिका जी द्वारा शील भंग का अकल्पनीय आरोप लगाए जाने पर जैन जगत में भूकम्प–सा आ गया था। समाज प्रमुखों द्वारा गठित उच्च स्तरीय जांच आयोग के निष्कर्षो को मानने से आचार्य जी ने तो इंकार कर ही दिया, एक अखिल भारतीय संस्था के शीर्ष नेता ने भी आयोग के निष्कर्षो को गलत ठहराते हुए आचार्यजी को निर्दोष घोषित कर दिया। साथ ही समाज पर उनके द्वारा किए गए महान उपकारों के लिए समाज की कृतज्ञता भी प्रकाशित कर दी। आचार्यश्री श्रद्धालु श्रावकों की भारी जय–जयकार के बीच नवीन महामन्दिरों एवं तीथ–क्षेत्रों का निर्माण कराते पूर्ववत विचरण कर रहे हैं और अरोपी आर्यिकाजी दीक्षा छेदकर गुमनामी के अंधकार में खो गई हैं।

मुजफ्फरनगर में चर्या शैथिल्य के कारण भारी पिटाई किए जाने से बहुचर्चित हुए आचार्यश्री को वहां से पुलिस संरक्षण में विदा होना पड़ा था। उनके साथ किए गए दुर्व्यवहार की जैन जगत में सर्वत्र (उनके आलोचकों सहित) भारी निन्दा करते हुए आचार्यजी से अपनी चर्या में गुणात्मक सुधार लाने की अपील की थी। अपील का आचार्यश्री पर क्या असर होना था! सोनागिरजी में पुनः किसी महिला के प्रसंग से उनके साथ दुर्व्यवहार हुआ। वहां से निर्विकल्प भाव से विहार कर कामा (राजस्थान) पहुंचने पर उनका जन्म दिवस विशुद्ध पश्चिमी शैली से मनाया गया। आचार्यश्री ने प्रमुदित मुद्रा में केक काटी तथा भक्तों को खिलाई, भक्तों ने भी हर्ष विभोर हो उन्हें घेरकर 'हैप्पी बर्थ डे टू यू' गाया। (**तीर्थंकर** के विद्वान सम्पादक ने इसे 'पश्चिम से उदय हुआ सूरज' कहा है।) आचार्यश्री अपने आलोचकों को मुनि–निन्दक, सोनगढ़–पंथी एकान्तवादी घोषित करते हैं।

गणधराचार्य जी ने अपनी प्रिय शिष्या आर्यिका जी को (जो उन्हें पापा कहकर सम्बोधित करती हैं) गर्भपात होने पर भी बहुत अनुनय विनय के बावजूद, संघ से पृथक करना स्वीकार नहीं किया।

दूसरी अ. भा. दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद के विद्वान अध्यक्ष जी व उनकी परिषद से जुड़े सभी विद्वत्जनों के प्रबल विरोध (कदाचित् कागजी ही) से किंचित्मात्र भी विचलित हुए बिना बालाचार्यश्री पूर्व घोषणानुसार ही सागवाड़ा–योगीन्द्रगिरि की भट्टारकीय पीठ पर दिगम्बर मुनिवेश में ही अभिषिक्त हो गए। वस्तुतः इन महामुनियों की दृष्टि में विद्वानों तथा प्रबुद्ध श्रावकों की आलोचना व विरोध का महत्व कुत्तों के भौंकने से अधिक नहीं है, और –'कुत्ते भौंकते रहे, कारवां चलता गया।'

बालाचार्यजी के इस नवीन उपक्रम के पक्ष में भी कतिपय विद्वान एवं श्रेष्ठीजन खड़े हैं जिनका कहना है कि इसमें नया क्या है? भट्टारक परम्परा के प्रारम्भिक काल में भी तो भट्टारकगण दिगम्बर मुनि वेशधारी ही होते थे। श्रावकों के सम्मुख अवश्य इससे अब एक नई समस्या खड़ी हो गई है कि दिगम्बर जैन मुनि (साधु परमेष्ठी) तथा दिगम्बर मुनिवेशधारी भट्टारक स्वामी में किस प्रकार अन्तर करें। सन्त शिरोमणि आचार्यश्री विद्यासागर जी के अनुसार तो वर्तमान में भट्टारकों की गणना तो क्षुल्लकों में भी नहीं की जा सकती।

कुछ समय पूर्व शोधकर्ता विद्वान ने विद्वत्जनों में बिच्छु के गुण खोज निकाले थे। किसी विद्वान ने कल्पना की होगी कि बिच्छु व कुत्ता उसके पूज्य अग्रज हैं। इस विषय पर कदाचित् अभी भी और शोध खोज की सम्भावनाएं हैं।

✦✦✦

युग–पुरुष

श्रद्धेय श्री रमा कान्त जैन

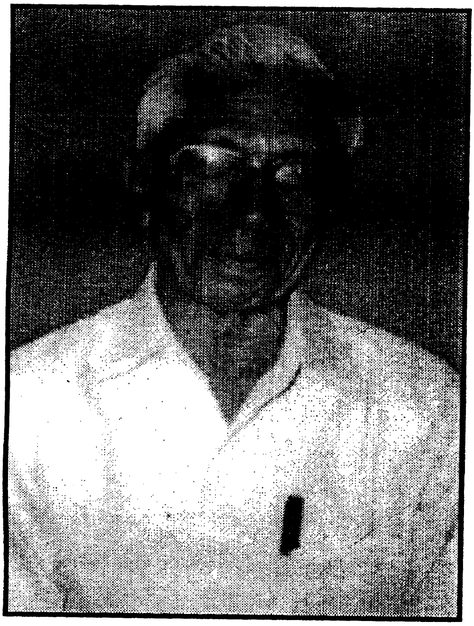

आगमन
10 फरवरी, 1936 ई.
मेरठ

महाप्रयाण
26 मई, 2009 ई.
लखनऊ

विषय सूची

⊗	1	गुरुगुण–कीर्तन : युग–पुरुष		पृ.
		श्री रमा कान्त जैन	श्री अंशु जैन 'अमर'	117–121
⊗	2	श्रद्धांजलि सभा	डॉ. अवधेश कुमार अग्रवाल	122–123
⊗	3	पत्रकारिता के कान्त : रमा कान्त	श्री सुरेश जैन 'सरल'	124–126
	4	गद्यकार रमा कान्त जैन	श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'	127–128
	5	संस्मरण	श्री मगनलाल जैन	129
	6	मेरे पूज्य पापा जी	सौ. सीमा जैन	130
	7	अतीत के झरोखे से	श्री कैलाश नारायण टण्डन	131–132
	8	एक विनोद प्रिय व्यक्तित्व	डॉ. परमानन्द जड़िया	133
	9	श्रद्धा सुमन	श्री लूणकरण नाहर जैन	133
	10	कृतित्व परिचय		134
	11	प्रकाशित कृतियां		134–135
☼	12	गिलास आधार भरा है	श्री रमा कान्त जैन	136–137
☼	13	सरस्वती वन्दना (पद्य)	,,	138
☼	14	लोक–कल्याण भावना (पद्य)	,,	138
☼	15	वीतराग के द्वार पर (पद्य)	,,	138
*	16	पिता श्री को अन्तिम नमन (पद्य)		139
•	17	गुस्ताख़ी माफ़		140–148

स्रोत : ⊗ शोधादर्श – 68

* शोधादर्श – 75

☼ गिलास आधा भरा है

• संतर्जन, 1–10 (2004–08)

गुरुगुण–कीर्तन : युग–पुरुष

श्री रमा कान्त जैन

मनसि वचसि काये पुण्य पीयूषपूर्णाः
त्रिभुवनमुपकार श्रेणिभिः प्रीणयंतः।
परगुण परमाणून पर्वतीकृत्य नित्यं
निज हृदि विकसंतः, सन्ति सन्तः कियंतः।।

प्रत्येक शुभ–कार्य से पूर्व अपने इष्ट–पूज्य–सन्तों का स्तवन–कीर्तन भारतीय संस्कृति की विशिष्टता रही है। फरवरी 1986 में आदरणीय बाबा जी इतिहास–मनीषी विद्यावारिधि डॉ. ज्योति प्रसाद जैन ने समाज में विद्यमान आवश्यकता के दृष्टिगत शोध के प्रतिमान स्थापित करने के उद्देश्य से जब **शोधादर्श** नामक चातुर्मासिक शोध–पत्रिका का श्रीगणेश किया तब उसमें वे सर्वप्रथम 'गुरुगुण–कीर्तन'' शीर्षक के अंतर्गत जैन–धर्म के अप्रतिम आचार्य–साधु–सन्त का स्मरण करते थे। जून 1988 में आदरणीय बाबा जी के स्वर्गवास के पश्चात् पूज्य पिता जी श्री रमा कान्त जैन ने **शोधादर्श** के सातवें अंक में सम्पादक–मण्डल से जुड़ने पर उसे विस्तार देते हुए विद्वत्गण का शोधपूर्ण आलेख सहित नमन–वन्दन की प्रशंसनीय परम्परा का सूत्रपात किया जिसका सुधी पाठकों ने तहे–दिल से स्वागत किया और आज यह **गुरुगुण–कीर्तन** स्तम्भ **शोधादर्श** की विशिष्ट पहचान के रूप में स्थापित हो चुका है।

शोधादर्श के उद्‌भव से विकास तक के दीर्घ तेईस वर्षों में निर्मित सड़सठ अंकों की भव्य इमारत के चार मुख्य स्तम्भ रहे हैं – आदरणीय बाबा जी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन व श्री अजित प्रसाद जैन, आदरणीय ताऊ जी डॉ. शशि कान्त जैन एवं पूज्य पिता जी श्री रमा कान्त जैन। **शोधादर्श** के आद्य–सम्पादक डॉ. ज्योति प्रसाद जैन जून 1988 (अंक–6) में तथा प्रधान सम्पादक श्री अजित प्रसाद जैन जून 2005 (अंक–56) में हमसे बिछुड़ गये। पत्रिका इन तीव्र आघातों के बावजूद डॉ. शशि कान्त व श्री रमा कान्त जैन भ्रातृ–द्वय की छत्र–छाया में संभली, संवरती निखरती व सफलतापूर्वक खिल–खिलाती चली गयी और आज **शोधादर्श** पत्रिका को विद्वत् जगत में एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है।

लेकिन विगत 26 मई 2009, दिन मंगलवार, को सायंकाल 5.35 बजे अंक सत्तावन से स्वतंत्र रूप से सम्पादन का दायित्व अग्रज के निर्देशन में संभाल रहे पूज्य पिता जी श्री रमा कान्त जैन को भी काल के क्रूर हाथों

ने अचानक एक ही झटके में बिना कोई अवसर प्रदान किये हमसे छीन लिया। वे स्वयं दो वर्ष उपरान्त पड़ने वाले वैयक्तिक जीवन के "अमृतोत्सव" तथा दाम्पत्य जीवन के "स्वर्णिमोत्सव" मनाने की तैयारी कर रहे थे। उनके असामयिक अवसान से हुयी अपूरणीय क्षति मात्र एक परिवार की नहीं वरन् सम्पूर्ण विद्वत् समाज की है। आज पूज्य पिता जी के देहावसान के पश्चात् निकलने वाले पहले अंक के लिये "गुरुगुण–कीर्तन" स्थायी स्तम्भ के लिये जब 'गुरु' के नाम पर विचार शुरू किया तो सहसा व अनायास ही मन–मस्तिष्क उस व्यक्ति की ओर ले गया, जो मेरे जनक व मित्र होने के साथ–साथ वास्तविक गुरु भी रहे। पूज्य पिता जी स्व. रमा कान्त जैन व्यक्ति के रूप में मेरे गुरु के रूप में स्थापित हो चुके थे। घर में जब कभी मेरी पुत्री कु. पलक मुझसे नाराज हो जाती थी तब पिता जी उससे यही कहते थे कि "बेटे हमने कभी भगवान को नहीं देखा, जो कुछ आज हम हैं वह हमें अपने माता–पिता से ही प्राप्त हुआ है, अतः वे ही हमारे भगवान समान हैं और हमेशा उसी तरह उनका आदर–सम्मान करना चाहिए।" निःसन्देह पूज्य पिता जी श्री रमा कान्त जैन अपने चरित्र, आचरण, व्यक्तित्व व कृतित्व के कारण किसी अन्य गुरु से निम्न न होकर गुरुतर ही हैं। इसीलिये इस विशेषांक का यह 'गुरुगुण–कीर्तन' पूज्य पिता जी को समर्पित है।

श्री रमा कान्त जैन का जन्म 10 फरवरी, 1936 ईस्वी, को मेरठ शहर के एक मध्यमवर्गीय धर्मनिष्ठ शुद्ध तेरहपंथ दिगम्बर जैन गोयल गोत्रीय अग्रवाल परिवार में डॉ. ज्योति प्रसाद जैन व श्रीमती अनन्तमाला जैन के कनिष्ठ पुत्र के रूप में हुआ था। पिता जी का कद लगभग 5 फीट 1 इंच, रंग सांवला तथा नाक खड़ी थी। प्रायः घर से बाहर वे पैंट–शर्ट–कोट तथा घर में सफेद पायजामा व बांहदार सफेद बनियान पहनते थे। खान–पान व रहन–सहन बहुत ही साधारण व संयमित था। इसीलिये उनका डील–डौल मैंने सदैव एक–सा इकहरे बदन का पाया। उन्होंने माध्यमिक शिक्षा डी.ए.वी. कालेज, लखनऊ, तथा बी.ए.परीक्षा वर्ष 1954 में लखनऊ विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की। उन्होंने राजकीय संस्कृत कालेज, बनारस, से 'प्रथमा' परीक्षा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, से "साहित्यरत्न" तथा दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास, से तमिल भाषा में "कोविद" की उपाधियां भी प्राप्त कीं। उनका विवाह 18 फरवरी 1961 को जसवन्तनगर जिला इटावा के सेठ नरेन्द्र भूषण जैन की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती आशा जैन के साथ सम्पन्न हुआ। उनकी तीन संतानें, दो पुत्र श्री सन्दीप कान्त जैन व अंशु जैन तथा एक पुत्री श्रीमती इन्दु कान्त जैन हैं। आप वर्ष 1954 में उ.प्र. सचिवालय, लखनऊ, में कार्यरत हो फरवरी 1994 में उप–सचिव,

उ.प्र. शासन, के उच्च पद से ससम्मान सेवा–निवृत्त हुए। शासन के विभिन्न विभागों व पदों पर सेवाकाल में आपकी छवि एक अत्यंत ईमानदार, परिश्रमी, कुशल एवं विनम्र अधिकारी की रही।

पूज्य पिता जी को अध्ययन–चिन्तन–मनन–लेखन का व्यसन विरासत में मिला था, किन्तु सेवा–निवृत्ति के पश्चात विशेष रूप से उनकी लेखनी की अविरल धारा जैन साहित्य, इतिहास, संस्कृति, कला, दर्शन एवं समसामयिक सामाजिक विषयों पर प्रवाहित हुयी। पिता जी का आजीवन लेखन–कार्य स्वान्तः सुखाय रहा। इसीलिये वे सामाजिक कार्यो एवं साहित्य साधना में अपना कायोत्सर्ग करने वाले महान व्यक्तियों एवं चतुर्दिक घटित सामाजिक घटनाओं को सूक्ष्म विलोकन कर गहन चिन्तनोपरान्त अत्यन्त सीधी, सरल व संयत भाषा–शैली में जन–सामान्य तक पहुंचाने का श्रम–साध्य व साहसी प्रयास करते रहे। उनका लेखन विशेषकर पद्यात्मक 'क्षणिकाएं' उनके सत्यान्वेषी होने तथा पिष्टपेषण–विरोधी होने की साक्षी हैं।

उन्होंने वर्ष 1979 में **"डॉ. ज्योति प्रसाद जैन कृतित्व परिचय"** का सम्पादन किया और उसी का पंचवर्षीय परिशिष्ट (1979–1984) का भी सम्पादन किया। वर्ष 1995 में **हिन्दी भारती के कुछ जैन साहित्यकार**, वर्ष 1999 में **गिलास आधा भरा है** व वर्ष 2008 में **दशलक्षण पर्व** का प्रणयन किया, तथा वर्ष 2002 में **युग–युग में जैनधर्म** का सफल सम्पादन किया। सर्वप्रथम अप्रैल 1955 में अंग्रेजी में दिल्ली से प्रकाशित The English Jaina Gazette में आपका "The Need of Religion" लेख तथा हिन्दी में 09 अप्रैल 1960 को **नवजीवन**, लखनऊ, में 'निगण्ठनातपुत्त – तीर्थंकर महावीर'' प्रकाशित हुए। 54 वर्ष की लेखन अवधि में **नवजीवन, अरण्य ज्योति, दैनिक जागरण, स्वतंत्र भारत, राष्ट्रीय सहारा, राष्ट्रीय स्वरूप, कुबेर टाइम्स, जनसत्ता एक्सप्रेस, प्रतिदिन, सरिता, मुक्ता, सरस्वती, उ.प्र. सचिवालय पुष्पांजलि, मानस चन्दन, सचेतक, सानुबन्ध, चेतना स्रोत, व्यापार संदेश, व्यापार मंथन, महावीर जयन्ती स्मारिका, वीर वाणी, अहिंसा वाणी, समनवय वाणी, तीर्थंकर, तित्थयर, वीर, धर्ममंगल, जैन संदेश, अहिंसा संदेश, जैन गजट, अध्यात्म–पर्व पत्रिका, जैन महिलादर्श, दिशाबोध, मुक्कुडै** (तमिल), **Jain Journal, Jaina Antiquary, Jina Manjari** (कनाडा), **जैन संदेश शोधांक, जैन सिद्धांत भास्कर, जैन विद्या, अनेकान्त, अर्हत वचन, प्राचीन तीर्थ जीर्णोद्धार, श्रुत–सवंर्धिनी, प्राकृत भारती, झरता करुणा स्रोत, जिनेन्दु, संतर्जन, बाल मित्र पत्रिका**, जैसी प्रतिष्ठित जैन व जैनेतर दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक

व त्रैमासिक पत्र–पत्रिकाओं में विभिन्न विषयों पर हिन्दी व अंग्रेजी भाषा में शताधिक साहित्यिक, सामाजिक एवं शोधपूर्ण लेख, निबन्ध एवं रचनाएं सतत प्रकाशित होती रहीं।

वे शोधपूर्ण गम्भीर गद्य लेखन के साथ–साथ पद्य लेखन में भी प्रवीण थे। लगभग प्रत्येक सप्ताह लखनऊ शहर की अनेक संस्थाओं द्वारा आयोजित काव्य गोष्ठियों में सामयिक विषयों पर चुटीली व्यंग्यात्मक "क्षणिकाओं" के माध्यम से समाज को आईना दिखाते थे। जन्म–दिन, शादी की वर्षगांठ, पुण्य–तिथि, पर्वादि अवसरों पर उनकी आशु कविताएं एक अलग समा बांधती थी। उन्होंने अनेकानेक शब्दों की परिभाषाएं अत्यंत सुन्दरता के साथ गढ़ीं जो लोगों को हंसाने के साथ–साथ हमें सोचने पर मजबूर कर देती हैं। पिता जी की दो पद्यात्मक कृतियां प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं : (1) **गुस्ताख़ी माफ़** (व्यंग्यात्मक क्षणिकाएं), और (2) **भावना लहरी** (अन्य पद्यात्मक रचनाएं)।

पूज्य पिता जी अनेक संस्थाओं से भी सक्रिय रूप से जुड़े थे। वे तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., के महामंत्री, **शोधादर्श** के प्रधान सम्पादक, जैन धर्म प्रवर्द्धिनी सभा लखनऊ के उपाध्यक्ष, जैन मिलन लखनऊ के भूतपूर्व उपाध्यक्ष, ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट लखनऊ के सचिव और अनन्त–ज्योति विद्यापीठ लखनऊ के कोषाध्यक्ष तथा भुशुण्डि साहित्य संस्थान लखनऊ के परमार्शदाता भी रहे।

श्री रमा कान्त जैन ने जैन विषयों पर आयोजित विभिन्न संगोष्ठियों में भाग लिया। दिनांक 26 अक्टूबर 1975 को लखनऊ में आयोजित "भारतीय संस्कृति में जैन विचारधारा" संगोष्ठी में शोध पत्र "दक्षिण भारतीय भाषाओं में जैन साहित्य"; दिनांक 07 नवम्बर 1978 को विश्व जिज्ञासा क्लब लखनऊ में "इतिहास और शोध"; दिनांक 21 अप्रैल 1997 को जैन विद्या शोध संस्थान लखनऊ की "जैन विद्या के विविध आयाम" संगोष्ठी में "भारत के इतिहास के पुनर्निर्माण में जैन सामग्री के उपयोग की आवश्यकता" का आपने वाचन किया। आकाशवाणी लखनऊ केन्द्र से "परमात्मा महावीर" तथा "पर्वत शिखर पर निर्मित विशालकाय मूर्ति गोम्मटेश्वर बाहुबली" शीर्षक से आपकी वार्ताएं भी प्रसारित हुयीं।

पूज्य पिता जी को वर्ष 1988 में दिगम्बर जैन महासमिति, नई दिल्ली, ने आजीवन सदस्यता; 2001 में तुलसी स्मारक समिति, लखनऊ, ने पं0 बनारसीदास चतुर्वेदी स्मृति चिह्न; वर्ष 2003 में अमेरिकन बॉयोग्राफिकल इंस्टीट्यूट यू0एस0एस0 ने Man of the Year-2003, वर्ष 2004 में उक्त इंस्टीट्यूट ने अपने Research Board of Advisors में Honorary Appointment तथा मार्च 2009 में जैन मिलन लखनऊ द्वारा सम्मान–पत्र

प्रदान किया गया। वर्ष 2006 में हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर, ने **हिन्दी साहित्यकार सन्दर्भ कोष भाग–2** में सिद्ध–प्रसिद्ध साहित्यकार के रूप में स्थान देते हुए आपको बहुमान प्रदान किया। 30 अप्रैल 2009 को अखिल भारतीय साहित्य संगम, उदयपुर, ने **"सम्पादक सरताज"** उपाधि से विभूषित कर उनके उल्लेखनीय लेखन व सामाजिक कार्यों को सम्मानित किया।

किन्तु, पिता जी में अहंकार और पूर्वाग्रह रंच मात्र भी न था। वे अपने से कनिष्ठ के समक्ष भी अत्यंत विनम्र भाव से अपनी त्रुटियों को स्वीकार कर लेते थे। अपने से बड़ों के साथ–साथ वे छोटों का भी समान रूप से आदर–सम्मान करते थे। "आत्मनः प्रतिकूलानि परेषाम् न समाचरेत" उनके आचरण का मूल आधार था। उनके सफल जीवन का मूल मंत्र "आत्म–संतुष्टि" था। यद्यपि पिता जी के 73 बसंत सुख–दुःख दोनों के साक्षी रहे किन्तु उनका आशावादी दृष्टिकोण सतत प्रगतिपथ पर उन्हें अग्रसरित करता रहा। उनकी कृति **"गिलास आधा भरा है"** उनकी इसी सोच को इंगित करती है। इसीलिए कविवर पुष्पेन्दु के सम्बन्ध में पिता जी द्वारा व्यक्त भावांजलि आज उन्ही पर बिल्कुल सटीक बैठती है –

कांटों में जलता रहा, पुष्प फिर भी खिलता रहा।
दुःख मान सम्पत्ति अपनी, स्वयं पीड़ा पीता रहा।।1।।
अश्रु छलक जाये न कहीं, मन्दस्मित लिए जीता रहा।
आंधी–तूफान आये बहुत, संघर्ष अविकल बढ़ता रहा।।2।।
पतझर बहुत देखे उसने, बसंत बहार में आभा देता रहा।
वरदान पा कंठहार बना, इन्दु सी धवलकीर्ति लेता रहा।।3।।

पूज्य पिता जी का कृतित्व **शोधादर्श** सहित साहित्य जगत में कभी परिचय का मोहताज नहीं है। प्रेरणादायी प्रशंसा पत्रों के रूप में प्राप्त पाठकों की प्रतिक्रियाएं पिता जी के महान कृतित्व को स्वतः व्यक्त करती हैं। विनम्र व्यक्तित्व, निर्भीक कृतित्व एवं सरल अभिव्यक्ति–शैली ने देहावसान के बावजूद उन्हें अमर बना दिया है। निर्वाण/श्राद्ध–पर्व दीपावली के पावन पर्व पर ऐसे महान गुरु के गुणों का कीर्तन कर ज्येति–निकुंज व **शोधादर्श** परिवार के साथ–साथ सम्पूर्ण विद्वत् जगत की ओर से मैं पूज्य पिताजी को श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं। निःसंदेह उनकी आत्मा को शान्ति प्राप्त हो –

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्गमो निरहंकारः स शान्तिमधि गच्छति।। **(गीता**–2.71)

✦✦✦ **– अंशु जैन 'अमर'**

श्रद्धांजलि सभा

दिनांक 29 मई, 2009 ई., को चारबाग, लखनऊ में ज्योति निकुंज के प्रांगण में श्री रमा कान्त जैन की स्मृति में श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया। रमा कान्त जी के चित्र पर माल्यार्पण के उपरान्त परिवार के सदस्यों द्वारा मंगल पाठ किया गया। मंगल पाठ के अन्तर्गत वन्दना, **णमोकर मंत्र, पार्श्वनाथ स्तोत्र, वीतराग स्वरूपं, जय महावीर नमो** और **शांति पाठ** का सस्वर सामूहिक पाठ किया गया।

डॉ. शशि कान्त जैन ने अनुज रमा कान्त के प्रति भाव विगलित स्मरणांजलि प्रस्तुत की। उन्होंने बताया कि रमा कान्त के न रहने से अब उनका व्यक्तित्व एक प्रकार से अधूरा रह गया है। उनके लिए रमा कान्त भाई से अधिक मित्र व बौद्धिक एवं सामाजिक कार्यक्रमों में सहयोगी रहे थे।

डॉ. सौ. अलका अग्रवाल ने अपने चाचा जी श्री रमा कान्त जैन के जीवन और कृतित्व पर प्रकाश डाला और उनके प्रति अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि वह एक कुशल पत्रकार, गम्भीर विद्वान और रोचक साहित्य के प्रणेता थे। जैन धर्म, संस्कृति और इतिहास के वह गम्भीर अध्येता थे। उनका प्रयास यह रहता था कि जैन धर्म, संस्कृति एवं समाज की उज्ज्वल छवि प्रस्तुत की जाये तथा यथासंभव विवादग्रस्त मुद्दों से बचते हुए आम्नाय और सम्प्रदाय निरपेक्ष तथा तथ्य–सापेक्ष प्रस्तुतिकरण किया जाये। प्रत्युत्तपन्नमति आशु कवि के रूप में उनकी प्रतिष्ठा थी और सामाजिक एवं राष्ट्रीय परिदृश्य पर सटीक व्यंग्य उनकी साहित्यिक विधा की विशेषता थी।

सौ. इन्दु कान्त जैन ने अपने पापा के सहज संतोषी और उदारमना स्वभाव का स्मरण करते हुए मार्मिक प्रसंगों का उल्लेख किया। उनकी शिक्षा थी कि संयम और संतोष से बड़ा धन इस संसार में दूसरा नहीं है, संतोषी व्यक्ति को कोई भी परिस्थिति विचलित नहीं कर सकती।

डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त' ने अपने वेदनापूर्ण हृदयोद्‌गार कविता के रूप में व्यक्त करते हुए कहा –

परम मित्र बनकर जीवन में रहे हमारे,
प्रियतम से भी प्रियवर बनकर रहे हमारे।
कालचक्र ने कैसा दुष्कर्म किया यह
मेरे किस अपराध कर्म का दण्ड दिया यह।।

श्री नरेश चन्द्र जैन ने विगत 53 वर्षो के अपने स्नेहपूर्ण सम्बन्धों का स्मरण करते हुये अपनी मार्मिक भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

श्री लूणकरण नाहर जैन, अध्यक्ष, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, ने अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा –

यों तो दुनिया में सदा रहने को आता नहीं कोई,
जैसी खुशबू फैलाकर आप गये, वैसे जाता कोई–कोई।

श्री विनय कुमार जैन, अध्यक्ष, श्री जैन प्रवर्द्धनी सभा, लखनऊ, ने अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि श्री रमा कान्त जी धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में बढ़–चढ़ कर भाग लेते थे, उनके निधन से लखनऊ जैन समाज की अपूरणीय क्षति हुई है।

श्री कृष्ण कुमार जैन, अध्यक्ष, श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन सभा, लखनऊ, ने अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि श्री रमा कान्त श्री महावीर जैन साधना केन्द्र, पटेल नगर, के धार्मिक कार्यक्रमों में भाग लिया करते थे।

साहित्यकार **श्री अजित कुमार वर्मा** ने अपनी अश्रुपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा – सम्पादक **शोधादर्श** के रमा कान्त जी जैन।

कीर्ति, स्मृतिशेष है, अश्रुपूरित निज नैन।।
साहित्यकार समीक्षक रमा कान्त जी जैन।
सरल, शांत स्वभाव के मधु आवेष्ठित बैन।।

श्री विष्णु दत्त शर्मा ने यह भाव व्यक्त किया कि रमा कान्त जी का सम्पादकीय लेखन तथा विविध साहित्य संस्थाओं में उनकी उपस्थिति हमें याद दिलाती रहेगी कि हिन्दी जगत ने एक ऐसा हीरा खो दिया है जिससे हिन्दी साहित्य को बहुत कुछ मिलने की आशा थी। हिन्दी साहित्य के प्रति की गई सेवाओं का मूल्यांकन करते हुए उन पर शोध किया जाना अपेक्षित है।

बेबी पलक ने अपने बाबा जी की शांत, सौम्य और सरल छवि को भावावेशपूर्ण स्वरों में स्मरण किया।

श्री नवीन जैन (मंत्री, जैन मिलन, लखनऊ), **श्री भरतेश जैन** (सहारनपुर), **श्री सुमत प्रसाद जैन** (अध्यक्ष, जैन समाज, हरदोई); **श्रीमती त्रिशला जैन, श्री परवेश जैन, श्री विशाल जैन, श्री हंसराज जैन** और **श्री भगवान भरोसे जैन** ने रमा कान्त जी के प्रति अपने भावपूर्ण संस्मरण और उद्‌गार व्यक्त किये।

सभा में परिवारजनों और जैन समाज के सभी आम्नायों के सदस्यों तथा संस्थाओं के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त रमा कान्त जी के सचिवालय सेवा के साथी तथा लखनऊ की साहित्यिक संस्थाओं के सदस्य भारी संख्या में उपस्थित थे।

विभिन्न संस्थाओं यथा तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, श्री जैन धर्म प्रवर्द्धनी सभा, जैन मिलन; श्री वधर्ममान स्थानकवासी जैन सभा, All India Primary Education Welfare Society, मधुलिका साहित्य परिषद तथा भुषुण्डि साहित्य संस्थान, के द्वारा पारित शोक प्रस्तावों का वाचन भी किया गया।

अंत में, सभा के आयोजक डॉ. अवधेश कुमार अग्रवाल (नेहरू डिग्री कॉलेज, ललितपुर) ने अपने चाचा जी श्री रमा कान्त जैन के प्रति स्नेहपूर्ण आत्मीय सम्बन्धों का स्मरण करते हुए उनके प्रति अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

– डॉ. अवधेश कुमार अग्रवाल

पत्रकारिता के कान्त : रमा कान्त

– श्री सुरेश जैन 'सरल'

जब भी पत्रकारों–सम्पादकों की चर्चा चलती है तो पिछले पांच दशकों तक दृष्टि चली जाती है जहां देश के बीस महान नाम शोभा पा रहे हैं; उनमें से तीन नाम **शोधादर्श** में गत 23 वर्षो से चमक रहे हैं। पत्रिका के आद्य सम्पादक स्व. श्रीमान डॉ. ज्योति प्रसाद जी के पश्चात् सन् 96 से उनके कार्य को व्रत की तरह अपनाने वाले स्व. श्रीमान् अजित प्रसाद जी पाठकों के समक्ष आये थे, फिर उनके बाद (2005 में) आये स्व. श्रीमान रमा कान्त जी। उनके कार्य–सम्पादन की शैली और पत्रकारोचित–समझ उनके व्यक्तित्व के आभूषण बन गये। कभी भी, कोई विद्वान–पाठक यह नहीं कह सका कि प्रथम दो सम्पादकों के न रहने से **शोधादर्श** के वजन और व्यक्तित्व में (कलेवर में) कोई कमी आई है। वे हर एंगिल (दृष्टिकोण) से पत्रिका को सजाने–संवारने और पूर्णरूपेण बौद्धिक बनाये रखने की प्रज्ञा रखते थे। यह पृथक बात है कि वे अकेले नहीं थे, उन्हें सलाह और साहस देने–दिलाने के लिये श्रीमान डॉ. शशि कान्त जी का प्रबल–सम्बल सदा रहता था।

आज जब वे हमारे मध्य नहीं हैं तब श्री रमा कान्त जी के गुण और क्षमताएं हमारे समक्ष धूम मचाए हुए हैं। मैं उनके पिछले कुछ वर्षो की चर्चा यहां कर रहा हूं। जिन पाठकों ने उनके **सम्पादकीय** पढ़े हैं; वे स्वीकारेंगे कि रमा कान्त जी सीधी, सरल भाषा में, कठिन यथार्थ को परिभाषा पहनाकर अपना विरोध (सही में दृष्टिकोण) दर्ज कराते थे। उनकी कहन कठोर न होकर, पैनी होती थी और पाठक को तुरंत विचार करने को विवश करती थी।

सम्पादकीयों के बाद, उनके द्वारा दी जा रही **'गुरुगुण–कीर्तन'** की श्रृंखला विशेष महत्व स्थापित कर चुकी थी, हर सुधी पाठक समय निकाल कर पढ़ता था और धन्यवाद ज्ञापित करने से नहीं चूकता था। फिर बारी आती है उनके द्वारा लिखे जाने वाले गद्यागद्य व्यंग्य काव्य की। अक्सर **'क्षणिका'** के रूप में वे एक बड़े लेख का सारतत्व पाठकों को पिला देते थे। कभी–कभी व्यंग्य इतना नोकदार हो जाता था कि सम्बन्धित व्यक्ति (पात्र) बंद कमरे में अपने हाथों से अपने बाल नोच लेने का मन बना लेता था।

उनके निबन्ध–लेखन पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि वे कामचलाऊ लीक पर नहीं चलते थे; अपनी शैली का एक प्रशस्त 'ट्रैक' बना चुके थे, फलतः पाठकगण लेखों को आद्योपान्त पढ़कर ही पत्रिका छोड़ते

थे। उनके सम्पादन और पत्रकारिता की चर्चा में यह कहना समीचीन है कि जब उनके कार्यालय में कोई पुस्तक–ग्रंथ समीक्षार्थ पहुंचता था तो वे ग्रंथ की मोटाई या लेखक का परिचित होना नहीं देखते थे; वे देखते थे ग्रंथ का हार्द और फिर अपनी निष्पक्ष लेखनी से योग्य–चर्चा कर देते थे। जिन पाठकों ने **शोधादर्श** का **'साहित्य सत्कार'** स्तम्भ ध्यान से पढ़ने की आदत बनाई थी, वे मेरे कथन को अपने चिन्तन के समीप पायेंगे।

इसी तरह **'समाचार विविधा'** में प्राप्त समाचारों का एक्स–रे कर लेने के बाद ही वे उसे पत्रिका रूपी टेबल पर लिटाते थे। हर समाचार को अपनी भाषा का रंग प्रदान करने में उन्हें अतिरिक्त श्रम करना पड़ता था, पर वे उसे सहज ही न छोड़ते थे, न प्रकाशित करते थे, कहें – छान कर ही देते थे। ऐसा ही कुछ दृष्टिकोण **'अभिनन्दन'** स्तम्भ के लिये था; सम्मान, अभिनन्दन, आदर, पुरस्कार के आधार पर व्यक्ति के लिए भाषा नहीं देते थे; 'समग्र' पर समता भाव बनाकर समाचार–लेखन करते थे।

'पाठकों के पत्र' छापते समय, नैतिक दायित्व मानते हुए उन्हें कम–बढ़ नहीं करते थे, न भाषा को तोड़–मरोड़ कर कोई नई–दिशा देने का प्रयास करते थे; ज्यों के त्यों छापते थे। परन्तु छापते समय इतने निस्पृह हो जाते थे कि अपनी और डॉ. शशि कान्त जी की लेखनी के सराहना वाले पत्रों की संख्या में कटौती कर लेते थे; आये हैं पांच, छप रहे हैं एक। ऐसे प्रिय और प्रभावी सम्पादक को खोकर समाज दुखी है। अपना दुख कुछ समय के लिए भूल जाने के लिए, उन पत्रों पर ध्यान ले जा रहे हैं जो विभिन्न विद्वानों द्वारा पत्रिका या सम्पादक के सम्मान में लिखे गये हैं – 1. पत्रिका के लेख पढ़कर अति प्रसन्नता हुई। 2. अंक शोधपूर्ण सामग्री से समन्वित है। 3. पत्रिका में यथार्थवादी दृष्टिकोण देखने को मिलता है। 4. देश विदेश की संस्कृति, साहित्य, कला, दर्शन, ज्ञान आदि विषयों की झलक दिखाने में यह पत्रिका दर्पणवत् है। 5. सम्पादक जी द्वारा प्रश्नों का समाधान टिप्पणियों के साथ दिया जाना समय–सापेक्ष–सत्य के दर्शन कराता है। 6. स्तरीय और अत्युपादेय पत्रिका को आमूलचूल पढ़कर आनंदानुभूति और ज्ञानवर्धन होता है। 7. आपके सामयिक किन्तु सुविचारित सम्पादकीय पठनीय रहते हैं। 8. पत्रिका शोधार्थियों के लिये विशेष रूप से उपयोगी है। 9. आपका 'सम्पादकीय' सामाजिक उत्थान का उज्जवल पक्ष दर्शाता है। 10. शोध का उच्च मानदण्ड स्थापित करने में पत्रिका पूर्णतः सक्षम है। 11. यह मात्र पत्रिका नहीं है, गवेषणात्मक दृष्टि प्रदायक श्रेष्ठ

दस्तावेज है। इसके माध्यम से हम अपने अतीत के गौरव और सिद्धांतों का छायांकन प्राप्त करते हैं। 12. खोजपरक दृष्टि के धनी सम्पादकजी पत्रिका साधुवाद के पात्र हैं। 13. यह एक सार्थक और संग्रहणीय पत्रिका है। 14. **'शोधादर्श'** गरिमामय, सुधारपरक और शोधात्मक है। 15. सम्पादकीय प्रेरक और दिशाबोधक है। 16. यह पत्रिका जनकल्याण और जीवन विकास के सूत्र लेकर आती है। 17. महत्वपूर्ण लेख और प्रामाणिक जानकारी सूचना के लिए **'शोधादर्श'** आदर्श है। 18. पुस्तकों की संक्षिप्त–समीक्षाएं रहती है, फिर भी उनके अवलोकन की ललक पाठकों को रहती है।

ये 18 पत्रांश 1800 पत्रों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, सच इन्हें पढ़ लेने मात्र से लोग, श्री रमा कान्त जी के जीवन और कार्यक्षेत्र को आर–पार देख सकते हैं। वे सरलता की प्रतिमूर्ति थे, सौम्यता के मानस्तंभ और सहृदयता के सागर। उनके अवसान से पत्रकारिता के क्षेत्र में जो सूनापन आया है उसकी भरपाई कठिन है। वे एक में चार थे – अच्छे सम्पादक, अच्छे लेखक, अच्छे शोधोन्मुख–विद्वान और अच्छे समीक्षक। जिन्होंने उनकी सुसंगति प्राप्त की है वे बतलाते हैं कि सटीक व्यंग्यता के साथ–साथ वे अच्छे आशुकवि भी थे। उनके कर–कमलों से चार दशक तक इतिहास, जैन धर्म और जैन संस्कृति की सेवा हुई है। धरती पर मात्र 73 वर्ष और तीन माह रहे हैं पर सारे देश को अपना स्थायी अवदान देकर गये हैं; 10 फरवरी 1936 को जन्म लेने वाले रमा कान्त जी 26 मई 2009 को अलौकिक–क्षेत्र की ओर प्रयाण कर गये। उनकी निर्दोष–आत्मा को सद्गति मिलेगी, इसी भावना के साथ।

सरल कुटी, 405, गढ़ा फाटक, जबलपुर

गद्यकार रमा कान्त जैन

– श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'

'शोधादर्श अंक 84 का सम्पादकीय पढ़कर ज्ञात हुआ कि पत्रिका अपने स्मृति–शेष पूर्व सम्पादकों डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, श्री अजित प्रसाद जैन व श्री रमा कान्त जैन की पुण्य स्मृति में 'युग–पुरुष त्रयी' शीर्षक से एक स्मृति–ग्रन्थ प्रकाशित करने जा रही है। दिवंगत साहित्यकारों की स्मृति में अंक या ग्रन्थ प्रकाशित करना उनकी आत्मा के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है।

मेरी रचनायें नवम्बर 2001 से **शोधादर्श** में प्रकाशित हो रही है। इस लम्बी समयावधि में साक्षात्कार व रचनाओं के माध्यम से इस 'युग–पुरुष त्रयी' को जानने व सम़झने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। वैसे मेरे कई लेख **शोधादर्श** में प्रकाशित हुए जिनमें एक लेख था 'लखनऊ के जैन साहित्यकार' जिसमें इस 'युग–पुरुष त्रयी' के सभी सदस्यों पर प्रकाश डाला गया था।

वास्तविकता के धरातल पर सत्य यह है कि जितनी घनिष्ठता डॉ. शशि कान्त जी व रमा कान्त जैन इन दोनों भाइयों से बढ़ी उतनी संस्थापक सम्पादक डॉ. ज्योति प्रसाद जैन व श्री अजित प्रसाद जैन से नहीं हो सकी क्योंकि इन दोनों महान विभूतियों के दर्शन करने का सौभाग्य इस 'अबोध' को नहीं हो सका।

सत्य तो यह है कि जिस व्यक्ति के जीवन में अनेक बार भेंट हो चुकी होती है उसकी स्मृतियां मनस्पटल में स्थायी निवास बना लेती हैं। यही बात रमा कान्त जी के विषय में भी लागू होती है क्योंकि उनसे अनेकानेक बार उनके आवास व मेरे निवास पर भेंट हुई, अतः उनकी याद भी प्रायः आया करती है और उनके निधनोपरान्त एक लेख 'व्यंग्यकार कवि रमा कान्त जैन' शीर्षक से लिखा था जो **शोधादर्श 75** (मार्च–जुलाई 2012) में छपा था। उक्त लेख में रमा कान्त जी के कवि रूप पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया था। आज मैं उनके गद्य लेखन व कथा सार रूप पर प्रकाश डालना चाहूंगा।

रमा कान्त जी की पुस्तक वर्ष 1998 ई. में ज्ञानदीप प्रकाशन लखनऊ के माध्यम से प्रकाशित हुई थी, नाम था **'गिलास आधा भरा है'**। यह पुस्तक उनके सोलह निबन्धों का संग्रह है, जो उन्होंने मुझे 15–5–2003 को समीक्षार्थ भेंट की थी।

निबन्ध लेखन की कई शैलियां हैं। रमा कान्त जी अनेक शैलियों में पारंगत थे। **'गिलास आधा भरा है'** की समीक्षा करते हुये मैंने उक्त निबन्धों की शैलियों पर प्रकाश डालने की चेष्टा की थी। रमा कान्त जी मूलतः व्यंग्यकार थे, चाहे उनकी गद्य रचनायें हो अथवा पद्य।

'गिलास आधा भरा है' में क्रम संख्या 13 पर निबन्ध है 'अति तत्काल'। इसमें कई चुटीले व्यंग्य हैं। किन्तु यह धारणा बना लेना कि रमा कान्त जी केवल

व्यंग्यकार ही थे भ्रामक होगी। 'वनराज की बीमारी', 'सच्चा इंसान', 'शिक्षा का मर्म सावधानी', 'बहाव', इत्यादि वर्णनात्मक शैली में हैं जिनमें उनका कथाकार रूप उभर कर सामने आया है। 'बहाव' लेख में छोटी–छोटी कथायें हैं। 'अनेकान्तवाद व्यावहारिक जीवन में' लेख में वह पूर्ण दार्शनिक दिखाई पड़ते हैं। 'बात का प्रभाव' लेख एक कथा पर आधारित होते हुए भी अपने अन्तर में एक उच्च शिक्षा संजोये हुए है।

रमा कान्त जैन जी गुरुगुण–कीर्तन शीर्षक से **शोधादर्श** में लेख लिखते रहे जो समीक्षात्मक–गवेषणात्मक शैली में रहे। 'गुरुगुण–कीर्तन शीर्षक से उनके लेख अतीव लोक प्रिय रहे। यह बात मैं ही नहीं अपितु **शोधादर्श** के अनेक विद्वान पाठकों ने भी मानी है। उदाहरण स्वरूप कुछ विद्वानों के पत्र जो **शोधादर्श** में प्रकाशित हुए यहां प्रस्तुत किये जा रहे हैं – श्री मोती लाल जैन 'विजय', कटनी, **शोधादर्श 65** (जुलाई 2008) में लिखते हैं – 'गुरुगुण–कीर्तन में डॉ. हीरालाल, डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये और डॉ. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य के अवदान की चर्चा श्री रमा कान्त जैन ने सुविस्तृत ढंग से की है।'

श्री महावीर प्रसाद जैन सर्राफ, दिल्ली, **शोधादर्श अंक 57** में लिखते हैं –'गुरुगुण–कीर्तन में भाई रमा कान्त जी के द्वारा महारथी पुरुष 'महात्मा भगवान दीन' का जीवन दर्शाया गया है। उनसे मेरा परिचय 50 वर्ष पूर्व दिल्ली में रहा। वे मेरे पड़ोस में अपने भांजे जैनेन्द्र कुमार जी से मिलने आते थे।'

डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त', लखनऊ, **शोधादर्श अंक 55** (मार्च 2005) में लिखते हैं – 'गुरुगुण–कीर्तन हित चुना रमा कान्त ने नाम।
गोपाल दास के चरित पर डाला विशद प्रकाश।'

रमा कान्त जी ने 25 जून 2005 को अजित प्रसाद जी की मृत्योपरान्त **शोधादर्श** के सम्पादन का भार अपने कन्धों पर लिया जिसे 26 मई 2009 को परलोक गमन से पूर्व तक बखूबी निभाया। इस समयावधि में उन्होंने अनेक अच्छे और समाजोपयोगी सम्पादकीय भी लिखे। उनका एक सम्पादकीय **शोधादर्श 67** (मार्च 2009) में प्रकाशित हुआ 'जैन पुस्तकों और पत्र–पत्रिकाओं के आवरण पृष्ठ' शीर्षक से। रमा कान्त जी ने अपने जीवन काल में अनेक देश भक्ति पूर्ण राष्ट्रीय भावना पर आधारित लेख भी लिखे। उनमें से एक लेख **शोधादर्श 84** (दिसम्बर 2016) में 'पन्द्रह अगस्त' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है।

रमा कान्त जैन गद्य व पद्य दोनों ही विधाओं के रचनाकार थे। **गिलास आधार भरा है** के कई लेखों का श्री गणेश कविता से हुआ है, जैसे 'गिलास आधा भरा है', 'सच्चा इन्सान', 'सुख का उपाय', 'परस्पर व्यवहार' इत्यादि। खेद है यह बहुमुखी प्रतिभा का धनी आज हमारे मध्य नहीं है पर वह अपने साहित्य के माध्यम से युगो–युगों तक अमर रहेंगे।

संस्मरण

— श्री मगनलाल जैन

रमा कान्त जी का मेरा परिचय थोड़ा बहुत वर्ष 1969 से जैन मिलन के माध्यम से था। वे डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के कनिष्ठ पुत्र थे। उनकी ससुराल जसवन्तनगर थी। अतः उनके साढ़ू जयन्तीशरण, स्वराज चन्द जैन तथा डालीगंज के स्व. के.सी.जैन जो जियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया में थे, से भी इनकी वजह से मेरी मित्रता थी।

डॉ. ज्योति प्रसाद जैन बहुत दिनों तक चारबाग से स्वर्गीय अजित प्रसाद जैन 'बब्बे जी' के घर चौक सायंकाल शास्त्र प्रवचन करने आया करते थे। मैं उस समय काश्मीरी मोहल्ले में रहता था। अतः मैं भी शास्त्र प्रवचन में जाया करता था।

जब बब्बे जी के चौक स्थित घर में डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का आना बन्द हुआ तब मैं प्रत्येक शनिवार को सायंकाल, चारबाग स्थित उनके निवास स्थान पर शास्त्र प्रवचन सुनने जाने लगा, क्योंकि मेरा कार्यालय, प्राविधिक शिक्षा परिषद, बासमंडी चौराहे पर था। डॉ. शशि कान्त और रमा कान्त दोनों राम लक्ष्मण रूपी भाई भी सचिवालय से सायंकाल घर आकर शास्त्र सभा में सम्मिलित होते थे।

रमा कान्त के दोनों पुत्र सन्दीप कान्त जैन एवं अंशु जैन बहुत ही अच्छे और संस्कारित हैं। वे मेरी बहुत इज्जत करते हैं।

मेरी और रमा कान्त की मित्रता इतनी प्रगाढ़ हो गयी कि मैंने अपने परिषद कार्यालय के कुछ कार्यो का उत्तरदायित्व सौंप कर उनकी सेवाएं ली थीं। वे सचिवालय से उप सचिव के पद से सेवानिवृत्त हुए थे। उनका इस संसार से इतनी जल्दी चले जाना, असहनीय हो गया।

मैं जब 1993 में सेवा–निवृत्त हो गया था, तो मुझे एक बार उनकी बहुत याद आई। मैं उनके निवास स्थान चारबाग में मिलने गया था। हम लोगों ने मिलकर इतनी आत्मीयता से बातें की कि उसका कोई जवाब नहीं है।

डॉ. ज्योति प्रसाद जैन से तो मैंने जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों को सीखा। प्रायः मैं अपने दफ्तर से दोपहर लंच के समय में उनके निवास स्थान 'ज्योति निकुंज', चारबाग, जाकर धर्म लाभ लिया करता था।

डॉ. शशि कान्त से स्नेही प्रेम है। हम लोग आपस में दूरभाष से अक्सर क्षेमकुशल की बात किया करते हैं, वे मेरे बड़े भाई के समान है। मेरी पुत्र–वधू आशा जैन के अस्वस्थ रहने पर वे अक्सर फोन से हाल–चाल पूछा करते रहे हैं और 8 सितम्बर 2016 को उसके देहान्त पर उन्होंने संवेदना प्रकट की थी।

4/153, विशेष खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ–226019

मेरे पूज्य पापा जी

आज पापा जी हमारे मध्य नहीं हैं। परन्तु मुझे याद है सन् 1989 में विवाहोपरांत 'ज्योति निकुंज' प्रांगण में जब मेरा पदार्पण हुआ तो सरल–से परन्तु अद्भुत व्यक्तित्व के स्वामी पिता के रूप में उनसे मेरा परिचय हुआ।

मेरे अपने पिता का निधन मेरे बाल्यकाल में ही हो गया था, शायद इसी कारण मेरे ससुर अर्थात् पापा जी ने मुझे सदैव पिता का स्नेह दिया। उनका स्मरण करते हुए और उनका पिता के रूप में प्रदत्त वह सरल स्नेह याद करके आज भी मेरे नेत्रों से अश्रु छलक आते हैं। भावों के आवेग से कंठ अवरुद्ध हो जाता है।

इस परिवार पर धन–यश और विशेष कर सरस्वती मां की विशेष अनुकम्पा रही है और शायद यही कारण है या मेरा सौभाग्य है कि इस परिवार से जुड़ने पर मेरा भी ज्ञान वर्धन हुआ, जिसमें मेरे पूज्य पिता जी का भी भरपूर योगदान रहा। उन्होंने हमेशा मुझे आगे पढ़ने, कुछ–न–कुछ लिखने और परिवार में होने वाले अनेक अवसरों पर किसी–न–किसी विषय को देकर बोलने के लिए प्रेरित किया।

वह एक कुशल सम्पादक पत्रकार व एक निर्भीक आशुकवि थे, समाज में व्याप्त कुरीतियों को उन्होंने अपनी क्षणिकाओं के माध्यम से उजागर किया। स्वभाव से वे सरल, सहृदय और सौम्य होते हुए भी यह उनके व्यक्तित्व का एक अनोखा पहलू था कि पत्रकारिता में अनायास उनकी लेखनी बहुत निर्भीक हो जाया करती थी। पापा जी को कवि गोष्ठियों में जाना, क्षणिकाएं व छंद लिखना बहुत अच्छा लगता था। उनके द्वारा लिखे छंद व्यंग्यात्मक और मर्मस्पर्शी होते थे, जो समाज में फैली कुरीतियों पर सीधे चोट करते थे।

मुझे गर्व है कि उनके सम्पर्क में रहकर बहुत कुछ सीखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ।

आज भले ही वह हमारे बीच नहीं है, परन्तु उनकी यादें दिल में निहित हैं।

उनकी पुनीत स्मृति को मेरा कोटिशः नमन!

— सौ. सीमा जैन

अतीत के झरोखों से

– श्री कैलाश नारायण टण्डन

आज भी न भुलाए जाने वाले स्वर्गीय रमा कान्त के विषय में अपनी कलम को गति देने का कार्य प्रारम्भ करने के लिए विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं पड़ी। रमा कान्त का बाल रूप मेरी स्मृति में साकार हो उठा। घटना सन् 1950–51 वर्ष की थी जब मैं अपने सहपाठी शशि कान्त से मिलने के लिए लखनऊ विश्वविद्यालय के मेस्टन छात्रावास से शाम को कैसरबाग आया करता था। उस समय प्रातः स्मरणीय भाई साहब 'यूनियन मेडिकल स्टोर' का संचालन करते थे।

संभवतः अक्टूबर की एक शाम थी जब एक तेरह या चौदह वर्ष के बालक ने झोला लटकाए प्रवेश किया। इसके पूर्व कि मैं कुछ पूछता उसने मुस्कराते हुए, बड़े आदर के साथ दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया। तब शशि कान्त ने मुझे बताया कि यह मेरा छोटा भाई है। उसने झोला स्टूल पर रखा और नाश्ता निकाल कर भाई साहब के सामने मेज पर रख दिया। मैं नाश्ते की मेज से थोड़ा दूर हट गया। मेरे संकोच को भाई साहब ने ताड़ लिया और बड़े स्नेह से प्रोटीन तथा विटामिनों से पूर्ण विविध व्यंजन मेरे सामने बढ़ा दिए और व्यंजनों का आनन्द लेने को कहा। उनके आग्रह में इतनी आत्मीयता थी कि मैं उनका अनुरोध अस्वीकार न कर सका।

इस घटना के बाद कई वर्ष तक मेरा सम्पर्क रमा कान्त से नहीं हुआ। मुझे वह वर्ष याद नहीं जब मैंने **शोधादर्श** में उनकी कृति 'गिलास आधा भरा है' पढ़ी। इस कृति ने मेरी विचारधारा और जीवन शैली में आमूल–चूल परिवर्तन कर दिया। इसके पश्चात् मेरी इच्छा रमा कान्त से मिलने की हुई।

लखनऊ विश्वविद्यालय में शाम को मैं जर्मन भाषा का कोर्स कर रहा था और शशि कान्त रूसी भाषा की कक्षा में जाते थे। 'श्रमण कल्चर स्टडी सर्किल' में मेरी रुचि जागृत हो गई थी। अतः अब हम एक दूसरे से अक्सर समय निकाल कर मिलने लगे। अधिक निकटता होने पर शशि कान्त ने मुझे साहू शान्ति प्रसाद जैन "जैन डालमिया" के पुत्र की शादी में भाग लेने के लिये आमंत्रित किया। एक उद्योगपति की शादी समारोह वाली शादी में भाग लेने का यह मेरा प्रथम सौभाग्य था। संगीत सम्राट स्वर्गीय ओंकार नाथ ठाकुर के उच्च कोटि के शास्त्रीय गायन और जोशी के वायलिन वादन का रसास्वादन करने का प्रथम तथा अन्तिम अवसर था।

. कई वर्षो के अंतराल के बाद मैं अपने भतीजे की शादी में लखनऊ गया था। मैंने उसमें भाग लेने के लिए शशि कान्त को आमंत्रित किया था। इस अवसर पर स्वर्गीय रमा कान्त भी आये हुए थे। रमा कान्त की काव्य प्रतिभा का परिचय मुझे **शोधादर्श** के विभिन्न अंकों से मिल चुका था अतः एक उदीयमान कवि के रूप में मैंने उनका गर्मजोशी से स्वागत किया। यद्यपि मैं उनको अधिक समय न दे सका फिर भी उन्होंने इसको अन्यथा नहीं लिया। शशि कान्त से बातों का सिलसिला अनवरत रूप से चलता रहा। इस बीच कविवर रमा कान्त ने एक छोटा–सा पर्चा मेरी ओर बढ़ाया। इसके पूर्व कि मैं कुछ समझ पाता उन्होंने मधुर मुस्कान के साथ कहा कि यह चिरंजीव वर–वधू के लिए मेरी हार्दिक भेंट है। मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं था। केवल कुछ मिनटों में इतनी सुन्दर काव्य रचना एक सिद्धहस्त कवि ही कर सकता है। अपने छोटे भाई को बुला कर वह काव्य रचना उन्हें सौंप दी। मेरा यह दुर्भाग्य था कि वह काव्यकृति मैं उनसे लेना भूल गया। मेरे भाई ने उस काव्य रचना को आद्योपांत पढ़ा और उसके लिए रमा कान्त को धन्यवाद दिया। मेरे छोटे भाई ने उनसे प्रीतिभोज में भाग लेने का आग्रह किया। इस प्रकार यह अविस्मरणीय घटना काल के गर्त में समा गई।

शोधादर्श के नियमित सदस्य एवं पाठक होने के नाते उनकी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय निरंतर प्राप्त होता रहा। वे न केवल एक कवि वरन् मेघावी लेखक भी थे। व्यंगकार के रूप में भी वे ख्याति अर्जन कर चुके थे। एक सीधा सादगी वाला सुलझा व्यक्ति उनकी पहचान थी। मैं उनकी सर्वांगीण प्रतिभा से अत्यंत प्रभावित हुआ।

यह हिन्दी साहित्य जगत व प्रबुद्ध जैन समाज का दुर्भाग्य था कि लम्बे असाध्य रोग से ग्रस्त होने के कारण उनका असमय निधन हो गया। दिनांक 26 मई 2009 को सायंकाल करीब 5.35 बजे उनका शरीर शान्त हो गया। वे काल के क्रूर हाथों का शिकार हो गये। अपनी साहित्यिक प्रतिभा ही नहीं वरन् एक व्यावहारिक व्यक्तित्व होने के नाते वे सदैव अविस्मरणीय रहेंगे।

117/एच–2/56, पाण्डु नगर, कानपुर–208005

✦✦✦

एक विनोद प्रिय व्यक्तित्व

— साहित्य भूषण डॉ. परमानन्द जड़िया

आज रमा कान्त जैन हमारे बीच नहीं हैं परन्तु अपने जीवन काल में उन्होंने **शोधादर्श** के सम्पादक के रूप में जो सेवा की, वह अविस्मरणीय है। वे कवि भी थे और आमंत्रण मिलने पर नगर के दूरस्थ मोहल्लों में भी सारस्वत समारोहों की शोभा बढ़ाते थे। उनके चुटीले व्यंग्य की कुछ झलकियां मैं यहां दे रहा हूं।

वे अक्सर कहते थे — 'मैं एल—एल.बी. नहीं, एल—एल.बी. का बाप हूं। सुनने वाला यह समझेगा कि वे एल—एल.बी. पास लोगों का मजाक उड़ा रहे हैं, परन्तु ऐसा नहीं। उनका बेटा एल—एल.बी. है। इस व्यंग्य में भी वास्तविकता है।

एक बार रमा कान्त जी एक कवि—गोष्ठी में गये। उस गोष्ठी की संयोजिका का नाम था 'रमा'। जब रमा कान्त जी का नाम काव्य पाठ के लिए पुकारा गया तो उन्होंने संयोजिका जी की ओर उन्मुख होकर कहा— 'देखिये, आप रमा हैं, और मैं हूं रमा कान्त।' संयोजिका सुनकर स्तब्ध। सब लोग हंस पड़े। परन्तु यह मीठा व्यंग्य था। कोई फूहड़ता नही।

इसी प्रकार वे साधुओं पर व्यंग्य करने में भी नहीं चूकते थे। उनका एक लेख है — 'गिलास आधा भरा है'। वे कई भाषाओं के विद्वान थे। अक्सर मेरे आवास पर आ जाते और मैं भी प्रेम—सूत्र में आबद्ध उनके आवास पर प्रायः पहुंचने लगा था। परन्तु अचानक यह प्रेम—सूत्र एक दिन टूट गया। उस समय 'श्रद्धा के सुमन' में उन पर कुछ लिखकर अपने मन के उद्गार व्यक्त किये थे। आज फिर कुछ भूले बिसरे क्षण याद आ गये।

✦✦✦

श्रद्धा सुमन सादर समर्पित

वो भाग्यशाली और महान होते हैं
जिनके न रहने पर भी
लोग श्रद्धा और आस्था से, उनकी
गौरव गाथा के गान करते हैं।

— लूणकरण नाहर जैन

✦✦✦

कृतित्व परिचय

विद्वान–मनीषी स्व. श्री रमा कान्त जैन **शोधादर्श** पत्रिका के प्रथम अंक (फरवरी, 1986) से ही सक्रिय रूप से जुड़े हुए थे। आद्य–सम्पादक इतिहास–मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के महाप्रयाणोपरांत अंक–7 से वे इसके सम्पादन से भी आ जुड़े और श्री अजित प्रसाद जैन के देहावसान के पश्चात् अंक–57 (नवम्बर 2005) से **शोधादर्श** के सम्पादन का मुख्य दायित्व मृत्यु–पर्यन्त अंक–67 (मार्च 2009) तक कुशलतापूर्वक निर्वहन करते रहे। इस दौरान आपकी लेखनी से **शोधादर्श** में **गुरुगुण–कीर्तन** स्तम्भ के अंतर्गत 55 जैन आचार्यों, विद्वानों, साहित्यकारों का शोधपरक परिचय, विभिन्न विषयों पर 39 लेख, 10 सम्पादकीय, **समाचार विमर्श** के अंतर्गत 18 टिप्पणियां, **साहित्य–सत्कार** स्तम्भ के अंतर्गत 410 कृतियों की समीक्षा तथा **सामयिक परिदृश्य** स्तम्भ के अंतर्गत अंक 42 से 67 तक पद्य में व्यंगात्मक क्षणिकाएं प्रकाशित हुयीं। इसके अतिरिक्त **संतर्जन** के 10 अंकों में 'गुस्ताख़ी माफ़' शीर्षक से सामयिक परिदृश्य पर व्यंग्यात्मक समीक्षाएं प्रकाशित हुईं।

प्रकाशित कृतियां

हिन्दी भारती के कुछ जैन साहित्यकार

श्री रमा कान्त ने इस पुस्तिका में बनारसीदास, द्यानतराय, भूधरदास, दौलतराम कासलीवाल, बुधजन, कवि दौलतराम, नाथूराम प्रेमी और फूलचंद 'पुष्पेन्दु' का परिचय हिन्दी साहित्य को दिये गये उनके अवदान के परिप्रेक्ष्य में सरल सुबोध शैली में प्रस्तुत किया है। बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध की हिन्दी कवियित्रियों मैनावती, लज्जावती, कमलादेवी, कुन्थकुमारी, सुन्दरदेवी, छन्नोदेवी, चन्द्रप्रभादेवी, रूपवती देवी 'किरण', मणिप्रभा देवी, प्रेमलता 'कौमुदी' और कुसुम कुमारी का परिचय भी दिया है जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।

इसका प्रकाशन 1995 में जैनविद्या संस्थान द्वारा किया गया। इसे जैन विद्या संस्थान, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी, श्रीमहावीरजी–322220 से प्राप्त किया जा सकता है।

गिलास आधा भरा है

इसमें 16 ललित निबन्ध संकलित हैं जो लेखक के जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण को रेखांकित करते हैं। इसका प्रकाशन उनके पिता जी डॉ. साहब की 11वीं पुण्य तिथि पर 11 जून 1999 को किया गया था। इसे 'ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट, ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–226004' से प्राप्त किया जा सकता है।

डॉ0 ज्योति प्रसाद जैन कृतित्व परिचय

अपने पिता जी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की 67वीं जन्म–जयंती पर श्री रमा कान्त ने उनका परिचय और 1979 तक प्रकाशित उनकी कृतियों तथा प्रकाशित लेखों का विवरण इसमें प्रस्तुत किया है। उसके बाद उसी का **पंचवर्षीय परिशिष्ट – (1979–1984)** भी प्रकाशित किया जिसमें 1984 तक प्रकाशित सभी प्रकाशनों का सूचीबद्ध विवरण है। इन दोनों कृतियों में डॉ. साहब के प्रकाशनों पर विभिन्न विद्वानों की समीक्षाएं भी संकलित हैं। इनका प्रकाशन ज्ञानदीप प्रकाशन, ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ से किया गया है।

प्रकाशन की प्रतीक्षा में

1 **भावना लहरी** : आध्यात्मिक पद्य रचनायें

2 **गुस्ताख़ी माफ़** : समसामयिक परिदृश्य पर व्यंग्यात्मक समीक्षायें जो सभी पद्य बद्ध हैं

3 **(क) महापुरुषों का जीवन परिचय**

(ख) ऐतिहासिक निबन्ध

(ग) अन्य प्रकीर्ण लेखन

✧✧✧

श्री रमा कान्त जैन के चिन्तन प्रसून

गिलास आधा भरा है

मन में जब हमारे हो उल्लास भरा,
तब नज़र आयेगा हमें गिलास आधा भरा।
छा रही हो उदासी हमारे मन में,
खालीपन नज़र आने लगेगा उसी गिलास में।
दृष्टिभेद का यह रहस्य- मित्र समझ लो,
यथाशक्य खुशियों से अपना दामन भर लो।
चतुर्दिक् जो मुस्कानों के मोती लुटाते चलते हैं,
सद्भाव पा सफलता के पथ पर बढ़ते चलते हैं।।

प्रफुल्लता और खिन्नता हमारी मनःस्थितियां या चित्त—वृत्तियां हैं। हमारे चतुर्दिक् का वातावरण और घटना—चक्र हमारे मन को प्रभावित करता है। उसी प्रकार हमारी मनःस्थिति भी हमारे चतुर्दिक् वातावरण तथा सम्पर्क में आने वालों को प्रभावित करती है। यह दुतरफ़ा कार्य है। मनुष्य ही नहीं, पशु—पक्षी भी, अर्थात् सभी प्राणवान जीव जिनमें मन नाम की वस्तु विद्यमान है, इससे अछूते नहीं है। हमारी मनःस्थिति का प्रभाव हमारे अपने शरीर पर भी पड़ता है। हम अपने मनोभावों को लाख छिपाना चाहें, वे हमारे चेहरे पर झलक पड़ते हैं और हमारे कार्य—कलाप और आचरण उससे प्रभावित हो जाते हैं। इस मनोवैज्ञानिक सत्य से हम सब परिचित हैं।

जब हम अच्छे मूड में होते हैं तो हमें सब चीजें अच्छी दिखती हैं, भली लगती हैं। इसके विपरीत जब हमारा मूड ठीक नहीं होता तो हमें हर चीज खराब दिखती है, खराब लगती है। यह अच्छा मूड अर्थात् अच्छी मनःस्थिति या प्रफुल्लता और खराब मूड या खराब मनःस्थिति या खिन्नता सामान्यतया किसी प्राणी में स्थायी नहीं होती, अपितु संचारी भाव की तरह संचरित, या यों कहें कि परिवर्तित, होती रहती है और हमें सामान्य बनाये रखती है। वे अपवाद ही कहलायेंगे जिनके मन में खिन्नता या प्रफुल्लता सतत विद्यमान रहे अथवा इनका नितान्त अभाव हो। सदा उदास रहने वाले व्यक्तियों के लिये लोग कहते हैं, लगता है इनकी मोहर्रम की पैदायश है और सदा प्रसन्न चित्त रहने वाले ईद को जन्मे कहे जाते हैं। यह

आवश्यक नहीं है कि मोहर्रम के दिनों में जन्म लेने से कोई खिन्न चित्त हो जाये या ईद अथवा दीवाली को जन्म लेने से कोई सदा प्रसन्न चित्त बना रहे। ये तो मात्र लोकोक्तियां हैं।

प्रफुल्लता हमारे स्वास्थ्य को सही रखने वाली अमोघ औषधि है तो खिन्नता सही स्वास्थ्य को भी बिगाड़ देने वाला कुपथ्य है। प्रफुल्लता अमृत है तो खिन्नता विष। प्रफुल्लता वरदान है तो खिन्नता अभिशाप। जब हम प्रफुल्ल चित्त होते हैं तब हमारे मन की यह स्थिति स्वतः दर्पणवत् हमारे चेहरे पर प्रतिबिम्बित हो उठती है। हमारे मन में एक उत्साह उमड़ पड़ता है, हमारा दृष्टिकोण आशावादी हो जाता है और हमारे अपने सम्पर्क में आने वालों के प्रति व्यवहार में भी एक प्रकार की मधुरता आ जाती है। फलस्वरूप दूसरों का सद्भाव, सहयोग भी हमें सहज सुलभ हो जाता है और हम अपनी मंजिल पर पहुंचने, या यों कहिये कि अपने कार्यो में सफलता, की ओर अग्रसर हो जाते हैं। इसके विपरीत खिन्नता की अवस्था में हमारे चेहरे पर अनायास उदासी की घटाएं छा जाती हैं, हम अपने को निरुत्साह और निराश महसूस करने लगते हैं और हमारी यह खिन्नता हमारे कार्यकलापों एवं परस्पर व्यवहार को भी बाधित कर देती है। सदा उदास बने रहने वाले से उसके सगे संबंधी और इष्ट मित्र भी कतराने लगते हैं।

"गिलास आधा भरा है" एक प्रफुल्ल चित्त, आशावादी व्यक्ति के मुख से उच्चरित होगा। "गिलास आधा खाली है" किसी उदास, निराश व्यक्ति के मुख से निकली हूक होगी।

{यह लेख मासिक *वीर वाणी*, जयपुर, (अगस्त 1994), में प्रकाशित हुआ था और स्मृतिशेष रमा कान्त जी के 11 जून 1999 को प्रकाशित निबन्ध संग्रह का शीर्षक एवं सारबोधक प्रथम निबन्ध है। इसमें उनकी जीवनदृष्टि परिलक्षित है।}

✦✦✦

सरस्वती वन्दना

पल्लवित पुष्पित हो धरा, प्रकृति का श्रृंगार कर दे।
नीलिमा नभ में विराजे, फिर हरित संसार कर दे।
भावना भू है उर्वर, सद्भावना संचार कर दे।
तमिस्र दुष्कृत्य का मिटा, सुकृत्य का आलोक भर दे।
विनती इतनी अम्ब मेरी, इतना तू उपकार कर दे।
जगत ज्योतिर्मय कर सकूं, लेखनी में धार धर दे।।

लोक–कल्याण भावना

भावना दिन रात मेरी, सब सुखी संसार हो।
सत्य–संयम–शील का, व्यवहार हर घर–बार हो।।
सद्भाव–सरिता रहे बहती, शान्ति का प्रसार हो।
स्नेह संचरित हों हृदय हमारे, मनुज का व्यवहार हो।।
सरल हो जीवन हमारा, सरलता पहचान हो।
निज मातृ भूमि, मातृ भाषा पर हमें अभिमान हो।।

वीतराग के द्वार पर

भक्ति–भाव उर में धरे, द्वार तुम्हारे आया हूं।
अर्चना हेतु अकिंचन, यहां न कुछ लाया हूं।
परम शांत मुद्रा है कैसी, यह देखने आया हूं।
वीतराग हो तुम, नहीं याचना करने आया हूं।
वरदान न दोगे, तो अभिशाप भी न पाऊंगा मैं,
यह विश्वास मन में जगा, यहां आया हूं मैं।
तुम्हारे निर्मल गुणों का ध्यान करने आया हूं।
तुम्हारी ज्ञान–गंगा में अवगाहन करने आया हूं।
गुण ग्रहण कर सका यदि कुछ तुम्हारे,
अवगुणों से बच सका प्रसाद से तुम्हारे,
मनुजता यदि चित्त में आ के मेरे पधारे
समझूंगा हुआ सार्थक दर्शन करना तुम्हारे।।

पिता श्री को अन्तिम नमन

जन्म दिन है आज आपका
नमन मैं हूं, कर रहा।
यादों में बसा वात्सल्य आपका
प्रतिपल हूं मैं गुन रहा।।

जन्मदाता हैं आप मेरे
शिक्षक भी आप ही।
जो कुछ हूं मैं
इसके विधाता आप ही।।

आपसे बहुत कुछ पाया
आपने बहुत कुछ सिखाया।
कैसे चुकाऊं पितृऋण को
अभी तक नहीं समझ पाया।।

आप थे विद्या के वारिधि
सरल–सादा जीवन था जिया।
संतोष का पीयूष प्याला भी
जी भरकर था आपने पिया।।

अनन्त–ज्योति ज्ञान की
आप सदा रहे जगमगाते।
इतिहास की नई लीक
आप हमें रहे समझाते।।

लेखनी से अपनी आपने
भर दिया भारती–भण्डार को।
महावीर की वाणी को
जन–जन तक रहे पहुंचाते।।

वन्दन शत–शत बार आपका
नमन करता बार–बार हूं मैं
दीजिये आशीष आप मुझको
आपका कुछ अनुसरण कर पाऊं मैं।।

(दिनांक 6 फरवरी 2009 को अपने श्रद्धेय पिता जी को प्रस्तुत यह विनयांजलि अन्तिम है क्यांकि 26 मई 2009 को श्री रमा कान्त जी स्वयं स्मृतिशेष हो गये।)

गुस्ताख़ी माफ़

(श्री रमा कान्त समसामयिक परिदृश्य (2004–08) की विभिन्न घटनाओं के चिन्तन–परक पर्यवेक्षक थे। उन्होंने अपने चिन्तन को संक्षिप्त पद्यात्मक उक्तियों में व्यक्त किया है। ये उक्तियां व्यंग्य विधा की शैली में हैं और आज भी सटीक हैं।)

ये फ़रिश्ते हमारे

आया यहां देख चुनावी तमाशा
रख रहे हर हाथ पर बताशा
क्या खूब हैं ये फ़रिश्ते हमारे,
जो दे रहे झूठी तसल्ली–आशा।।

खोखले हैं इनके दावे–वायदे सारे
तभी चल रहे बैसाखियों के सहारे
मैदान में उतारा खिलाड़ी अभिनेताओं को,
शायद बच जाये कुर्सी उनके सहारे।।

नया भारत जो बनाने जा रहे
एक नया महाभारत वे रचा रहे
जनता तो है पिसने के लिए,
वे 'पीस–पीस' खूब चिल्ला रहे।।

वापसी कल्याण की

सिर झुका घर वापस चले आये हैं
दर्दे–दिल कितना सीने में छिपाये हैं
क्या होता है अंजाम रूठने का, जाना,
अब हर शर्त उनकी मानने आये हैं
कल्याण कितना होगा पार्टी और प्रदेश का
बतायेगा वक़्त, फ़िलहाल किस्मत आजमाने आये हैं।

तलाक़ धरमपाल का

हनीमून से पहले ही तलाक़
भाई, यह कैसा है इत्तफ़ाक
चाहते तो बहुत थे उन्हें,
उन्हें ही नहीं भाया वैड–लॉक।।

जाम पर जाम

जाम पर जाम वे हमें खूब हैं पिला रहे
हर दस कदम पै देशी–विदेशी ठेके नज़र आ रहे
उन्हें तो बढ़ाना है अपना राजस्व इनके बहाने,
किसे है फ़िक्र मदहोशी में हम किस क़दर बहके जा रहे ।।

सोनिया उवाच

कौन कहता है विदेशी हूं मैं ?
जो खा रहे विदेशी नमक यहां ?
क्या उनसे कम स्वदेशी हूं मैं ?
लोग व्यर्थ उछालते रहते यह मुद्दा
नहीं जानते, भारत की कुलवधु हूं मैं ।

दाल में काला

दाल में है काला, दाल पतली हो गई
आटे पर पड़ी मार, रोटी दुबली हो गई।
चलती रही यही रफ़्तार, खाने के पड़ेंगे लाले,
जेबें जब होंगी खाली, दुकानों में पड़ेंगे ताले।।

दानवीर

दानवीर उन जैसा यहां नज़र नहीं आ रहा
सरकारी खजाना क्या खूब यहां लुटाया जा रहा।
जनता का माल समझें, वे बाप केर माल,
उड़ाने में उसे नहीं, उन्हें तनिक मलाल।।

एकमत

कौन कहता है आपस में लड़ते रहते हैं हम
अपने वेतन–भत्ते बढ़ाने हेतु एकमत रहते हैं हम।

मंहगाई की फसल

फसल है मंहगाई की, गरीब खाये मार।
ठाठ तो नेता के हैं, खाये दही अचार।।

खरी बात

खरी बात उन्होंने कह दी, हंगामा बरपा हो गया
मज़हब की शान में कुछ सुनना, नागवार हो गया।
आधुनिका हैं दुर्गाजी, आधुनिक हैं श्याम,
समय की मांग को देख, चकित यहां हैं राम।।

हादसे

हादसे यहां अब इतने आम हो गये हैं,
बात सुनते उनकी, कान जाम हो गये है।
पुलिस की मुस्तैदी के क्या हैं कहने,
स्याह अखबारों के कालम तमाम हो गये हैं।।

राजनीति का सूत

पूनी ले कातते वह, राजनीति का सूत,
नौकरशाह रह देखा, कहां है धन अकूत।।

राजनीतिक दलों का धर्म

बात–बेबात सत्ता पक्ष की टांग खींचना विपक्ष का धर्म है
चुनाव के दौरान एक दूसरे पर कीचड़ उछालना सब का धर्म है
अपना वेतन–भत्ता बढ़वाने हेतु सदन में एकजुट सभी हैं रहते,
मालामाल कैसे रहें, इसकी जुगत बिठाना, हर दल का धर्म है।।

मौत के सौदागर

मौत के सौदागर अब यहां इस क़दर हो गये
मौत हुई नहीं कि सौदा करने खड़े हो गये
ज़िन्दा की तो ख़ैर ख़बर लेता नहीं यहां कोई,
मरते ही उसकी लाश के दाम लाखों हो गये।।

सरकारी ख़जाना

अजी कौन कहता है कि सरकारी ख़जाने का निकला दिवाला है।
करोड़ो रुपया मन्त्रियों ने जेब–खर्च पर खर्च कर डाला है।।

सरकारी अफ़सर

आये दिन अफ़सर ताश के पत्तों की तरह यहां फेंटे जाते हैं।
काम करेंगे वे खाक, अपनी सलामती हेतु मैडम को सेंटे जाते हैं।।

वोट बैंक

वोट बैंक हथियाने हेतु हर हथकंडा अपनाने को वे तैयार।
देश जाये भाड़–चूल्हे में, इससे उनका नहीं कोई सरोकार।।

आचरण के चरण

आचरण के चरण ऐसे हो गये, मूल्यों के क्षरण जैसे हो गये
वरण करें बताओ अब किन का, जो थे शरण अशरण हो गये।।

आपराधिक घटनाएं

अपहरण, लूट, डकैती, बलात्कार, हत्या यहां ऐसे आम हो गये।
पुलिस की मुस्तैदी के क्या कहने, आमजन बेहाल हो गये।।

मूल्यों का क्षरण

कौन कहता है मूल्यों का क्षरण हो रहा है।
अरे अब तो भ्रष्टाचार ही शिष्टाचार हो रहा है।।
ज्यों–ज्यों भाव बढ़ रहा, लिविंग स्टैण्डर्ड बढ़ रहा।
विकास की दिशा में हमारा हर पग बढ़ रहा।।

शब्द–चित्र

वकील

मुवक्किलों को हैं लड़ाते
ठोकते दलील की कील
ऐंठते खूब रक़म हैं
कहलाते हैं ये वकील।।

डॉक्टर

सहोदर हैं यमराज के
करते रोगों का उपचार
खाली करते जेबें हैं
पहुंचाते रोगी को यमद्वार।।

इंजीनियर

सड़क—इमारतें बनाते फिरें
सीमेन्ट—बालू फांके भरपूर
रौब मारें मजदूर पर
कहलाते ये इंजीनियर हजूर।।

पुलिसमैन

खाकी वर्दी में सजे
हनक गजब की श्रीमान
मुंह से निकलें गालियां
डंडा निर्बल पै देते तान।।

नेता

प्रचार—प्रबन्धन में प्रवीण
स्वयंभू नेता हैं श्रीमान
आश्वासन देने में खरे
वचन—पूर्ति नहीं आसान।।

कवि

कल्पना लोक में विचरण करें
कहते हम शारदा के सपूत
बोर करते अपनी रचनाओं से
कवि होने का देते सबूत।।

ईमान

दिन में हिन्दू, रात में मुसलमान
इस तरह बदल देते उनका ईमान
लावारिस लाश हैं, बोल सकती नहीं,
पुलिस है खुदा, बतलाती उनकी पहचान।।

कानून के रखवाले

कानून के जो कहलाते हैं रखवाले
लोग उनसे अकारण नहीं भय पाले
पत्नी उनकी उतरी चुनावी मैदान में,
पता नहीं कौन—सा हथकंडा अपना लें।।

शहीद

वतन की जंगे आज़ादी में
यूं तो शहीद हुए हजारों।
पर जिनके नाम लिये जाते
वे अंगुली पै हैं यारों।।

सरकारी खजाना

कौन कहता है सरकारी खजाने का निकला दिवाला।
मंत्री – विधायकों को खूब खिलाया गया है निवाला।।

माया की माया

माया – मोह में फंसे रहते संसारी लोग
पर माया भी फंसती कहीं, देखें लोग
ताज कॉरीडोर ने ऐसे फैलाये अपने पंख,
उसकी डोर को खींचे जा रहे लोग।।

जन–प्रतिनिधि प्रशिक्षण

अप्रशिक्षित ही यहां अब तक संभालते आये शासन–डोर।
प्रशिक्षित आयें अब भला, भेजा सुपुत्र पश्चिम की ओर।।

बधाई

दिन प्रतिदिन करते जा रहे जो हमारा लिविंग स्टैन्डर्ड हाई।
कैसे करें व्यक्त आभार उनका, कैसे दें हम उन्हें बधाई।।

काम करने का अंदाज़

उनके काम करने का अंदाज़ निराला है।
दाम–वृद्धि का अपयश कुछ कमी कर, टाला है।।

कर्मठ

कर में मठ हैं जिनके, कर्मठ कहलाते हैं,
कर–कमल उनके, सदा भरे नज़र आते हैं।
हर ख़ून माफ़ उनका, हर दोश से परे वे,
भक्तगण को क़ानून से ऊपर नज़र आते हैं।।

ढोंग

महंगाई की लहलहाती फसल यहां देख बौराये हैं सभी लोग,
धरने पर जो बैठे, सोचें, बीज–पानी–खाद देने में
रहा कितना उनका योग।
अब सेंकने निकले हैं नेताई की रोटियां
उसके सहारे,
क्या नहीं जानते वे, आम आदमी
बखूबी समझ रहा है उनका ढोंग।।

लिविंग स्टैण्डर्ड हाई

कीमतें बढ़ा–बढ़ा कर, लिविंग स्टैण्डर्ड हाई कर दिया है।
धनिक हो रहे अधिक धनी, निर्धनों को पीस कर रख दिया है।।

दूध से धुला

किस पे उठायें उंगली, हर कोई दूध से धुला हुआ है।
भ्रष्टाचार शिष्टाचार बन, हर सांस में घुला हुआ है।।

चाकर का फ़र्ज़

चाकर का फ़र्ज़ मालिक को रिझाना होता है।
उसके कुत्ते को मुस्कराकर सलाम लगाना होता है।।

देर भले ही हो

देर भले ही हो, अन्धेर न हो,हमारे यहां क़ानून का यही तकाज़ा है।
इसीलिए क़ब्र से गड़ा मुर्दा उखाड़ कर,
सूली पर चढ़ा, निकाला जाता जनाज़ा है।।

तिरंगा

तिरंगा अब साम्प्रदायिकता का पर्याय बनने लगा है।
इसलिए उसे फहरानेवालों पर मुकदमा चलने लगा है।।
तिरंगे के कारण एक साध्वी जेल चली गई,
तिरंगा स्कार्फ़वाली रुपहले पर्दे के लिए चुनी गई।
तिरंगे में दो तरह का असर यह कैसा,
समझने में अक़्ल हमारी तो चक्कर खा गई।।

भारतीय खिलाड़ी

खेल में हम नम्बर एक हैं,
ओलम्पिक में पाते पदक एक हैं।
औरों को जीतने का देते अवसर,
हम भारतीय इन्सान नम्बर एक हैं।।

फ़्री में साड़ियां

फ़्री में साड़ियां बटीं, लाशों से गाड़ियां पटी।
माहौल कुछ ऐसा पलटा, कमल की कीमत घटी।।
जन्मदिन उन्होंने मनाया, घर–घर शोक छाया।
चिन्तित हुए अटल जी,सान्त्वना दे, विश्राम पाया।।
सादगी से किया नामांकन, कर रहे मंथन अब
प्रतिपक्षी न सेंके रोटियां सुन कोई करुण क्रन्दन।।

पंच भूत

पंच भूत मिल रहे, सृष्टि नयी रच रहे।
देश जाये अब किधर, तीन–पॉच कर रहे।।
घड़ियाली आँसू निकल रहे,सब उन्हें समझ रहे।
कुर्सी मिल जाये फिर, मन उनके मचल रहे।।

अखाड़े में

पक्ष में रह, विपक्ष में रह, करोड़ों कमाये हैं,
अरबों बनाने को मैदान में अब किस्मत आज़माये हैं।
जनता तो है निरीह, तैयार रहती पिसने के लिए,
उसे और पीसने मलधारी अखाड़े में आये हैं।।

मत दें

कई जगह जनता ने मतदान का बहिष्कार कर दिया,
मत दें किसी को भी मत, सिद्ध कर दिया।
सभी प्रत्याशी हैं एक ही चट्टी के बट्टे,
जनता को खूब पीसकर उन्होंने रख दिया।।

लखनऊ का दंगल

बुद्ढे से जब बुद्ढा टकराये, हाथ किसी के क्या आये?
शमा कमल को तो जलाये, झोंके से खुद भी बुझ जाये।।

असत्यमेव जयते

असत्यमेव जयते का है युग हम सब चोर हैं।
भ्रष्टाचार शिष्टाचार है बना, अनीतियां थामें डोर हैं।।

जनता का भगवान

नेता अब जनता का भगवान हो गया है
राष्ट्र के ऊपर उसका मान हो गया है
राष्ट्रगान बना है उसके सम्मान का सामान,
अब सब कुछ यहां आसान हो गया है।।

दलदल

हर दल में दलदल नज़र आती है,
दल बदलना आम बात नज़र आती है।
राष्ट्र–हित से ऊपर है स्वार्थ अपना,
जहां दिखे कुर्सी, नज़र वहीं जाती है।।

जन–मत

जन–मत यहां क्या कहता है न पूछें, वह सब सहता है
सब हैं एक चट्टी के बट्टे मत दें उन्हें मत, कहता है।।

पाचन शक्ति

चर गये चारा, चाट गये रबड़ी।
देखिये पाचन–शक्ति, कितनी है तगड़ी।।

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ0प्र0
प्रतिवेदन वर्ष 2016–17

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, का गठन सन् 1976 ई0 में 24वें तीर्थंकर भगवान वर्धमान महावीर स्वामी का 2500वां निर्वाण महोत्सव वर्ष मनाने के लिए राज्य सरकार द्वारा गठित **श्री महावीर निर्वाण समिति, उ0प्र0,** की उत्तराधिकारी संस्था के रूप में जैन धर्म की सभी आम्नायों के महानुभावों के सहयोग से किया गया था तथा गठन के तुरन्त बाद ही उसे सोसायटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड करा लिया गया था जिसका नियमानुसार नवीनीकरण यथासमय कराया जाता है।

समिति का वर्ष 2015–16 का प्रतिवेदन **शोधादर्श–83** (जून, 2016) के पृष्ठ 56–60 पर प्रकाशित है। यहां वर्ष 2016–17 (1 अप्रैल, 2016 से 31 मार्च, 2017) का प्रतिवेदन प्रस्तुत है।

आलोच्य वर्ष में समिति की प्रवृत्तियों की प्रगति निम्नवत रही :–

1 तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र शोध पुस्तकालय

पुस्तकालय की स्थापना वर्ष 1976 की श्रुत–पंचमी को की गई थी और इसका विधिवत उद्घाटन 23 अक्टूबर, 1976, को प्रदेश के तत्कालीन ग्राम्य विकास मंत्री माननीय डॉ. रामजीलाल सहायक के कर कमलों से सम्पन्न हुआ था। पुस्तकालय और उससे संलग्न वाचनालय श्री मुन्नेलाल कागजी जैन धर्मशाला ट्रस्ट, चारबाग, लखनऊ द्वारा धर्मशाला के प्रथम तल पर उपलब्ध कराये गये एक कक्ष में प्रारंभ किया गया था, जो मई 2001 से धर्मशाला के द्वारा भूतल पर किराये पर उपलब्ध कराये गये दो कक्षों में चल रहा है।

समिति के सदस्यों के अतिरिक्त पुस्तकालय के सदस्य भी हैं जिनकी संख्या इस वर्ष 44 रही। लखनऊ में चारबाग ही नहीं वरन् आसपास की कॉलोनियों के जैन परिवार तथा अनेक जैनेतर जिज्ञासु महानुभाव भी पुस्तकालय के सदस्य हैं। कुछ सदस्य लखनऊ के बाहर के भी हैं।

पुस्तकालय में जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति आदि के अध्ययन हेतु जैन धर्म की सभी आम्नायों का साहित्य तथा शोधार्थियों द्वारा तुलनात्मक अध्ययन के लिए अन्य भारतीय धर्मो, दर्शनों एवं संस्कृति से सम्बन्धित

महत्वपूर्ण साहित्य संग्रहीत है। अपने विशिष्ट संकलन के लिये इन विषयों के शोधार्थी पाठकों में यह पुस्तकालय विशेष लोकप्रिय है तथा लखनऊ, कानपुर व अन्य विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध शोध छात्र इससे लाभ उठाते हैं। सामान्य रुचि के पाठकों के लिए लौकिक एवं सामान्य ज्ञानवर्धक साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

वर्ष 2016–17 में पुस्तकालय में 152 पुस्तकों की वृद्धि हुई। राजा राममोहनराय पुस्तकालय प्रतिष्ठान कोलकाता से प्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग (पुस्तकालय कोष्ठक) के माध्यम से पुस्तक अनुदान के रूप में 102 पुस्तकें प्राप्त हुई। शेष 50 पुस्तकें भेंट स्वरूप प्राप्त हुई।

शोध पुस्तकालय के वाचनालय में प्रायः 100 धार्मिक, सामाजिक, सामयिक एवं शोध पत्र–पत्रिकाएं (साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, चातुर्मासिक, षट्मासिक और वार्षिक) समिति की शोध–पत्रिका **शोधादर्श** के परावर्तन में प्राप्त होती हैं।

पुस्तकालय–वाचनालय से प्रतिदिन प्रायः 50 पाठक लाभ उठाते हैं। पुस्तकालय–वाचनालय का समय प्रातः 10.00 से अपराह्न 2.00 बजे तक है। शनिवार और सार्वजनिक अवकाश पर पुस्तकालय–वाचनालय बन्द रहता है।

पुस्तकालय–वाचनालय का कार्य पूर्ववत पुस्तकालय व्यवस्थापिका श्रीमती हेमा सक्सेना, एम0ए0, द्वारा सुचारु रूप से देखा जाता रहा।

2 शोधादर्श

जैन विद्या की शोध को समर्पित शोध–पत्रिका **'शोधादर्श'** का प्रकाशन फरवरी 1986 में समिति द्वारा प्रथम अंक के प्रकाशन से प्रारंभ किया गया था। इसके आद्य–सम्पादक इतिहास–मनीषी विद्यावारिधि डॉ. ज्योति प्रसाद जैन थे। जून 1988 में उनके स्वर्गवास के उपरान्त अंक 7 से प्रधान सम्पादक के दायित्व का निर्वहन डॉ. शशि कान्त ने किया। अंक 30 (नवम्बर 1996) से अंक 56 तक प्रधान सम्पादक के कार्यभार का सम्पादन श्री अजित प्रसाद जैन ने किया। उनके निधन के उपरान्त अंक 57 (नवम्बर 2005) से अंक 67 (मार्च 2009) तक श्री रमा कान्त जैन ने इसके सम्पादन के दायित्व का निर्वहन किया।

अंक 68 (नवम्बर 2009) से **शोधादर्श** के सम्पादन का दायित्व मेरे द्वारा निर्वहन किया जा रहा है।

जून 2016 और दिसम्बर 2016 में **शोधादर्श** के **क्रमशः** अंक 83 और 84 प्रकाशित हुए। इनमें 152 पृष्ठों की ज्ञानप्रद व उपयोगी संग्रहणीय सामग्री और चित्र प्रकाशित हैं। अंक 83 में भारत के साहित्यिक क्षेत्र में जैन रचनाकारों पर और अंक 84 में राष्ट्रीय परिदृश्य पर विशेष लेख प्रकाशित हैं। उपरोक्त विशिष्ट सामग्री के अतिरिक्त पत्रिका के सामान्य स्तम्भ भी सम्मिलित रहे। पत्रिका की लोकप्रियता में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है तथा आज यह पत्रिका देश की उच्च स्तरीय धार्मिक–सांस्कृतिक शोध–पत्रिकाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

3 तीर्थंकर छात्र सहायता कोष

इस वर्ष आर्थिक दृष्टि से निर्बल 64 विद्यार्थियों को अध्ययन जारी रखने हेतु आंशिक सहायता प्रदान करने पर रु. 65891.75 का व्यय किया गया।

4 लेखे की स्थिति

समिति के लेखे का आडिट इस वर्ष भी श्री आलोक जिन्दल, चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट, द्वारा किया गया और उनके माध्यम से आयकर कार्यालय को आवश्यक विवरणी यथासमय प्रस्तुत की जायगी।

शासन से प्राप्त पुस्तक अनुदान तथा कतिपय दातारों से भेंट स्वरूप प्राप्त साहित्य के अतिरिक्त कुल प्राप्तियां वर्ष में रु0 1,88,305.00 रहीं (इसमें रु0 400/– पुस्तकालय सिक्योरिटी राशि भी है जो रिफन्डेबिल है) तथा व्यय रु.1,64,737.75 हुआ। फिक्स डिपॉज़िट निवेशों में रु. 1,00,000/– की वृद्धि कर दी गई। प्राप्ति–व्यय की विवरण तालिका संलग्न है। इसमें पुस्तकालय–वाचनालय का मासिक किराया सम्मिलित नहीं है क्योंकि उसका समायोजन श्री मुन्ने लाल कागजी जैन धर्मशाला ट्रस्ट को दी गई अग्रिम धनराशि से होता है।

मुन्नेलाल कागजी जैन धर्मशाला ट्रस्ट को दी गई अग्रिम किराये की अवशेष राशि रु. 1,08,800/– में से वर्ष 2016–17 में रु. 1600/– की दर से रु. 19,200/– की धनराशि मासिक किराये के रूप में समायोजित की गई, और अग्रिम किराये की राशि रु. 89,600/– अवशेष रही।

5 अन्य प्रवृत्तियां

वित्तीय वर्ष 2015–16 (असेसमेन्ट वर्ष 2016–17) का इन्कम टैक्स रिटर्न यथासमय जमा कर दिया गया। आयकर विभाग द्वारा आपत्ति के दृष्टिगत प्रकरण का रैक्टीफिकेशन किये जाने की कार्यवाही आडीटर श्री आलोक जिन्दल द्वारा की जा रही है।

रजिस्ट्रार, सोसायटीज, उ0प्र0, लखनऊ, को यथावश्यक सूचना प्रेषित की जाती रहीं। रजिस्ट्रेशन के आगामी 5 वर्षो के लिए नवीकरण हेतु प्रमाण पत्र प्राप्त हो गया है।

6 सन्ताप

समिति के उपाध्यक्ष 77–वर्षीय श्री महेन्द्र प्रसाद जैन का 21 मई 2016 को मुम्बई में शरीर शांत हो गया। इनका परामर्श एवं सहयोग समिति के कार्यकलापों को निष्पादित करने में विशेष रूप से सहायक होता था, उसकी स्मृति सदा बनी रहेगी।

7 अन्तिम

विगत वर्ष 2016–17 की सभी प्रवृत्तियों के सम्पादन में मुझे समिति के अध्यक्ष श्री लूणकरण नाहर जैन का तथा प्रबन्ध समिति के सभी माननीय सदस्यों का सक्रिय सहयोग एवं मार्गदर्शन निरंतर उपलब्ध रहा। **शोधादर्श** का सम्पादन डॉ. शशि कान्त के मार्गदर्शन में व्यवस्थित किया जाता रहा।

सभी क्रियाकलापों में समिति के माननीय सदस्यों का सौहार्दपूर्ण सहयोग प्राप्त रहा। इन सभी महानुभावों के प्रति आभार व्यक्त करना मेरा व्यक्तिगत और नैतिक दायित्व है।

नलिन कान्त जैन
महामंत्री

25–6–2017

TIRTHANKAR MAHAVIR SMRITI KENDRA SAMITI, U.P.

Statement of Receipts & Payments for the Year ending 31st March, 2017

RECEIPTS		Rs. P.	PAYMENTS		Rs. P.
Balance b/d			Research Library:		
F.D.R.s.	23,65,000.00		Salary Libr. Asstt.	60,400.00	
Savings Bank	1,34,925.79		Salary Cleaner	3,470.00	
Cash in Hand	11,509.00	25,11,434.79	Contingencies	960.00	64,830.00
Research Library:			Shodhadarsh Magazine:		
Security Deposit	400.00		Stationery & Prtg.	27,560.00	
Subscription	820.00		Dispatch Postage	2,910.00	30,470.00
Misc. Receipts	525.00	1,745.00			
Shodhadarsh Magazine:			Stationery		184.00
Subscription	1,100.00		Postage		862.00
Donation	6,744.00	7,844.00	T.C.S. Kosh Scholarship Exp.		65,891.75
			I.T. Counsel's & Audit Fee		2,500.00
Interest on F.D.Rs.		1,75,729.00			
Interest on Savings Bank		2,987.00			
			Balance c/d:		
			F.D.Rs.	24,65,000.00	
			Savings Bank	68,891.04	
			Cash in Hand	1,111.00	25,35,002.04
		26,99,739.79			26,99,739.79

Compiled on the basis of information and explanations furnished.

For Avanish K. Rastogi & Associates
Chartered Accountants
Alok Jindal
Partner

दीपक

— श्री अमरनाथ

दीपक एक जलाइये, कोसो मत अंधियार।
जैसे ही दीपक जले, छिटकेगा उजियार।।1।।
गहन अमावस रात जब, सागर में तूफान।
दे तब भटकी नाव को, दीपक, पथ का ज्ञान।।2।।
जगमग जगमग दीप जल, जगमग कर उजियार।
जग, मग, ज्योतिर्मय करें, जगमग सब संसार।।3।।
नदिया में दीपक तिरै, बन ज्योतिर्मय नाव।
धरती पानी में जगे, ज्योतिर्मय मृदु भाव।।4।।
दीपक रोज जलाइये, घर में, आंगन, द्वार।
इससे होता है सदा, लक्ष्मी का सत्कार।।5।।
शुद्ध भरे मन आचरण, अजस्र दीप्त प्रवाह।
बन ज्योतिर्मय दीप तुम, दिखलाओ नित राह।।6।।
दीपक बारो प्रेम का, मन का कटता कार।
जग में दीपक प्रेम का, भरता है उजियार।।7।।
बाती लो तन की बना, राम सिया ले नेह।
बारौ दीपक ज्ञान का, दिखता प्रभु का गेह।।8।।
दीपक ज्ञान जलाइये, भागे अलस प्रमाद।
मिट जाये नैराश्य तम, नष्ट सभी अवसाद।।9।।

401—ए, 'अभिषेक', उदयन—1, बंगला बाजार, जेल रोड, लखनऊ—2

दुश्मन से घिरा है देश मेरा

— डॉ. किशोरी लाल व्यास

रोज रोज होता है हमला सीमाओं पर
रोज रोज मरते हैं सैनिक देश के
रोज रोज शहादत का सेहरा सिर बांधे
रोज रोज शहीद होते हैं वीर सिपाही।

बाहर दुश्मन, भीतर दुश्मन
ऊपर दुश्मन, नीचे दुश्मन
दुश्मन से घिरा है देश मेरा।

फ्लैट नं. 6, ब्लॉक नं. 3, केन्द्रीय विहार, मिंयापुर, हैदराबाद—500049

हाशिए पर खड़ी ज़िंदगी

— श्रीमती सरिता अग्रवाल

हाशिए पर खड़ी ज़िंदगी,
समय के झरोखे से, आंख मिचौली खेलती,
कभी ख़ुशी कभी ग़म, के पायदान पर झूलती ज़िंदगी,
हाशिए पर खड़ी ज़िंदगी।
सूनी आंखें, सूना आकाश, जैसा फैला खाली कैनवास,
मन चाहे रंग भरने को, आतुर थरथराती ज़िंदगी।
हाशिए पर खड़ी ज़िंदगी।
अपनेपन का मखमली अहसास, किसी हमदम की मधुर आवाज़,
नियति का क्रूर उपहास, शून्य की बाहों में सिमटती ज़िंदगी,
हाशिए पर खड़ी ज़िंदगी।
कभी ख़ुशी कभी ग़म, के पायदान पर झूलती ज़िंदगी।।

61—ए, पार्बती घोष लेन, कोलकाता—700007

भोजन शाकाहार

— श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'

धर्म अहिंसा मान, प्रेम सभी से कीजिये।
सदाचरण का ज्ञान, रहे ध्यान नित दीजिये।।
हिंसा भीषण पाप ।
क्षमा दया का मंत्र, जीवन का आधार है।
मन—हृदय हों न स्वतंत्र, सद्ग्रन्थों का सार है।।
धारो सद् व्यवहार।
भोजन शाकाहार, करें स्वास्थ्य का ध्यान रख
मांस—मद्य दुख—द्वार, विपत्ति न न्योतें इन्हें चख।।
होवे सात्विक भोग।
हो जग में सुख—शांति, उग्रवाद का अन्त कर।
रक्त पात दुख—भ्रान्ति, मिटे विपत्ति मन हर्ष भर।।
हों सब सुखी 'अबोध'।

'चन्द्रा—मण्डप', 370/27 हाता नूरबेग, संगम लाल वीथिका, सआदतगंज, लखनऊ—226003

✦✦✦

अद्वितीय शिल्प कृति

श्रवणबेलगोला के गोम्मटेश्वर बाहुबली

— डॉ. शशि कान्त

कर्नाटक राज्य के जिला हासन के ताल्लुका चेन्नरायपत्तन में श्रवणबेलगोला स्थित है। यह स्थान चेन्नरायपत्तन से 12 कि.मी., हासन से 50 कि.मी. और मैसूरू से लगभग 100 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। श्रवणबेलगोला उत्तर दिशा में चन्द्रगिरि और दक्षिण दिशा में इन्द्रगिरि की पहाड़ियों के बीच में स्थित है। इन्द्रगिरि जिसे विन्ध्यगिरि भी कहा जाता है, बड़ी पहाड़ी (दोड्डा बेट्टा) है। चन्द्रगिरि छोटी पहाड़ी (चिक्क बेट्टा) है और उसके नाम ऋषिगिरि, तीर्थगिरि तथा गोम्मटगिरि भी हैं। बाहुबली की जिस उत्तुंग मूर्ति का यहां उल्लेख किया जा रहा है वह इन्द्रगिरि पर स्थित है।

इस मूर्ति का निर्माण और स्थापना चामुण्डराय द्वारा की गई थी। चामुण्डराय गंगवंश के नरेश मारसिंह द्वितीय (961–974 ई.) तथा राचमल्ल चतुर्थ (975–984 ई.) के मंत्री और प्रधान सेनापति रहे थे। चामुण्डराय द्वारा बाहुबली की उक्त मूर्ति की प्रतिष्ठा रविवार दिनांक 13 मार्च को 981 ई. में हुई माना जाता है और उसी आधार पर 1981 ई. में एक सहस्र वर्ष की पूर्ति पर भव्य समारोह में महामस्तकाभिषेक हुआ था। महामस्तकाभिषेक सामान्य रूप से प्रत्येक 12 वर्ष के अन्तराल पर किया जाता है। पिछली बार महामस्तकाभिषेक फरवरी 2006 ई. में सम्पन्न हुआ था और आगामी महामस्तकाभिषेक फरवरी 2018 ई. में सम्पन्न होगा।

शिल्प की दृष्टि से गोम्मटेश्वर बाहुबली स्वामी की यह मूर्ति अद्वितीय कलाकृति है। इन्द्रगिरि पहाड़ी की 140 मी. ऊंची चोटी पर यह मूर्ति स्थित है। मूर्ति की उंचाई 57 फुट अर्थात् 17.37 मी. है। मूर्ति को पहाड़ी की चोटी के ऊपर ग्रेनाइट की चट्टान को काटकर बनाया गया है। मूर्ति के सिर से जाघों तक अंग निर्माण के लिए चट्टान के अवांछित अंशों को आगे, पीछे और पार्श्व से हटाया गया है। जांघों के नीचे के भाग, टांगे और पैर, उभार में उत्कीर्ण किये गये हैं। मूल चट्टान के पृष्ठ भाग तथा पार्श्व भाग को प्रतिमा को आधार प्रदान करने के लिए सुरक्षित रखा गया है। दोनों ओर से निकलती हुई माधवी लता को पांव और जांघों से लिपटती कंधों तक चढ़ती हुई अंकित किया गया है; इनका अंत पुष्पों या बेरियों के गुच्छों के रूप में होता है। गोम्मट के चरणों का नाप 2.75 मी. है; जिस

पादपीठ पर ये चरण स्थित दिखाये गये हैं वह पूर्ण विकसित कमल के रूप में है।

गोम्मटेश्वर की विशाल वक्ष युक्त भव्य प्रतिमा खड्गासन मुद्रा में है और दोनों हाथ घुटनों तक लटके हुए हैं। दोनों हाथों के अंगूठे भीतर की तरफ मुड़े हुए हैं। सिर की रचना लगभग गोल है और उसकी ऊंचाई 2.3 मी. है। नुकीली और संवेदनशील नाक, अर्ध–निमीलित ध्यान–मग्न नेत्र, सौम्य–स्मित ओष्ठ, किंचित् बाहर की ओर निकली हुई ठोड़ी, सुपुष्ट गाल, पिण्ड युक्त कान, मस्तिष्क तक छाये हुए घुंघराले केश आदि इन सभी से आकर्षक, वरन् देवात्मक, मुखमण्डल का निर्माण हुआ है।

8 मी. चौड़े बलिष्ठ कंधे, चढ़ाव–उतार रहित कोहनी और घुटनों के जोड़, संकीर्ण नितम्ब जिनकी चौड़ाई सामने से 3 मी. है और जो बेडौल व अत्यधिक गोल हैं, ऐसे प्रतीत होते हैं मानो मूर्ति को संतुलन प्रदान कर रहे हों। सिर और मुखाकृति के अतिरिक्त हाथों, अंगुलियों, नखों, पैरों तथा एड़ियों का अंकन भी कठोर दुर्गम चट्टान पर दक्षता के साथ किया गया है। सम्पूर्ण प्रतिमा को वास्तव में पहाड़ी की ऊंचाई और उसके आकार–प्रकार ने संतुलित किया है।

समूचे शरीर पर दर्पण की भांति चमकती पालिश है जिससे भूरे–श्वेत ग्रेनाईट प्रस्तर के दाने भव्य हो उठे हैं। ऊंचे पहाड़ी शिखर पर खुले आकाश में स्थित प्रतिमा को धूप, ताप, शीत, वर्षा घर्षणकारी धूल और वर्षा भरी वायु के थपेड़ों से बचाने में इस पॉलिश ने रक्षा कवच का कार्य किया है। शरीर के सामान्य आकार के अनुपात में घुटनों से नीचे टांगो का उचित माप में अंकन है जो मूल चट्टान के माप के अनुसार प्रतीत होता है। निर्विकार दिगम्बरत्व मूर्तिकार के कलाकौशल की चरम श्रेष्ठता को प्रदर्शित करता है। गोम्मटेश्वर बाहुबली की यह प्रतिमा भारतीय शिल्प कला का अद्वितीय उदाहरण है। प्रतिमा का विवरण भारतीय ज्ञानपीठ से 1975 में प्रकाशित **जैन कला एवं स्थापत्य,** खण्ड दो, के अध्याय 19 में श्री के. आर. श्रीनिवासन तथा श्री हरिविष्णु सरकार द्वारा प्रस्तुत मार्गदर्शन के आधार पर दिया गया है।

बाहुबली और इस प्रतिमा के निर्माता चामुण्डराय के सम्बन्ध में अन्य विवरण यहां नहीं दिया जा रहा है। बाहुबली प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र थे। यह उल्लेखनीय है कि उनकी दृष्टि ऋषभदेव की निर्वाण भूमि कैलाश पर्वत की दिशा में रखी गई है यद्यपि बाहुबली की मुक्ति ऋषभदेव के जीवन काल में ही हो गई थी।

खारवेल के हाथीगुम्फा–अभिलेख में मंगल चिह्न

— डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव

उड़ीसा की राजधानी भुबनेश्वर के निकट उदयगिरि–खण्डगिरि नामक पहाड़ियों में विश्व प्रसिद्ध जैन गुफाएं हैं। वहां की बोली में इन्हें 'गुम्फा' कहा जाता है। दोनों पहाड़ियां परस्पर जुड़ी हैं, केवल बीच में भुबनेश्वर से कटक जाने वाली सड़क उन्हे अलग करती है। उदयगिरि की पहाड़ी पर 18 और खण्डगिरि पर 15 गुफाएं हैं। ये सभी गुफाएं जैन मुनियों के आवास के लिए चेदिवंश के राजाओं द्वारा बनवायी गयी थीं। इनमें उदयगिरि की हाथीगुम्फा चेदिवंश के राजा खारवेल के अभिलेख के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इस राजा की जानकारी का यही एक मात्र साक्ष्य है जिसमें उसकी शिक्षा व योग्यता के साथ उसके 13 वर्षो के शासनकाल का विवरण मिलता है। यहां की कई गुफाओं के चैत्याकार प्रवेश द्वारों के शीर्ष तथा भित्तियां श्रीवत्स, स्वस्तिक, नन्द्यावर्त, भद्रासन आदि मांगलिक चिह्नों से अलंकृत हैं। हाथीगुम्फा का अभिलेख भी चार मंगल चिह्नों से अलंकृत है।

हाथीगुम्फा–अभिलेख आंधी–पानी के प्रतिकूल आघातों से जीर्ण–शीर्ण होकर आधा–अधूरा ही बचा है। उस पर उसके अक्षरों की टूट–फूट से उसका पढ़ना भी सरल नहीं रहा। इसीलिए इस अभिलेख को विभिन्न विद्वानों द्वारा पाठान्तर सहित ही पढ़ा जा सका है। अब तक इसे जेम्स प्रिंसेप, कनिंघम, राजेन्द्रलाल मित्र, भगवानलाल इन्द्र जी, ब्यूहलर, फ्लीट, ल्यूडर, थामस, स्टेन कोनो, राखालदास बनर्जी, काशी प्रसाद जायसवाल, बेनी माधव बरुआ, जिन विजय, रामप्रसाद चान्दा, दिनेशचन्द्र सरकार, शशि कान्त, परमेश्वरी लाल गुप्त, भागचन्द जैन 'भागेन्दु' आदि विद्वानों ने पढ़ा है और अपने–अपने पाठ के अनुसार उसका अर्थ उजागर किया है। किन्तु इनमें से एकाध को छोड़कर किसी ने भी अभिलेख में उत्कीर्ण मंगल चिह्नों की चर्चा तो दूर उनका उल्लेख तक नहीं किया है।

धर्म, सम्प्रदाय, जाति आदि वर्गो से परे समूचे भारतीय समाज में मांगलिक चिह्नों की लोकप्रिय परम्परा अत्यंत प्राचीनकाल से रही है। कालान्तर में ब्राह्मण, जैन, बौद्ध आदि मतावलम्बियों ने अपनी–अपनी आवश्यकतानुसार उन्हें अपना लिया और उनमें अपनी विचारधारा वाले भावों की स्थापना कर ली। इन मांगलिक चिह्नों को नित्य प्रति घरों में, विशेष आयोजनों अथवा पर्वोत्सवों के अवसर पर अल्पना या चौक में अथवा

प्रवेशद्वार के ऊपर एवं पक्खों पर आज तक अंकित किया जाता है। इनके बनाने का मुख्य उद्देश्य जीवन में मांगलिकता (शुभ, कल्याण, क्षेम, सुख, सौभाग्यादि) प्राप्त करना रहा है। इसी मांगलिक भावना के कारण प्राचीन भारतीय कला के साथ–साथ अभिलेखों में भी कई मांगलिक चिह्नों को मौर्य सम्राट अशोक के समय से ही उत्कीर्ण किया जाता रहा है। खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख भी इन्हीं में से एक है।

भारतीय समाज में मान्य और प्रचलित मांगलिक चिह्नों की संख्या बहुत बड़ी है। बाद में अष्टमंगल को महत्व दिया गया। कोई भी आठ चिह्न 'अष्टमंगल' कहे जाने लगे। मंगल चिह्नों की संख्या भले ही आठ से एकाध कम या अधिक हो, पर उन्हें 'अष्टमंगल' कहने की परम्परा रूढ़ हो गई। इसी अष्टमंगल शब्द से आगे चलकर अष्टमंगलक माला, अष्ट मंगलक कन्याएं, अष्ट पुष्पिका, अष्ट दिक्कुमारिकाएं आदि पद प्रचलित हो गए थे। कहना अत्युक्ति न होगा कि जैन वाङ्मय और कला में जितना महत्व अष्टमंगल को मिला, उतना अन्यत्र नहीं। इतना ही नहीं, अष्ट मंगल कहने की परिपाटी का श्रेय भी जैन धर्म को ही जाता है।

जैन धर्मावलम्बी जिन ग्रंथों में अष्ट मंगलों की सूची अथवा उनका उल्लेख मिलता है वे हैं **औपपातिक** (सूत्र 31), **रायपसेणियसुत्त** (कण्डिका 66), **प्रवचनसारोद्धार, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, उत्तराध्ययन सूत्र, अभिधानचिन्तामणि, तिलोयपण्णत्ति** (2/22–62), **समवायांगसुत्त, आचारदिनकर** आदि। **औपपातिक** के अनुसार ये अष्टमंगल हैं – 1. सोवत्थिय (स्वस्तिक), 2 सिखिच्छ (श्रीवत्स), 3 नन्दिभावना (नन्द्यावर्त), 4 बद्धमाण (वर्धमान), 5 भट्टासण (भद्रासन), 6 कलस (कलश), 7 मसोह (मत्स्य युगुल) तथा 8 दप्पण (दर्पण)।

हाथीगुम्फा–अभिलेख के प्रथम तीन मंगल चिह्नों की गणना **औपपातिक** सूत्र में की गई है। **आचारदिनकर** में इनका महत्व इस प्रकार दर्शाया गया है–स्वस्तिक शांति का बोधक है, श्रीवत्स जिन के हृदय से प्रस्फुटित कैवल्य (ज्ञान) का साक्षात् स्वरूप है और नन्द्यावर्त नवनिधियों का प्रतीक है (दृष्टव्य – यू.पी.शाह, **Studies in Jaina Art,** वाराणसी, पुनर्मुद्रण 1998, पृ. 111, तथा ए. घोष द्वारा सम्पादित **Jaina Art and Architecture,** तृतीय खण्ड, नई दिल्ली, 1975, पृ. 471)।

हमारे देश में प्राचीन काल में स्वस्तिक और श्रीवत्स सर्वाधिक मांगलिक चिह्न माने गए थे। इनके अंकन सिन्धुघाटी–सभ्यता काल से ही मिलने लगते हैं। स्वस्तिक वैदिक शब्द 'स्वस्ति' से बना है। स्वस्ति शब्द

का अर्थ क्षेम, कल्याण, सुख, आनन्द आदि होता है और श्रीवत्स लक्ष्मी का प्रतीक होने से (श्री=लक्ष्मी, वत्स=पुत्र या प्रतीक) सुख, सौभाग्य, सम्पत्ति, यश आदि का प्रतीक माना गया था। अभिलेखों के अतिरिक्त प्रारंभिक जैन–बौद्ध कला में भी इन दोनों को श्रद्धा के साथ उत्कीर्ण किया गया था। 'स्वस्ति–श्री' इन्हीं दोनों मंगलों का संक्षिप्तीकरण है जो 'स्वस्तिवाचन' के रूप में वैदिक युग से आज तक प्रचलित है। जिस प्रकार साहित्य में, विशेषकर अष्टमंगलों की सूचियों में दोनों का एक साथ उल्लेख मिलता है, उसी प्रकार भारतीय कला में, विशेषकर अभिलेखों में, स्वस्तिक और श्रीवत्स साथ–साथ रूपायित किए गए हैं। हाथीगुम्फा–अभिलेख, मध्यप्रदेश के गुना जनपद में चन्देरी स्थित शिलाभिलेख तथा मथुरा के दो कुषाणकालीन प्रस्तर–अभिलेख इसके कुछ उदाहरण हैं। आगे चलकर अनेक गुप्तकालीन अभिलेखों के प्रारंभ में 'स्वस्ति–श्री', 'ओम् स्वस्ति–श्री' अथवा 'ओम् स्वस्ति' लिखा मिलता है। वस्तुतः स्वस्ति–श्री के उच्चारण (स्वस्तिवाचन) से जिस मांगलिकता की आकांक्षा की जाती थी, उसी को प्राचीन भारतीय अभिलेखों में चाक्षुष बनाने के लिए स्वस्तिक और श्रीवत्स के चिह्न बनाए जाते थे। आगे चलकर ग्रंथ, पत्रादि लिखते समय सबसे पहले इन मांगलिक चिह्नों को अक्षर–रूप देने के लिए 'स्वस्ति–श्री' लिख दिया जाने लगा। इसका कारण यह था कि सभी लोग स्वस्तिक और श्रीवत्स के चिह्न नहीं बना सकते थे (आज भी समाज में श्रीवत्स और उसकी आकृति को जानने वाले लोग न के बराबर हैं)। पत्र के प्रारंभ में 'स्वस्ति–श्री' अथवा 'ओम स्वस्ति–श्री' लिखने की परम्परा देश को स्वाधीनता मिलने के बाद तक प्रचलित थी।

नन्दिपद अथवा नन्द्यावर्त भी प्रारंभिक जैन तथा बौद्ध कला में भी उकेरे गए थे। अन्तर मात्र इतना था कि जैन कला में उन्हें नन्दिपद या नन्द्यावर्त और बौद्ध कला में त्रिरत्न कहा जाता था। मध्यकाल तक आते–आते जैन मतावलम्बियों के नन्दयावर्त का स्वरूप बदलकर आलंकारिक स्वस्तिक (Labyrinthine Svástika) हो गया। इसीलिए मथुरा के जैन आयागपट्टों पर कतिपय विद्वान नन्द्यावर्त का अभाव पाते हैं, परन्तु वे उकेरे गए त्रिरत्न जैसे चिह्न को कोई नाम नहीं दे पाते हैं। खारवेल के समय भी नन्द्यावर्त का प्राचीन स्वरूप ही प्रचलन में था जो हाथीगुम्फा अभिलेख में दर्शनीय है। यही नहीं खण्डगिरि की अनन्त–गुम्फा के कक्ष की पिछली भित्ति पर सीढ़ीनुमा पीठिका पर नन्द्यावर्त अपने प्राचीन स्वरूप में प्रतिष्ठित किया गया है और उसके दोनों पार्श्वो में उसी प्रकार की उच्च पीठिका पर

इन्द्रध्वज, श्रीवत्स तथा बिना पीठिका वाले स्वस्तिक के भी संपूज्य चिह्न उकेरे गए हैं।

खारवेल के हाथीगुम्फा–अभिलेख के अन्त में चौथा मंगल चिह्न इन्द्रध्वज या इन्द्रयष्टि का है। यह भी एक मांगलिक चिह्न है। अन्य मंगल चिह्नों के समान इसका भी अंकन छठी शती ई0पू0 से ही पंचमार्क सिक्कों पर और फिर जन–जातीय सिक्कों पर, शुंग–सातवाहन कालीन उत्कीर्ण शिल्प में और पूर्वी भारत से लेकर पश्चिमी घाट तक पाए गए जैन–बौद्ध अभिलेखों में पाया गया है। वेदिका से परिमण्डित इसका स्वरूप स्वयमेव अपनी मांगलिकता–पूजनीयता प्रकट कर देता है। इन्द्रध्वज को जैन ग्रंथों के अष्टमंगलों में भले ही स्थान न मिला हो, परन्तु मथुरा के कंकाली टीले से उत्खनित आयागपट्टों पर उत्कीर्ण अष्टमंगलों में उसकी भी उपस्थिति दर्शनीय है। इसे खण्डगिरि की अनन्तगुम्फा की कक्ष–भित्तिका पर उकेरे जाने का उल्लेख पहले किया जा चुका है। जैन वाङ्मय में 'सिद्धायतन' (जैन मंदिर) का बड़ा महत्व है। **जीवाजीवाभिगम** सूत्र (3–2–137 तथा आगे) में इसका विस्तृत वर्णन है। सिद्धायतन की तीन दिशाओं में प्रवेश द्वारों के सम्मुख मुखमण्डप, उनके समक्ष प्रेक्षागृहमण्डप, उनके समक्ष चैत्य–स्तूप, प्रत्येक चैत्य–स्तूप के आगे चैत्य वृक्ष और चैत्य वृक्ष के आगे इन्द्रध्वज से प्रतिष्ठापित मणिपीठिका का उल्लेख है। जिनसेन कृत **आदिपुराण** (अध्याय 22) में मानस्तम्भ की चर्चा है जिसे इन्द्रध्वज भी कहा जाता है। दिगम्बर जैन मतावलम्बियों के मन्दिरों के समक्ष मानस्तम्भ की परम्परा अधिक लोकप्रिय है और देश भर में पाई जाती है। (दृष्टव्य यू.पी.शाह – Studies in Jaina Art पृ. 57–60)। अस्तु स्पष्ट है कि इन्द्रध्वज भी एक मान्य और प्रचलित जैन मंगल है।

वस्तुतः खारवेल जैन धर्मावलम्बी राजा होने के साथ–साथ जैन धर्म में विशेष रुचि रखने वाला व्यक्ति था। उसके अभिलेख में उत्कीर्ण ये चारो मंगल चिह्न इस तथ्य के साक्ष्य के रूप में देखे जाने चाहिए। ये चिह्न मात्र अभिलेख के प्रारंभ करने, समाप्त करने अथवा उसकी शोभा बढ़ाने के उद्‌देश्य से नहीं उत्कीर्ण किए गए थे। इन मंगल चिह्नों की उपस्थिति मांगलिकता की संवृद्धि के लिए अभीप्सित थी।

चित्र परिचय

1 खारवेल का हाथीगुम्फा–अभिलेख, उदयगिरि

2 सिंहगुम्फा–अभिलेख, खण्डगिरि, इन्द्रध्वज

3 वैकुण्ठगुम्फा–अभिलेख, खण्डगिरि, इन्द्रध्वज

4 भाजा (महाराष्ट्र), पश्चिमी घाट, बौद्ध गुहाभिलेख, श्रीवत्स

5 जुन्नार (महाराष्ट्र), पश्चिमी घाट, बौद्ध गुहाभिलेख, श्रीवत्स

6–7 अमरावती–स्तूप, बौद्ध अभिलेख, छत्र–भूषित श्रीवत्स एवं नन्द्यावर्त

8–9 मथुरा, प्रस्तर–अभिलेख, श्रीवत्स एवं स्वस्तिक

10 बोग़ाज़कुई, टर्की, हित्ती अभिलेख, 14वीं शती ई.पू., श्रीवत्स

11 मैनहाई (कौशाम्बी), स्तम्भ–शीर्ष शिल्प, शुंगकाल, श्रीवत्स

12 भाजा, गुहाभिलेख, द्वितीय शती ई.पू., श्रीवत्स

13 जुन्नार, गुहाभिलेख, द्वितीय शती ई.पू., श्रीवत्स

14 पौनी (भण्डारा, महाराष्ट्र), स्तूप–शिल्प, प्रथम शती ई.पू., श्रीवत्स

15–18 खण्डगिरि, अनन्तगुम्फा कक्ष की भित्ति पर उत्कीर्ण सात चिह्न, बीच में नन्दयावर्त, पाश्वों में तीन–तीन (इन्द्रध्वज, श्रीवत्स तथा स्वस्तिक)।
ये एक पार्श्व के चिह्न हैं, दूसरे पार्श्व में भी यही तीन चिह्न हैं।

19 उदयगिरि, रानीगुम्फा, द्वार शीर्ष, श्रीवत्स

20 उदयगिरि, गणेशगुम्फा, द्वार शीर्ष, श्रीवत्स

21 खण्डगिरि, अनन्तगुम्फा, द्वार शीर्ष, श्रीवत्स

22 उदयगिरि, मन्तपुरीगुम्फा, द्वार शीर्ष, ऊपर नन्द्यावर्त और नीचे श्रीवत्स

(श्रीवत्स चिह्न लगभग 3000 वर्षों में अपने भिन्न–भिन्न रूपों में अंकित किया गया था। इस भिन्नता में देश और काल के साथ–साथ कलाकार की शैली का भी योगदान रहा। बहुत से स्वरूप ऐसे हैं जो केवल स्थान–विशेष के कारण ही श्रीवत्स माने गए। यहां केवल कतिपय स्वरूप ही दृष्टव्य हैं।)

मंगल चिह्नों के विस्तृत अध्ययन के लिए दृष्टव्य लेखक की निम्नलिखित पुस्तकें –

1 **श्रीवत्स : भारतीय कला का एक मांगलिक प्रतीक, इलाहाबाद, 1983**

2 **Nandyavarta : An Auspicious Symbol in Indian Art,** Allahabad, 1991

3 भारतीय कला–प्रतीक, इलाहाबाद, 1989, 1999

4 स्वस्तिक : भारतीय जीवन का एक विलक्षण प्रतीक, पटना संग्रहालय, 2005

5 **Pratika-Sri : Studies in Indian Art Symbols,** Kasganj, U.P., 2011

1–बी, स्ट्रीट 24, सेक्टर–9, भिलाई–490009, (छत्तीसगढ़)

(हमारी पुस्तक The Hathigumha Inscription of Kharavela and the Bhabru Edict of Asoka - A Critical Study, द्वि. सं., 2000, के पृ. 72 पर अभिलेख में अंकित मांगलिक चिह्नों का उल्लेख किया गया है और पृ. 136 पर उनका चित्रांकन भी दिया गया है।

अभिलेख की पंक्ति 1–2 के प्रारम्भ में चिह्न को हमने श्रीवत्स न कहकर राजमुकुट का प्रतीक माना है और अंतिम पंक्ति 17 के अन्त में चिह्न को इन्द्रध्वज या इन्द्रयष्टि न कहकर राज्य–ध्वज का प्रतीक माना है क्योंकि यह अभिलेख एक शासकीय अभिलेख था, मात्र धार्मिक नहीं, अतः इसमें राज्य–चिह्नों का होना स्वाभाविक था। पंक्ति 3–5 के प्रारम्भ में स्वस्तिक और पंक्ति 3 के अंत में नन्दिपद मांगलिक चिह्न हैं जो विषयवस्तु के लिए प्रासंगिक हैं।

हमारे मित्र विद्वद्वर डॉ. श्रीवास्तव ने इस लेख में मांगलिक चिह्नों पर विशद प्रकाश डाला है, जो अभिनन्दनीय है। — डॉ. शशि कान्त)

मंगल चिह्न

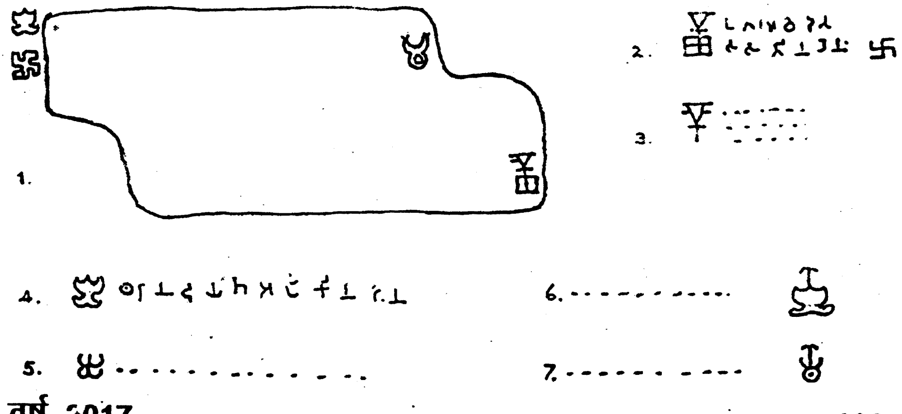

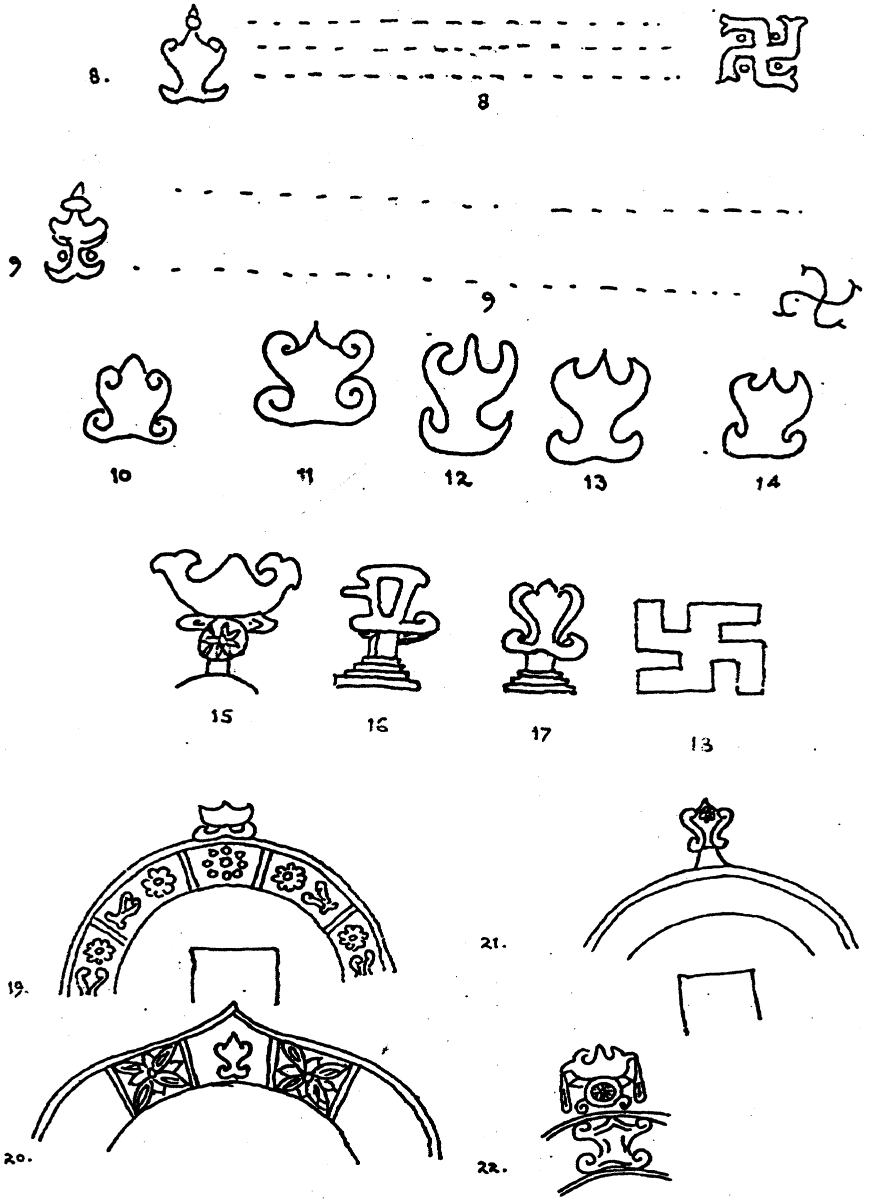
8.
8
9
9
10
11
12
13
14
15
16
17
13
19.
21.
20.
22.

हिन्दुत्व की हवा में कहीं जैनत्व न खो जाये

— डॉ. अनिल कुमार जैन

पिछले कुछ वर्षो से **हिन्दुत्व की हवा** इतनी तेजी से बह रही है कि उसने सभी को अपनी चपेट में ले लिया है। इसका सबसे अधिक प्रभाव जैनत्व पर पड़ा है। यह असर इतना गहरा हुआ कि सामान्य जैन बन्धु ही नहीं बल्कि जैन सन्त भी इसकी चपेट में आ गए हैं और जाने या अनजाने में वे भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दुत्व के गुणगान में लग गए हैं, बिना यह समझे कि इससे जैनत्व को कितना नुकसान हो रहा है। ऐसी स्थिति में आशंकित होना स्वाभाविक है कि कहीं जैनत्व के अस्तित्व को तो खतरा नहीं है।

हिन्दुत्व की अलग–अलग मौके पर अलग–अलग तरीके से व्याख्या की जाती रही है। जिस समय जिस व्याख्या से राजनीतिक लाभ हो वैसी ही व्याख्या कर ली जाती है। हिन्दुत्व को एक बार हिन्दु संस्कृति से जोड़ा जाता है तो अगली बार **गाय, गंगा और गीता** से जोड़ा जाता है। कभी वैदिक गणित और संस्कृत से जोड़ा जाता है तो कभी गैर–भारतीय धर्मो को हिन्दुत्व के लिए खतरा बताकर भावात्मक तरीके से उकसाया जाता है।

हम जैन अहिंसा के पुजारी हैं, अतः जहां भी **जीव दया** की बात आती है तो हम भावात्मक तरीके से उस ओर आकर्षित हो जाते हैं और जो इस मुद्दे को उठाता है, हम उसके प्रशंसक हो जाते हैं। हम यह सोच भी नहीं पाते कि जो कुछ कहा जा रहा है उसके पीछे सत्यता क्या है। इसके प्रति गम्भीरता है भी या नहीं। या फिर मात्र भावात्मक तरीके से ब्लैकमेल तो नहीं किया जा रहा है? जैनों को सबसे अधिक जो बात लुभाती है वह है गौ–रक्षा की। लेकिन इसकी वास्तविकता को समझना होगा।

जैनत्व को कैसे परिभाषित किया जाये, यह एक प्रश्न हो सकता है। मैं समझता हूं कि जैन सिद्धांतों, और जैन तीर्थो व संस्थाओं का बिना किसी हस्तक्षेप के संरक्षण व संवर्धन जैनत्व में निहित है। लेकिन हिन्दुत्व की तेज हवा में हमारे सैद्धांतिक विश्वास कमजोर पड़ने लगे हैं, हमारे जैन तीर्थो व संस्थाओं को नुकसान पहुंचाया जा रहा है। हिन्दुत्व और जैनत्व में अन्तर स्पष्ट है, उसे भी समझना होगा। हिन्दुत्ववादी कहते हैं कि मात्र गौ–माता की रक्षा करो जबकि जैन धर्म कहता है कि अकेले गाय की नहीं बल्कि सभी जीवों (जिसमें बैल, सांड आदि तथा सभी छोटे जीव भी

सम्मलित हैं) की रक्षा करो। हिन्दुत्ववादी कहते हैं कि मात्र गंगा बचाओ, जैन कहते हैं कि जल भी जीव है अतः मात्र गंगा को ही नहीं बल्कि सभी नदियों की रक्षा करो। हिन्दुत्ववादी कहते हैं कि **गीता** सर्वोपरि धार्मिक ग्रन्थ है, जैन कहते हैं कि जैन आगम, देव व गुरु का श्रद्धान ही सम्यक् दर्शन है। जैन कहते हैं कि हमारे तीर्थ स्थानों व संस्थाओं में हस्तक्षेप न हो, हिन्दुत्ववादी कहते हैं कि जैन भी हिन्दु धर्म का हिस्सा हैं, अतः हिन्दुओं का हस्तक्षेप सही है।

कोई कह सकता है कि चलो आज गायों की रक्षा की बात कही जा रही है, कल को सब जीवों की रक्षा की बात भी कही जायेगी। अतः हमको **गौ–रक्षा** का समर्थन करना चाहिए। बस इसी बात पर जैन लोग पिघल जाते हैं बिना यह समझे कि वास्तविकता वह नहीं है जो कहा जा रहा है। हमें मात्र भावात्मक तरीके से अपनी ओर आकर्षित किया जा रहा है। वास्तविकता यह है कि राजनेता गौ–रक्षा को लेकर भी तहे दिल से बिल्कुल भी गम्भीर नहीं हैं। यदि वे गम्भीर होते तो अलग–अलग स्थानों पर अलग–अलग बयान क्यों देते? जहां अहिंसक जैन अधिक हैं वहां उन्हें अपने खेमें में लेने के लिए गौ–रक्षा की बात कह दी जाती है। दूसरे दिन राज्यों के मुखिया गौ–मांस खाने वालों को खुश करने के लिए कहते हैं कि राज्य में गौ–मांस की कमी नहीं होने दी जायेगी। उसके कुछ दिन बाद कह दिया जाता है कि गौ–मांस प्रतिबन्ध पर पुनर्विचार किया जायेगा। इसके पश्चात् केन्द्रीय स्तर पर घोषणा कर दी जाती है कि चमड़े के व्यापार को बढ़ाने के लिए चमड़े पर टैक्स कम किया जायेगा, तथा मांस के निर्यात को बढ़ाया जायेगा। यह सब दोगलापन नहीं है तो और क्या है? अगर राजनेता इस मामले में गम्भीर हैं तो एक ही बात क्यों नहीं कहते? अहिंसक समाज को लुभाने के लिए गौ–रक्षा की बात कर दी जब कि वास्तविकता यह है कि अधिक विदेशी धन पाने के लालच में मांस और चमड़े के निर्यात को बढ़ावा दिया जा रहा है।

जैन सन्तों की तरफ से एक बार यह प्रयास किया गया कि सब लोग मांस निर्यात के खिलाफ आवाज उठायें। एक नारा भी दिया कि 'मांस निर्यात बन्द हो'। सरकारें बदलीं, लेकिन इस संदर्भ में परिस्थितियां नहीं। बल्कि मांस और चमड़े का निर्यात और अधिक बढ़ गया है। जब गौ–वंश का वध नहीं हो रहा है तो और अधिक गौ–मास कहां से आ रहा है?

हिन्दुत्ववादी वैदिक **गणित** की बात तो करते हैं लेकिन जैनाचार्यो द्वारा गणित के विकास में किये गये योगदान का नाम तक नहीं लेते। जो गणित के अध्येता हैं वे इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि आचार्य

वीरसेन, महावीराचार्य आदि अनेकों जैन आचार्यो का गणित के विकास में बहुमूल्य योगदान रहा है, वैदिक गणित से कहीं बहुत अधिक।

यदि हम जैन तीर्थो एवं मन्दिरों की बात करें तो आज उन पर भी राजनेताओं की मौन स्वीकृति के कारण हिन्दुओं द्वारा अनाधिकृत कब्जा किया जा रहा है। **जैन तीर्थ एवं मन्दिर** हमारी धार्मिक एवं सांस्कृतिक धरोहर हैं। पिछले लगभग 20–30 सालों में हमारे देखते–देखते गुजरात के गिरनार तीर्थ पर हिन्दुओं का लगभग पूरा कब्जा हो गया है जब कि कानूनी व्यवस्था यह है कि सन् 1947 में तीर्थो की जैसी स्थिति थी वैसी ही रखी जाये। गुजरात के ही पालीताना तीर्थ के बारे में कोई सपने में भी नहीं सोच सकता कि कभी कोई हिन्दु उस पर अपने अधिकार की बात करेगा। जून 2017 में हिन्दुवादी संगठनों ने आंदोलन किया तथा पालीताना में मोर्चा निकाला कि यह मात्र जैनों का ही नहीं है, हिन्दुओं का भी है, अतः इस पर उनका भी अधिकार है। बिहार के मन्दारगिरि का भी यही हाल है। अब तो तीर्थराज शिखरजी भी इसकी चपेट में आ रहा है।

अहमदाबाद में पिछले लगभग 2 वर्ष पूर्व सड़क चौड़ी करने के नाम पर साबरमती के एक प्राचीन चिन्तामणी पार्श्वनाथ श्वेताम्बर जैन मन्दिर को आधा तुड़वा दिया गया, जब कि इसी दौरान इस मन्दिर के निकट सड़क के किनारे तीन नये हिन्दू मन्दिरों का निर्माण हो गया है। उनमें से एक तो काफी बड़ा बना लिया गया है। साबरमती से ही थोड़ी दूर पर पार्श्वनाथ नगर में एक पार्श्वनाथ श्वेताम्बर मन्दिर है। यह लगभग 40 वर्ष पुराना है। पिछले लगभग 2 वर्ष में इसके ठीक सामने हिन्दुओं ने एक हनुमान जी का मन्दिर बना दिया है, वह भी अनाधिकृत। जैन मन्दिर में मात्र प्रवेश करने भर तक की जगह छोड़ी है। लाउड–स्पीकर इतना तेज चलता है कि जैन लोग ठीक से पूजा–अर्चना भी न कर सकें। यह तो कुछ ही उदाहरण हैं, और भी अनेकों हो सकते हैं। यह सब उन क्षेत्रीय राजनेताओं की स्वीकृति से होता है जो हिन्दुत्व के पक्षधर हैं।

जैनों की अनेकों **शैक्षणिक संस्थायें** भी हैं। हांलाकि जैनों को अल्प संख्यक माना गया है, अतः इन शैक्षणिक संस्थाओं को चलाने का स्वतंत्र अधिकार जैनों को मिलना चाहिए। लेकिन इन शिक्षण संस्थाओं में से अधिकतर में जैन प्राध्यापक व प्राचार्य तक नहीं हैं – कहीं हम जैनों की कमी के कारण, कहीं हिन्दु पक्षपात के कारण।

इतना सब होने पर भी हम भोले–भाले जैन हिन्दुत्व की बात आने पर रोमांचित हो जाते हैं और जोर–जोर से तालियां पीटते हैं, साथ ही

हिन्दुत्व का गुणगान करते भी नहीं थकते। गौ, गंगा और **गीता** की बात आती है तो हम इस बहाव में बह जाते हैं। आजकल व्हाट्सएप (WhatsApp) का जमाना है। मैंने पाया है कि कुछ जैन अपने व्हाट्सएप की दैनिक शुरूआत ही 'जय श्री राम', 'जय गौ माता,' 'जय गंगा' आदि से करने लग गये हैं और 'जय जिनेन्द्र' या 'जय महावीर' भूल गए हैं। हिन्दू त्यौहारों, जैसे कृष्ण जन्माष्टमी, नवरात्रि आदि पर भी भक्ति प्रदर्शित करते हैं। गणेश जी को तो अनेकों ने अपना लिया है। इस तरह धीरे-धीरे जैन लोग हिन्दु धर्म की ओर आकर्षित हो रहे हैं। जैन लोग जैन बने रहेंगे तो जैन धर्म बचेगा, जैनत्व बचेगा। यदि ये लोग ही जैनत्व से विमुख हो गए तो जैन धर्म कैसे बचेगा?

जैन समाज के लोग तो भोले हैं, लेकिन दुःख तो तब होता है जब **जैन सन्त** भी हिन्दुत्व को आशीर्वाद देते नहीं थकते। राजनेता उनके साथ फोटो खिचवा लेते हैं तो हम तथा हमारे सन्त खुश हो जाते हैं। वस्तुतः राजनेता तो अपना राजनीतिक स्वार्थ सिद्ध करते हैं उन फोटो को समाचार-पत्र और टेलीविजन पर दिखाकर और हम समझते हैं कि वे जैन धर्म के शुभ चिन्तक हैं।

कभी जैनों को यह कहकर डराया जाता है कि मुसलमान पूरे देश पर कब्जा कर लेंगे तो जैन धर्म नष्ट हो जायेगा। मात्र हिन्दु ही जैन धर्म की रक्षा कर सकते हैं। इतिहास गवाह है कि जैनों का जितना अधिक नुकसान हिन्दुत्ववादी तीव्र प्रवाह के कारण हुआ उतना मुसलमान शासकों द्वारा या अन्य आक्रान्ताओं द्वारा नहीं हुआ। चाहे वह समय शंकराचार्य का हो या पं. टोडरमल का, चाहे वह बदरीनाथ-तीर्थ हो या तिरुपति-बाला-जी (बदरीनाथ में ऋषभ देव की मूर्ति है जब कि तिरुपति में नेमिनाथ भगवान की), सर्वाधिक नुकसान **हिन्दु अतिवादिता** के कारण हुआ। बौद्ध अतिवादिता का भी जैनों को नुकसान उठाना पड़ा है, निकलंक उसके एक उदाहरण हैं। आज भी स्थिति वैसी ही है, तरीका बदल गया है।

आये दिन **इतिहास की पाठ्य पुस्तकों** में भी छेड़छाड़ होती रहती है। कभी जैन धर्म को हिन्दु धर्म का हिस्सा बता दिया जाता है, कभी भगवान महावीर को जैन धर्म का संस्थापक। कभी भगवान महावीर का गलत परिचय छप जाता है तो कभी जैन सिद्धांतों में परिवर्तन कर दिया जाता है, जैन सिद्धांतों को विस्तार पूर्वक नहीं छापा जाता है। यह सब होता है पुस्तक लिखने वाले की हिन्दुवादी मानसिकता और हिन्दुवादी संगठनों के समर्थन के कारण। आये दिन जैन बुद्धिजीवी इन मुद्दों पर

अपनी आवाज उठाते रहते हैं। कभी आंशिक सफलता मिल जाती है और कभी नहीं।

आप किसी भी राजनीतिक पार्टी के समर्थक हों, आप किसी भी राजनेता को वोट दें, इसमें किसी को क्या आपत्ति? यह आपका अपना व्यक्तिगत अधिकार है। लेकिन यह सोचकर न करें कि वह जैनत्व का हितैषी और शुभचिन्तक है। वह तो हमेशा बहु–संख्यक के साथ ही रहेगा; यदि ऐसा नहीं होता तो जैन तीर्थ व मन्दिर आज सुरक्षित होते, उन्हें कोई नुकसान नहीं पहुंचाया जाता। इतिहास की पाठ्य पुस्तकों में जैन धर्म के बारे में न्यायोचित कथन होता। सिर्फ गौ–मांस पर ही नहीं बल्कि सभी जीवों के मांस पर रोक की बात कही जाती; कम–से–कम मांस निर्यात को तो बन्द करने की बात उठती जैसा कि हमारे जैनाचार्य ने अपील की थी तथा एक नारा भी दिया था – 'मांस निर्यात बन्द करो'। कम–से–कम मांस निर्यात में तो कमी आती जबकि हो रहा है उल्टा, मांस निर्यात दिनोदिन बढ़ रहा है।

मेरा सम्पूर्ण जैन समाज से, विशेषकर सभी समुदायों के जैन सन्तों से, विनम्र निवेदन है कि परिस्थितियों को समझें तथा जैनत्व की रक्षा का यथायोग्य प्रयास करें। राजनेताओं के साथ फोटो प्रकाशित हो जाने भर से सन्तुष्ट न हो जायें, ऐसी फोटोओं से गलत सन्देश जाता है कि सन्त महात्मा इनके विचारों और क्रियाकलापों से सहमत हैं। मैं तो निवेदन करूंगा कि इससे बचें तो और भी अच्छा है। किसी भी प्रवाह में जैनत्व को बह ना जाने दें। जैनों में जैनत्व की भावना जीवित रहेगी तभी जैन धर्म भी सुरक्षित रह सकेगा। जैन सन्तों से विनम्र अनुरोध है कि वे जैन लोगों में जैनत्व की भावना को प्रबल करने के प्रयास करें; उन्हें जैन धर्म, जैन गुरु तथा जैन तीर्थंकरों के प्रति आकर्षित होने के लिए प्रेरित करें।

फ्लैट नं. 401, प्रामिनेन्स अपार्टमेंट्स, डी–197,
मोदी पार्क के सामने, मोती मार्ग, बापू नगर, जयपुर–302015

(विस्मय की बात है कि सभी जैन पत्र–पत्रिकाएं इस विषय पर मौन हैं – कदाचित् प्रखर हिन्दुत्ववाद से सहमे हुए हैं। – सं.)

✧✧✧

अम्बर की आंखों में कोई सूरज है, न सितारा

— श्री जतनलाल रामपुरिया

जैन श्वेताम्बर तेरापंथ धर्मसंघ के आचार्य परम श्रद्धेय महाश्रमण जी ने गत क्षमापना दिवस के अवसर पर अपने प्रवचन के मध्य एक दिवस पर संवत्सरी महापर्व को मनाये जाने की इच्छा व्यक्त करते हुए कहा— "जैन श्वेताम्बर तेरापंथ धर्मसंघ, साधुमार्गी, वर्धमान स्थानकवासी श्रमण संघ— ये तीन सम्प्रदाय एक तिथि को संवत्सरी मनाएं, ऐसी मेरी भावना है। इस विषय में साधुमार्गी सम्प्रदाय के आचार्य श्री रामलाल जी महाराज व वर्धमान स्थानकवासी श्रमण संघ के आचार्य श्री शिवमुनि महाराज दोनों सह चिन्तनपूर्वक एक तिथि का प्रारूप प्रस्तुत करें। उस प्रारूप में विशेष बाधा नहीं होगी तो जैन श्वेताम्बर तेरापंथ उसे स्वीकार कर लेगा। किसी कारण से उन दोनों आचार्यो में एकमत न हो सके तो दोनों आचार्य अपने–अपने प्रारूप हमारे पास उपलब्ध करा दें। उनमें जो प्रारूप विशेष बाधा के बिना हमारी मान्यता के ज्यादा अनुकूल होगा, जैन श्वेताम्बर तेरापंथ उसे स्वीकार कर लेगा। मैं यहां खड़े–खड़े दोनों सम्माननीय आचार्यो से अनुरोध करता हूँ कि वे यथासंभव इस दिशा में प्रयास करें, ताकि हम संवत्सरी की एकता की दिशा में आगे बढ़ सकें।"

सौहार्द, समन्वय और सम्पूर्ण जैन समाज के वृहत् हितों को समर्पित उनके अन्तर्मन से निःसृत ये शब्द इन पंक्तियों को लिखने की प्रेरणा बने। बात को शुरू करूं इससे पूर्व कविवर कन्हैयालाल जी सेठिया की एक कविता का कुछ अंश यहां उद्धृत करता हूं —

अम्बर की आंखों में
कोई सूरज है, न सितारा
धरती की छाती पर
कोई धारा है, न किनारा।
यह सब तो गति की अपने ही हित
रची हुई परिभाषा
जो है एक, अनेक उसे बस
कहने की अभिलाषा।

सेठिया जी ने किस संदर्भ में इन पंक्तियों को लिखा, नहीं जानता पर आचार्य प्रवर के उद्गार और यह क्षमापना दिवस किस संदर्भ में इन पंक्तियों को पढ़ रहा है, जानता हूं।

भगवान महावीर की धर्म–प्ररूपणा मुनि गौतम के मन को उद्वेलित करती। वे प्रश्नों की झड़ी लगा देते –"क्यों होता है भगवन ऐसा?" मुनि गौतम के इन प्रश्नों का उतना ही महत्व है जितना स्वयं भगवान महावीर के ज्ञान का। श्रद्धा और जिज्ञासा, श्रद्धा और शोध, श्रद्धा और स्वतंत्र चिन्तन के बीच उनके इस गहन संतुलन ने जैन–धर्म को अपने आप में एक पूर्ण विज्ञान का रूप दिया। जैन धर्म हिंसा के विविध पहलुओं की सूक्ष्मतम मीमांसा और उससे विरति का धर्म बना, अनेक में एकत्व के सूत्र खोजने का धर्म बना, साधन और साध्य की समरस पवित्रता का धर्म बना। जैन–धर्म सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र की रत्नत्रयी का धर्म बना।

समय बीता। यह उसका स्वभाव है पर समय बीतने के साथ मूलभूत बातों में हमारी आस्था भी बीते, यह स्वभाव की नहीं, विभाव की बात है पर घटा कुछ ऐसा ही। अपनी गति के हित, कुछ के मन में जैन–धर्म जो एक था उसे अनेक कहने की अभिलाषा जागी। फलस्वरूप पहले धर्म सम्प्रदायों में विभक्त हुआ। फिर मन बंटे। अनेकान्त की जगह एकान्त ने ली और सब अपने–अपने राग में डूब गये। एक ने दिगम्बरत्व में सम्यक् दर्शन को देखा, दूसरे ने मुंहपत्ती की लंबाई–चौड़ाई में सम्यक् ज्ञान की परिभाषा पढ़ी, तीसरे ने रजोहरण को सम्यक् चरित्र का सोपान समझा। स्थूल की परिक्रमा में ही सब उलझ गए। सूक्ष्म पर से दृष्टि हट गई। बाह्याचार ने ही जब प्रमुखता ले ली तो चेतना विकेन्द्रित हुई और दिग्भ्रमित कदम लक्ष्य से भटक गये।

जैन–धर्म अपने ही घर में अपनी पहचान खोता रहा – जिज्ञासाएं जो एक बार सोयी तो फिर जागी ही नहीं। गौतम फिर नहीं जन्मे। जो जन्मे उन्हें अपने दायित्व का बोध नहीं हुआ। जिन्हें हुआ उन्होंने उसका निर्वाह नहीं किया। किसी ने नहीं पूछा कि अखण्ड को छोड़कर खण्ड को समर्पित होने में कौन–सी सुरक्षा है? किसी ने नहीं पूछा कि विराट के राजपथ को छोड़कर सम्प्रदायों की टेढ़ी–मेढ़ी पगडंडियों पर चलने में मूल धर्म का कौन–सा हित है? किसी ने नहीं पूछा कि अनेकान्त के आलोक को छोड़कर एकान्त के अंधेरे को वरण करने में भगवान महावीर की कौन–सी उपासना है? किसी ने पूछा ही नहीं।

पूछने का समय तो बीत गया। करने का समय अब भी है।

जैन–धर्म के क्षितिज पर एक नई आभा देखने को लालायित, कुछ नई संभावनाओं को अपने में संजोये, कुछ नई आशाओं को अपने मन में पाले चतुर्मास की यह मंगल वेला हमें जागने को कह रही है, कुछ करने

को कह रही है। सुनें इसकी आवाज — *अम्बर की आंखों में कोई सूरज है, न सितारा।* भगवान महावीर की दृष्टि में भी कोई श्वेताम्बर नहीं, कोई दिगम्बर नहीं। सब एक हैं। सिर्फ जैन हैं। केवल जैन। तो जागें हम सब एक साथ और बढ़ें एक ही जीवन शैली की ओर।

इंद्रधनुष आकाशपट्ट पर यों ही नहीं उभरता। हम उसे केवल देखते हैं अपलक। पल भर के लिए उसे पलकों में बंद कर लें तो उसके दिव्य संदेश को भी समझ सकेंगे। उसके सब रंग अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं, पर जिस अनूठी सुषमा को निहारने के लिए दृष्टि ऊपर की ओर उठती है, जिस अलौकिक सौंदर्य को देख कर हमारा तन और मन पुलकित होता है, उसका सृजन उसके सब रंग मिल कर ही कर पाते हैं। हम भी अपनी प्रतिनिधि संस्थाओं के माध्यम से सब एक साथ मिल–बैठकर जैन धर्म को ऐसा रूप दें जिसे गर्व के साथ सम्मिलित स्वर में सबके समक्ष रख सकें। लंबे काल तक हम एक ही करवट सोए हैं। अब उसे बदलें, क्षितिज पर सजे इन्द्रधनुष की सुषमा को देखें और उसके संवाद को सुनें।

हम अनेकान्त के दर्शन की गहराई में उतरें, उसे आचरण के धरातल पर लायें और आचार्यप्रवर के आह्वान को केवल संवत्सरी पर केंद्रित न मानकर उसे जैन एकता के बड़े क्षितिज पर पढ़ें व उस दिशा में सभी जैनाचार्य सम्मिलित रूप से सकारात्मक दृष्टि के साथ कुछ सोचें।

15,नूरमल लोहिया लेन, कोलकाता–700007

(धार्मिक पर्वों पर एक–मंचीय एकता व्यावहारिक नहीं प्रतीत होती। श्वेताम्बर आम्नाय के आठ–दिवसीय पर्यूषण के बाद दिगम्बर आम्नाय का दस–दिवसीय दशलक्षण प्रारम्भ होता है और दोनों के सावंत्सरीय क्षमापना व क्षमावाणी में दस दिन का अन्तर होता है जिसे दूर नहीं किया जा सकता है – धार्मिक कटिबद्धता इसमें सबसे बड़ी बाधा है। परन्तु महावीर जयन्ती जैसे सामाजिक आयोजन सब आम्नायों द्वारा एक–मंच पर आयोजित किये जा सकते हैं और ऐसे आयोजन जैन समाज की एकता एवं अस्मिता को प्रतिष्ठित करेंगे। 1920–30 के दशकों में 'जैन कुमार सभा' और 'जैन मित्र मंडल' के माध्यम से ऐसे प्रयास मेरठ, आगरा और दिल्ली में किये गये थे जिनमें श्रद्धेय डॉ. ज्योति प्रसाद जैन और उनके अनुज श्री अजित प्रसाद जैन का भी योगदान रहा था। भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव में उन्होंने सभी आम्नायों के प्रतिनिधियों को एक मंच पर लाने का सफल प्रयास किया था। – सं.)

आगे भव्यता, पीछे पिछड़ता जैन समाज

– डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती'

हमारा जैन समाज भव्य है और भव्य है उसकी आयोजनात्मक भव्यता। अभी चातुर्मासों की भव्यता तो हमने देखी ही है, पिच्छि परिवर्तन और नवीन दीक्षाओं की; अब पंचकल्याणकों और महामस्तकाभिषेकों की भव्यता भी दिखाई देने लगी है। हम एक से चौबीस तक, लाख से करोड़ से करोड़ों तक के आयोजन भव्यता के साथ कर रहे हैं, करने की योजना बना रहे हैं। मुझे विश्वास है कि प्रेरक गुरुओं का सान्निध्य और आशीर्वाद इन योजनाओं को भव्यता के साथ सफल भी करवा देगा। हमारी भी शुभकामनाएं हैं।

लेकिन जो भव्यता ऊपर–ऊपर दिखाई दे रही है क्या वह नीचे तक भी है, यह विचारणीय है। आज क्या कारण है कि इतनी भव्यता के बावजूद हमारे तीर्थ–स्थल सुरक्षित नहीं हैं, संरक्षित नहीं हैं? यहां तक कि हमारे तीर्थ–स्थलों पर प्रबंधक एवं पुजारी भी जैन नहीं हैं। गांव से लेकर नगर तक मंदिरों में प्रतिदिन देव दर्शन करने वालों की संख्या घट रही है। इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि अगर धार्मिक आयोजन के साथ निःशुल्क वात्सल्य भोज का आयोजन होता है तो धार्मिक आयोजन से अधिक भीड़ वात्सल्य भोज में दिखाई देती है। भोजन नहीं तो भजन नहीं। भजन करवाना है तो भोजन करवाना जरूरी है।

आज हमारे पास अच्छे स्कूल, कॉलेज नहीं हैं। अच्छे पुस्तकालय नहीं हैं। साधुओं के लिए, विशेष रूप से वृद्ध साधुओं के लिए, आश्रम नहीं हैं। वृद्ध होने पर जिन परिजनों को उन्होंने दीक्षा लेते समय त्याग दिया था उन्हीं को बुलाकर कहा जाता है कि अब इनकी सेवा करो। इस तरह निर्मोही को मोही बनाया जाता है।

अनेक आबालवृद्ध नर–नारी ऐसे हैं जो भीषण बीमारियों से अर्थ के अभाव में प्रतिदिन भगवान से मौत मांग रहे हैं। देश में ऐसा कोई व्यक्ति या संस्था नहीं है जो कहे कि चलो, हम तुम्हारा इलाज करवाते हैं। जो अस्पताल समाज ने बनाए भी हैं उन पर चंद लोगों ने अपनी बपौती बना ली है और वे ना तो कुछ करते हैं और न हटते हैं। वे चाहते हैं कि एम. डी. डॉक्टर भी उन्हें देखकर सलाम ठोके।

उच्च शिक्षा के लिए आज कोटा, पुणे, बैंगलूरू, हैदराबाद, मुम्बई, दिल्ली प्रसिद्ध हैं। किन्तु यहां जैन छात्रों के लिए छात्रावास एवं शुद्ध भोजन की भी व्यवस्था नहीं है। परिणाम यह है कि शाकाहारी एवं मांसाहारी (संयुक्त) भोजनालयों तक में इन्हें भोजन करते हुए देखा जा सकता है। मैकडोनल्ड जैसे रेस्टोरेंट क्या खिलाते हैं?

आज जैनों के नाम हत्या में भी आने लगे हैं। आर्थिक धोखाधड़ी और लव–जिहाद के शिकार भी जैन हो रहे हैं। धार्मिक शिक्षण का अभाव है। मैं भव्यता दिखाने वालों से पूछना चाहता हूं कि इनके लिए आपके पास क्या योजना है?

बंगाल, बिहार, उड़ीसा, महाराष्ट्र, कर्नाटक में अभाव–ग्रस्त जैनों की एक बड़ी संख्या है जिन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार से वंचित रहना पड़ रहा है। इनकी सुध कौन लेगा?

आज साधु तेजी से विहार करते हुए श्रवणबेलगोला की ओर जा रहे हैं। डोली, ट्राई–साइकिल, हाथ–ठेला पर साधु चल रहे हैं। तलुवों में टेप चिपका रखे हैं क्योंकि जल्दी पहुंचना है। ईर्या–पथ–शुद्धि का तो सवाल ही नहीं, वृत्ति परिसंख्यान और समुचित पड़गाहन, दोपहर के सामायिक के लिए भी समय नहीं है। क्या यह भव्यता के लिए दौड़ हमें जैनाचार से दूर नहीं ले जा रही है? ऐसे ही न जाने और कितने प्रश्न हैं जिनके लिए जिम्मेदार हमारी ऊपरी भव्यता है और ग्रासरूट लेवल पर तैयारी का अभाव। हमारे पिछड़ते हुए स्वरूप की चिन्ता कौन करेगा? आइए, हम भी कुछ सोच रहे हैं, आप भी कुछ सोचें।

एल 65, न्यू इन्दिरा नगर, बुरहानपुर, (म.प्र.)

गुणवत्तायुक्त शिक्षा
व शैक्षिक संस्थाओं की आवश्यकता

– श्री प्रफुल्ल पारख

बच्चों को शिक्षित करना प्रत्येक अभिभावक का प्राथमिक एवं महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। परिवर्तनशील युग में शिक्षा जहां नित नए स्वरूप में परिभाषित हो रही है, अभिभावक भी अपनी मेहनत व पसीने की कमाई को अपनी संतानों की शिक्षा पर खर्च कर अब श्रेष्ठ शिक्षण व्यवस्था सुनिश्चित कर रहे हैं, क्योंकि यह पूंजी निवेश उस वृक्ष के बीजारोपण के समान है जो कुछ वर्षो में फल देने वाला है। शिक्षा के क्षेत्र में पूंजी निवेश का अभिप्राय अभिभावकों द्वारा अपनी संतानों के श्रेष्ठ विद्यालयों में शिक्षण पर खर्च करने से भी है और, साथ ही, गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक संस्थानों के कुछ व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा निर्माण से भी है जो परिवर्तनशील युग में समाज की प्राथमिक किन्तु महत्वपूर्ण मांग है। दोनों ही दृष्टिकोणों के मद्देनजर शिक्षण के क्षेत्र में पूंजी निवेश अब अत्यंत ही महत्वपूर्ण हो गया है क्योकि आज के बालक/बालिकाएं आने वाले कल के भाग्य–विधाता हैं।

प्राचीन काल से ही गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का अभिप्राय मनुष्य की संस्कृतिगत उत्कृष्ट जीवन शैली प्राप्ति हेतु संवेदनशीलता में वृद्धि व बोधात्मक विकास से रहा है। वर्तमान युग में नवीन विचारधारओं के तहत भी शिक्षा का अर्थ बालक/बालिकाओं के सम्पूर्ण विकास से है किन्तु यह चिन्तन एवं मंथन का विषय है कि परम्परागत एवं प्रणालीगत तरीकों से संचालित शैक्षिक संस्थाओं में प्रदान किया जा रहा शिक्षण, क्या समय की मांग के अनुरूप सम्पूर्ण एवं परिणामलक्षी है?

जैन समाज के लिए यह गर्व का विषय रहा है कि परोपकार व सेवा की भावना से वह शिक्षण जगत को उन्नत कर समाज व देश निर्माण में रचनात्मक भूमिका अदा करता रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व से लेकर अब तक अनेक राज्यों में जैन समाज द्वारा शैक्षिक संस्थाओं का संचालन वृहद् स्तर पर हो रहा है, फलस्वरूप वह सदियों से शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी है। किन्तु इस अग्रगण्य स्थिति पर बने रहने हेतु परोपकार की प्रणालिका से कुछ हटकर अब गुणवत्तापूर्ण प्रीमियर शिक्षण संस्थाओं की स्थापना व उनके कुशल संचालन से बदलती सामाजिक शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए राष्ट्र निर्माण में सहभागिता आवश्यक

है। हमारी भावी पीढ़ियों को संवेदनशील विवेकपूर्ण बनाने के आशय से उन्हें गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने का उत्तरदायित्व हमें अब स्वीकारना ही होगा। यदि ऐसा कर सके तो युवाओं के इस देश भारत में शत–प्रतिशत शिक्षा से हम आने वाले दशकों में जनसांख्यिक लाभांश की लहलहाती फसलें काटते रहेंगे।

2011 की राष्ट्रीय जनसंख्या जनगणना के आंकड़ों के अनुसार देश स्थित जैन समाज में साक्षरता की दर 94.1 प्रतिशत है जबकि राष्ट्रस्तरीय साक्षरता की दर मात्र 74.04 प्रतिशत है। साक्षरता दर को शत–प्रतिशत तक ले जाने हेतु गंभीर प्रयासों की आवश्यकता है। सामाजिक उद्यमियों द्वारा इस क्षेत्र में प्रवेश कर उपलब्ध अवसरों का उपयोग समाज व देश निर्माण में अपेक्षित है। साथ ही बदलती हुई परिस्थितियों में, अभिभावकों की अपनी संतानों की शिक्षा के संदर्भ में अब सामान्यतः विकसित हो रही उत्कृष्ट शैक्षिक वैचारिकी के अतिरिक्त, सरकारी नीतियों व नियमों में बदलाव भी उस माहौल के निर्माण में सहायक होकर हमें प्रोत्साहित कर रहा है कि गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना व संचालन हेतु कृतसंकल्पित हों, ताकि हम अग्रिम पंक्ति में अपना स्थान बनाए रख सके।

इसके अतिरिक्त अल्पसंख्यक समुदायों की शैक्षिक संस्थाओं के स्वतंत्र प्रशासन के लाभ व अवसंरचना (Infrastructure) के विकास हेतु अनेक सरकारी योजनाएं अमल में हैं। भारत सरकार के 'मेक इन इण्डिया', 'स्टार्टअप एण्ड डिजिटल इण्डिया' जैसी परियोजनाओं के माध्यम से मानव के त्रि–स्तरीय कौशल – (क) अनुसंधान व ज्ञान, (ख) व्यावसायिक व सेवाकीय सुदृढ़ता, एवं (ग) कौशल्य कार्मिकता विकास – के सार्थक प्रयास किए जा रहे हैं।।

राष्ट्रीय कौशल विकास निगम (National Skill Development Corporatiion) की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2022 तक मात्र महाराष्ट्र राज्य में 1.5 करोड़ कौशल्य प्रशिक्षण युक्त मानव संसाधनों की आवश्यकता होगी। जैन समाज को शिक्षा के बदले स्वरूप व्यावहारिक–व्यावसायिक ज्ञान आधारित शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना की आवश्यकता को समझते हुए योग्य निर्णय लेना चाहिए।

लेवल–8, मुथ्था चेम्बर–2, सेनापति बापत मार्ग, पुणे–411016

साहित्य सत्कार

पूज्य आचार्यश्री का अविस्मरणीय फिरोजाबाद वर्षायोग : ले. प्रा. नरेन्द्र प्रकाश जैन; प्र. श्रुत सेवानिधि न्यास, 104, नई बस्ती, फिरोजाबाद–283203; 12 फरवरी 2017; पृ. 32; मूल्य धर्म प्रभावना।

सन् 1975 में आचार्यश्री विद्यासागर जी का फिरोजाबाद में वर्षायोग सम्पन्न हुआ। इसके संयोजक और संचालक प्रा. नरेन्द्र प्रकाश जी थे। भक्तिभाव से प्राचार्य जी ने आचार्य विद्यासागर जी के सम्बन्ध में जो विवरण प्रस्तुत किया है वह आचार्यश्री के सम्बन्ध में सामान्य जिज्ञासुओं को और अधिक जानने के लिए प्रेरित करेगा। प्राचार्य जी ने प्रारंभ में आचार्यश्री को नमन और और अंत में 'पूज्य आचार्यश्री : एक शब्द चित्र' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, जो लेखक की मुनिभक्त प्रकृति को उद्घाटित करते हैं।

श्री जे. के. संघवी की कृतियां :

अवधू! आतमज्ञान में रहना : श्री जे. के. संघवी ने इस पुस्तक में 133 आध्यात्म पदों का भावार्थ सहित सम्पादन एवं संकलन किया है। इन पदों में जैन धर्म, अध्यात्म और दर्शन की परिचयात्मक झलक देखने को मिलती है। रचयिताओं में श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नाय के कवि सम्मिलित हैं। राजेन्द्रसूरि, धर्मचंदसूरि, प्रमोदरुचि, यतीन्द्रसूरि, जयन्तसेनसूरि, आनन्दघन, चिदानन्द, यशोविजय, जीवविजय, ज्ञानानंद, बनारसीदास, भागचन्द, दौलतराम, द्यानतराय, रूपचन्द, बुधजन और घासीराम की रचनाएं संकलित हैं। प्रारंभ में राजेन्द्रसूरि की रचना 'अवधू! आतमज्ञान में रहना' है। सभी रचनाओं का भावार्थ श्री संघवी ने स्वयं किया, जो कवि की भाव व्यंजना को स्पष्ट करता है।

विचार वैभव : श्री संघवी 1981 से 2002 तक **शाश्वत धर्म** मासिक पत्रिका के सम्पादक रहे थे। उस पत्रिका में सम्पादकीय के रूप में लिखे गये 78 लेखों का संकलन इस पुस्तक में किया गया है। इन लेखों में समाज में व्याप्त कुरीतियों, शासन को हानि पहंचाने वाली घटनाओं अथवा आचार–विचार तथा आहार में आने वाली शिथिलताओं पर समाज को जागरुक करने वाले विचार निष्पक्ष एवं निर्भीक रूप से प्रस्तुत किये गये हैं। लेखक के सम्बन्ध में डॉ. राजेन्द्र पटोरिया (नागपुर) का 'आमुख' उल्लेखनीय है जिसमें उनके व्यक्तित्व का परिचय सहज सुलभ है। श्री संघवी ने जुलाई 1991 में अपने एक सम्पादकीय में यह विचार व्यक्त किया

था कि "भारत में रहने वाले तमाम नागरिकों के लिए समान कानून हों, समान नियम हों, वर्ग विशेष को विशेषाधिकार न दिया जाकर सभी को समानाधिकार हो, तो राष्ट्रीय अखंडता के समक्ष कोई खतरा पैदा नहीं हो सकता किन्तु कोरी बातें या उपदेश कारगर सिद्ध नहीं हो सकते।" आज के सामयिक राष्ट्रीय परिवेश में भी यह पूरी तरह प्रासंगिक है। श्री संघवी जी के लेखों का यह संकलन समाज को जागरुक करने में उपयोगी होगा।

इन पुस्तकों का प्रकाशन अक्टूबर 2017 में कल्पतरु प्रकाशन, 305, स्टेशन रोड, संघवी भवन, कॉपीनेश्वर मन्दिर के सामने, थाणे (वेस्ट)–400601 से किया गया था। श्री संघवी का मो.–9892007268 है।

आप हम मूल आम्नायी हैं : ले. डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल; प्र. समन्वयवाणी फाउण्डेशन; 129, जादौन नगर–बी, स्टेशन रोड, दुर्गापुरा, जयपुर–302018; 26–1–2017; पृ. 104; मूल्य रु. 20; मो. 09752965331

समन्वयवाणी फाउण्डेशन के निदेशक श्री अखिल बंसल ने अपने प्रकाशकीय में उल्लेख किया है कि **समन्वय वाणी** के 16 जून 2016 के मूल आम्नाय विशेषांक में प्रकाशित डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल के लेख प्रस्तुत पुस्तक में प्रकाशित हैं।

गणधराचार्य श्री पुत्तूसागरजी की पुस्तक "क्या आप तेरह पंथी हैं" में बीसपंथ की मान्यता की पुष्टि में दिये गये तर्क–वितर्क की इस पुस्तक में समीक्षा की गई है और उस कृति से उत्पन्न भ्रम को दूर करने और सच्चाई के प्रकटीकरण हेतु इस पुस्तक का प्रकाशन किया गया है। इसमें बीसपंथी मान्यता के पोषकों द्वारा जो अव्यवस्था की जाती रही है उससे सम्बन्धित घटनाओं की समीक्षा भी की गई है। समग्ररूप से डॉ. बंसल ने इस पुस्तक में वर्तमान परिस्थितियों में मूल आम्नाय की सुरक्षा हेतु विशद विवेचन किया है।

कृष्ण काव्य कुंज : ले. श्री कृष्ण कुमार वर्मा "कृष्ण लखनवी"; प्र. मधूलिका प्रकाशन, 186/58, खत्री टोला, मशकगंज, लखनऊ; जनवरी 2016; पृ. 108; मूल्य रु. 120

श्री कृष्ण कुमार वर्मा का यह काव्य संकलन उनके सुपुत्र श्री राजीव कुमार वर्मा ने अपने स्वर्गीय पिताश्री को श्रद्धांजलि स्वरूप प्रकाशित किया है। श्री कृष्ण कुमार वर्मा 60 वर्ष की वय में 30 अप्रैल 1996 को दिवंगत हो गये थे। साहित्य–भूषण डॉ. परमानन्द जड़िया और

श्री दयानंद जड़िया 'अबोध' ने अपनी प्रस्तावनाओं में रचनाकार वर्मा जी के जीवन और रचनाधर्मिता के विषय में प्रकाश डाला है। श्री वर्मा को गाने और कविता करने का शौक बचपन से ही था। इस संकलन में उनकी 78 कविताएं संकलित हैं। ये कविताएं विविध विषयक हैं, जो उनके व्यापक दृष्टिकोण को परिलक्षित करती हैं।

डॉ. परमानन्द जड़िया की कृतियां :

विविधा : साहित्य–भूषण डॉ. परमानंद जड़िया ने अपना यह काव्य संकलन अनुज डॉ. गिरीशचंद जड़िया की पुण्यस्मृति में प्रकाशित किया है। डॉ. गिरीशचंद जड़िया का निधन 26 दिसम्बर 2016 को 88 वर्ष की अवस्था में हो गया था। उनके प्रति हमारे श्रद्धा–सुमन भी समर्पित है। डॉ. परमानन्द जड़िया 91 वर्ष की वय में भी साहित्य सर्जना में लगे हुए हैं। प्रस्तुत **विविधा** उनकी 110वीं प्रकाशित कृति है। इसमें उनकी 30 रचनायें संकलित हैं। अधिकांश रचनायें भक्ति भाव से प्रेरित हैं। श्रीराम, श्रीकृष्ण और हनुमान के साथ तीर्थंकर महावीर के प्रति भी उन्होंने अपनी भक्तिभावना निवेदित की है। सामयिक परिदृश्य पर भी अपनी चिन्ता व्यक्त की है।

पंच देवापासना : यह डॉ. जड़िया की नवीनतम कृति है। हरिगीतिका छंद में लिखी गई **पंच देवोपासना** पुस्तक में दुर्गा, सरस्वती, गणेश, सीताराम, भगवान श्यामसुन्दर, भगवान शंकर तथा सूर्यनारायण का स्तवन किया गया है। भावव्यंजना विषय के अनुरूप है।

यह दोनों पुस्तक मधूलिका प्रकाशन 186/58, खत्री टोला, मशकगंज, लखनऊ से क्रमशः मई और जुलाई 2017 में प्रकाशित हुई हैं।

संवेदना के स्वर : डॉ. चक्रधर नलिन; प्र. बुनियादी साहित्य प्रकाशन, गूंगे नवाब पार्क, अमीनाबाद, लखनऊ; 2017, पृ. 80; मूल्य रु. 400

इसमें डॉ. चक्रधर नलिन की 24 भावपूर्ण प्रेमपरक, राष्ट्रपरक, चिन्तनप्रधान कविताओं, गीतों एवं गज़ली काव्यों का संकलन है। अपनी प्रस्तावना में श्री विनोद चंद्र पाण्डेय 'विनोद' ने इंगित किया है कि इन कविताओं का मूलमंत्र प्रेम है, जिसमें वैयक्तिक, राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक व प्राकृतिक प्रेम का दिग्दर्शन हुआ है। कविताओं की भाषा सहज सरल है और भावव्यंजना चिन्तन को प्रेरित करती है। डॉ. नलिन एक प्रौढ़ लेखक हैं और उनकी विविध प्रकार की कृतियों का परिचय इस

पुस्तिका में दिये गये लेखक परिचय से प्राप्त होता है। इस काव्य संकलन की कविताओं को पढ़कर पाठक को नलिन जी के शब्दों में ही –

कविता कवि की मनस्य चेतना सूक्ष्म प्रभावों का अनुशीलन
ज्ञान सम्पदा की पयस्वनी भावों का सातत्य गमन की, अनुभूति होगी।

खरी–खोटी : ले. श्री अमरनाथ; प्र. अभियन्ता साहित्यकार एवं सांस्कृतिक संस्थान "अभियान", लखनऊ; प्रकाशन वर्ष 2017; पृ 90; मूल्य रु. 100

श्री अमरनाथ एक प्रौढ़ साहित्यकार हैं। इनकी रचनाएं **शोधादर्श** में भी प्रकाशित होती रहती हैं। प्रस्तुत पुस्तक **खरी–खोटी** में उनके 47 व्यंग्य लेखों का संग्रह है। सभी व्यंग्य लेख कहानी के रूप में लिखे गये हैं – कुछ लघु कथा हैं और कुछ लम्बी कहानी। इन कहानियों का एक विशेष गुण मनोरंजन करना है। अपनी प्रस्तावना में लेखक ने व्यंग्य का अर्थ–बोध कराया है। इस संग्रह में संकलित कहानियों में व्यंग्य और हास्य का सम्मिश्रण है और जिस शैली में इन्हें प्रस्तुत किया गया है वह पाठक को इन्हें पढ़ने के लिए उत्प्रेरित करती है। इस नव विधा के प्रस्तुतीकरण के लिए श्री अमरनाथ जी को साधुवाद!

मेरी कर्म भूमि : कहीं मोती, कहीं सीप; श्री राम कुमार गर्ग, सं. श्री श्रीपाल जैन; प्र. श्री अनिल गर्ग, 13/1035, वसुन्धरा, गाजियाबाद–201012

श्री राम कुमार गर्ग जुलाई 1953 से दिसम्बर 1985 तक उत्तर प्रदेश के सिंचाई विभाग में इन्जीनियर अधिकारी के रूप में कार्यरत थे। वह रुड़की के इंजीनियरिंग विश्वविद्यालय से सिविल इन्जीनियरिंग में बी.ई. थे। सिंचाई विभाग में सहायक अभियन्ता के पद से सेवा प्रारंभ करके एक्ज़ीक्यूटिव इंजीनियर, सुपरिंटेंडिंग इंजीनियर और चीफ इंजीनियर के पद से सेवा–निवृत्त हुये। सेवा–निवृत्त होने के बाद उन्होंने अपने सेवाकाल के संस्मरणों के आधार पर आत्मकथा को एक रोचक शैली में प्रस्तुत किया।

श्री गर्ग का निधन 8 मई 2016 को 89 वर्ष की वय में हुआ था। उनके सुपुत्र श्री अनिल गर्ग को उनके निधन के कुछ समय बाद जब उनका सामान संभाला गया तो उनकी आत्मकथा की पाण्डुलिपि मिली। इसका सम्पादन श्री अनिल गर्ग ने अपने मित्र श्री श्रीपाल जैन के सहयोग से किया और पुस्तक के रूप में इसको अपने पिताजी के प्रति श्रद्धांजलि स्वरूप प्रकाशित किया, जिसमें उन्हें अपने परिवार के सभी सदस्यों का सहयोग प्राप्त रहा।

श्री गर्ग ने अपने प्राक्कथन और उपसंहार में अपनी आत्मकथा लिखने का उद्देश्य स्पष्ट किया है। उनका यह कथन मननीय है कि "मैंने अनुभव किया कि 50 के दशक में सहायक अभियन्ता का विभाग में तथा जन साधारण में भी जो सम्मान था वह मेरे सेवा-निवृत्त होने तक एस.ई. और सी.ई. का भी नहीं रह गया था। राजनीतिक हस्तक्षेप बढ़ता गया था।" यह स्थिति केवल सिचाई विभाग की ही नहीं वरन् शासन के अन्य विभागों की भी रही है जिसका मैं स्वयं भी प्रत्यक्षदर्शी रहा हूं। श्री गर्ग ने मोती अल्पसंख्यक सत्यनिष्ठ एवं कर्तव्यनिष्ठ कर्मचारियों/अधिकारियों को माना है, तथा सीप उन सभी बहुसंख्यक कर्मचारियों/अधिकारियों को माना है जो अपने पद का अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए दुरुपयोग करते रहे। पुस्तक के प्रकाशन के लिए श्री अनिल गर्ग को साधुवाद!

श्रीमद्भगवद्गीता : मर्म और सन्देश (15) : सं. व प्र. श्री दामोदर भगेरिया, 13 एम.जी.डी मार्केट, जयपुर-302002, (मो.) 9351317641); जुलाई 2017; पृ. 112; मूल्य रु. 100

श्रीमद्भगवद्गीता के आधार से 60 विद्वानों के आध्यात्मिक ज्ञान सम्बन्धी लेखों का संकलन इसमें किया गया है। इन लेखों का उद्देश्य गीता के मर्म को सामान्य जन के लिए स्पष्ट करना है।

प्रोफेसर प्रकाशचन्द्र जैन की कृतियां :

1 जैन वाङ्मय में भूगोल (पौराणिक संदर्भों सहित) – इसमें लेखक ने **तिलोयपण्णति, त्रिलोकसार** व अन्य जैन ग्रन्थों में उल्लिखित ब्रह्माण्ड विज्ञान व भूगोल की सामग्री को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समझाने का प्रयास किया है। 11 अध्यायों में 26 मानचित्रों के साथ, यह अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

2 संक्षिप्त जैन महाभारत – आचार्य जिनसेन के **हरिवंश पुराण**, आचार्य गुणभद्र के **उत्तर पुराण** और भट्टारक शुभचन्द्र स्वामी के **पाण्डव पुराण** के आधार से लेखक ने इस ग्रन्थ की रचना की है। अध्ययन 21 अध्यायों में प्रस्तुत है। 'अपनी बात' में लेखक ने उपरोक्त तीनों पुराणों के लेखकों व अनुवादकों आदि की जानकारी दी है जो शोधार्थी पाठकों के लिए उपयोगी है। कौरवों, पाण्डवों, नारायण श्रीकृष्ण एवं बलदेव बलभद्र के जीवन वृत्त पर और तीर्थंकर शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ,

मुनिसुव्रतनाथ एवं नेमिनाथ के जीवन चरित्र पर भी विशिष्ट सामग्री सम्मिलित है। वर्णन शैली सहज एवं रोचक है।

3 **छहढाला** : पं. दौलतराम जी संवत् 1855–56 से संवत् 1923 (ई. 1799 से 1866) में प्रायः उत्तर प्रदेश और दिल्ली में रहे थे और उन्होंने हिन्दी में कई ग्रन्थों की रचना की थी। **छहढाला** उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है जिसकी रचना उन्होंने सवत् 1891 (ई. 1834) में की थी। इसकी रचना में ब्रज–मिश्रित खड़ी–बोली का प्रयोग हुआ है। छह ढालों में जैन धर्म का सार प्रस्तुत किया गया है। प्रथम ढाल में सांसारिक जीवों की विभिन्न अवस्थाओं को बताया गया है। दूसरी ढाल में सम्यक् दर्शन का निरूपण किया गया है। तृतीय ढाल में मोक्षमार्ग के लक्षणों का निरूपण है। चौथी ढाल में सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र के भेद बताये गये हैं। पांचवी ढाल में बारह भावनायें बतलाई गई है। अंतिम छठी ढाल में महाव्रतों का लक्षण बतलाकर उनके प्रकारों के बारे में बतलाया गया है। प्रत्येक ढाल के सम्बन्ध में प्रोफेसर जैन ने विशद विवेचन किया है जो उसके अभिप्राय को स्पष्ट करता है।

इसके अतिरिक्त तमिलनाडु के और पश्चिमी बंगाल के जैन मन्दिरों के विषय में भी चार अध्यायों में प्रोफेसर जैन ने आवश्यक जानकारी प्रस्तुत की है।

प्रोफेसर प्रकाशचन्द्र जैन के उपरोक्त तीनों ग्रन्थ जैन साहित्य का विशिष्ट अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। इनका प्रकाशन क्रमशः 2013, 2014 और 2016 में रिसर्च बुक/ केलादेवी सुमतिप्रसाद ट्रस्ट/सहजानन्द फाण्डेशन, बी–5/263, यमुना विहार, दिल्ली–110053 द्वारा किया गया था।

परंपरा के बोल, भाग–2, ले. पं. काशीनाथ गोपाल गोरे; प्र. श्रीमती वीणा गोरे, ई–51, महानगर विस्तार, लखनऊ–226006; 2017 (विजयादशमी); पृ. 144; मूल्य रु. 200/–

पं. काशीनाथ गोपाल गोरे ने **परंपरा के बोल** के भाग–1 में विविध विषयों पर 1791 दोहों में निबद्ध उक्तियों का संकलन 2012 में प्रकाशित किया था। उसके प्राक्कथन में हमने इंगित किया था कि मानव समुदाय के सामाजिक और मानसिक स्तर का प्रतिबिम्ब लोकोक्तियों में प्राप्त होता है और श्री गोरे ने मानव समुदाय के संचित अनुभव को विविध आयामों में सहज सुबोध हिन्दी भाषा में प्रस्तुत किया है, जो हिन्दी भाषा में एक विशिष्टि विधा की प्रस्तुति का उदाहरण है। पुनः प्रस्तुत

भाग–2 में उसी प्रकार 114 विषयों को लेकर 984 दोहे श्री गोरे द्वारा निबद्ध किये गये हैं। साथ ही, 124 विषयों पर संस्कृत भाषा की न्याय विधा के अंतर्गत दोहा बद्ध उक्तियां भी दी गई हैं। यथा – उष्ट्रलगुडन्याय :

लाठी लादे ऊंट, न जाने वह उस पर ही घाव करेगी।
मूर्ख न जाने, उसकी करनी उसकी ही नित हानि करेगी।।

मित्रवर काशीनाथ गोरे का साहित्य की लोकोक्ति शैली को समृद्ध करने के लिए हार्दिक अभिनन्दन!

इस्लाम का उदय एवं नियति : ले. डॉ सय्यद इर्तिज़ा हुसैन, 206 गोधूलि (वरिष्ठ नागरिक आवास), प्लाट नं. 7, सैक्टर 2, द्वारका, नई दिल्ली–110075 (मो. 9910548419); प्र. रॉयल फाल्कन बुक्स, एफ–3/6, ओखला इण्डस्ट्रियल एरिया, फेस–1, नई दिल्ली–110020; द्वितीय संस्करण; सितम्बर 2017; पृ. 294+iv.

डॉ. इर्तिज़ा हुसैन की इस पुस्तक का प्रथम संस्करण 1990 में **इस्लाम का उदय और लक्ष्य** शीर्षक से प्रकाशित हुआ था और इसकी समीक्षा **शोधादर्श** 20 (जुलाई, 1993) में प्रकाशित हुई थी। इस द्वितीय संस्करण में लेखक ने पुस्तक का नाम **इस्लाम का उदय एवं नियति** संशोधित किया है और प्रस्तुत टैक्स्ट में भी यथावश्यक संशोधन आदि किये हैं।

पुस्तक दो भागों में है। भाग–1 में इस्लाम का 'दृश्यपटल' प्रस्तुत है और भाग–2 में पैगम्बर मोहम्मद की जीवन कथा दी गई है। इसके अतिरिक्त 8 परिशिष्ट भी हैं। इन परिशिष्टों में आधुनिक मानवाधिकार विचारधारा और संस्थाओं के परिप्रेक्ष्य में भी विवेचना दी गई है तथा विभिन्न धार्मिक विचारधाराओं जिनमें भारत की वैदिक, जैन, बौद्ध और सिख धर्म का उल्लेख किया गया है तथा चीन और जापान के धर्मो का उल्लेख किया गया है।

लेखक अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में शिया थ्योलॉजी विभाग में 35 वर्ष प्राध्यापक रहे थे। इस्लाम के बारे में उनका गहन अध्ययन है। उनकी यह पुस्तक इस्लाम के उदय की परिस्थितियों के सम्बन्ध में तथा पैगम्बर मोहम्मद साहब की जीवनी के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी प्रदान करती है जो जन समान्य के लिए उपयोगी है। तथापि यह विस्मय की बात है कि लेखक ने इस्लाम के उदय के सदर्भ में अरब क्षेत्र में प्रचलित बौद्ध धर्म की विचारधारा का कोई उल्लेख नहीं किया है यद्यपि हमने **Frown** में प्रकाशित अपने लेख **Buddhism and Islam** से उनको अवगत भी कराया था। डॉ. सय्यद इर्तिज़ा हुसैन को इस श्रम साध्य कृति के लिए साधुवाद!

– **डॉ. शशि कान्त**

सम्मान

श्री नलिन कान्त जैन

16 जुलाई, 2017, को वीर शासन जयंती के अवसर पर श्री नलिन कान्त जैन को **मिलन उपलब्धि सेवा सम्मान (Life-time Achievement Award)–2017** से जैन मिलन लखनऊ एवं श्री मुन्ने लाल कागजी जैन ट्रस्ट द्वारा सम्मानित किया गया।

कीर्तिशेष इतिहास–मनीषी विद्यावारिधि डॉ. ज्योति प्रसाद जैन एवं स्मृतिशेष श्रीमती अनन्त माला जैन के पौत्र तथा इतिहास–विज्ञ डॉ. शशि कान्त जैन (सेवा–निवृत्त विशेष सचिव, उ.प्र. शासन) एवं श्रीमती मंजरी जैन के सुपुत्र श्री नलिन कान्त जैन का जन्म 5 अक्टूबर 1957 ई. को आग्रा में हुआ था। आपका विवाह 23 अप्रैल 1985 ई. को श्रीमती मोहिनी जैन, बी–एस.सी., डी.एफ.डी., के साथ हुआ। आपका पुत्र अशीत जैन, सी.ए. है और पुत्री मेहा जैन, क्लीनिकल साइकोलॉजिस्ट है।

आपने बी–एस.सी., एल–एल.बी., तक शिक्षा लखनऊ विश्वविद्यालय से प्राप्त की। तत्पश्चात् मुद्रण व्यवसाय से जुड़े।

बाल्यावस्था से ही सामाजिक एवं धार्मिक कार्यो के प्रति रुचि रही। 'युवा जैन मिलन' के मंत्री एवं अध्यक्ष पद को सुशोभित करने के अतिरिक्त आप 'जैन मिलन लखनऊ' के मंत्री एवं अध्यक्ष भी रहे और वर्तमान में उसके संरक्षक हैं। आपने 'जैन मिलन लखनऊ' की 'स्वर्ण जयन्ती स्मारिका' का वर्ष 2009 में सम्पादन भी किया था।

आप 'तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.', के महामंत्री हैं, 'डॉ. ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट' के न्यास–अध्यक्ष हैं, और **शोधादर्श** के सम्पादक हैं। आपको अहिंसा इन्टरनेशनल नई दिल्ली द्वारा 'अहिंसा इन्टरनेशनल विजय कुमार, प्रबोध कुमार, सुबोध कुमार जैन पत्रकारिता पुरस्कार' से 6 दिसम्बर 2015 को सम्मानित किया गया था।

श्री हुकमचंद जैन

दिनांक 5 सितम्बर को जैन समाज के वरिष्ठ सदस्य श्री हुकमचंद जैन, सुपुत्र स्व. श्री शीतल प्रसाद जैन एवं पौत्र प्रसिद्ध समाजसेवी स्व. श्री उग्गर सैन जैन का सकल जैन समाज कचहरी रोड, मेरठ, के द्वारा असौरा हाउस, जैन मंदिर, में सम्मान किया गया। कार्यक्रम संयोजक श्री कपिल कुमार जैन ने श्री हुकमचंद जैन द्वारा समाज के लिए किये गये कार्यो की चर्चा की। श्री हुकमचंद जैन ने तीरगरांन जैन मंदिर में लगभग 20 वर्ष तक प्रधानमंत्री, कोषाध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष पद को सुशोभित किया था, तथा

ताड़पत्र के ग्रंथों सहित हजारों शास्त्रों के रख–रखाव में अमूल्य योगदान किया था।

डॉ. अवधेश कुमार अग्रवाल

दिनांक 24 दिसम्बर को उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, के दूरस्थ शिक्षा के बुन्देलखण्ड क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ संयोजकत्व के लिए नेहरू पोस्ट–ग्रेजुएट डिग्री कालेज, ललितपुर, के प्रिंसिपल डॉ. अवधेश कुमार अग्रवाल को विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. एम. पी. दुबे द्वारा लखनऊ में सम्मानित किया गया।

– अशीत जैन

✦✦✦

आभार

श्री नेमिचन्द जैन, कानपुर, ने अपनी पत्नी श्रीमती राजदुलारी जैन की स्मृति में रु. 10,000 भेंट किये।

श्री काशीनाथ गोपाल गोरे, लखनऊ, ने रु. 2,100 सहयोग राशि भेंट की।

डॉ. कु. मालती जैन, कुरावली, ने रु. 500 भेंट किये।

पं. लक्ष्मीचंद जैन, डूगरपुर, ने रु. 500 भेंट किये।

डॉ. शशि कान्त जैन ने अपनी नातिन आयु. अनुभूति के चि. प्रतीक के साथ 4 दिसम्बर को सम्पन्न विवाह के उपलक्ष में रु. 500 भेंट किये।

श्री महीपाल जैन, बड़ौत, ने रु. 400 भेंट किये।

श्री नलिन कान्त जैन ने श्रुत पंचमी पर रु. 250 भेंट किये।

श्री किशोरी लाल गुप्ता, लखनऊ, ने श्रुत पंचमी पर रु. 200 भेंट किये।

श्री सुरेश चन्द्र जैन, मसूरी, ने अपनी प्रपौत्री आयु. अमर्या की प्रथम वर्ष गांठ पर रु. 200 भेंट किये।

श्री कैलाश नारायण टण्डन, कानपुर, ने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती शकुन्तला टण्डन की स्मृति में रु. 100 भेंट किये।

✦✦✦

अभिनन्दन

बाराबंकी जनपद के उधौली ग्राम की **श्रीमती सुमन वर्मा** को 'डॉ. परमानन्द जड़िया के साहित्य पर शोध' के लिए अवध विश्वविद्यालय द्वारा पी–एच.डी. की उपाधि प्रदान की गई। वह बाराबंकी के महिला महाविद्यालय में हिन्दी की प्रवक्ता हैं।

श्रीमती ममता जैन को "जीवाजीवभिगम सूत्र के विशेष सन्दर्भ में स्थावर जीवों की अवधारणा का वैज्ञानक विश्लेषण" विषय पर उदयपुर के मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय द्वारा पी–एच.डी. की उपाधि प्रदान की गयी।

डॉ. सूरजमल जैन बोबरा को "तीर्थ एवं जिनवाणी इतिहास के महत्वपूर्ण स्रोत" विषय पर 83 वर्ष की वय में पी–एच.डी. की उपाधि प्रदान की गयी।

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा ने जैन विधि–विधानों के तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन पर डी.लिट्. के लिए शोध कार्य किया। यह शोध कार्य 23 खण्डों में सम्पन्न किया गया है। इन खण्डों का प्रकाशन जैन विश्वभारती, लाडनूं, द्वारा किया गया है। उल्लेखनीय विषय हैं – जैन विधि–विधान, जैन गृहस्थ के संस्कार एवं व्रतारोपण सम्बन्धी विधि विधान, जैन मुनि के व्रतारोपण, आचार संहिता एवं आहार संहिता तथा पदारोहण सम्बन्धी विधि, आगम अध्ययन की मौलिक विधि, तप साधना विधि एवं प्रायश्चित विधि, षडावश्यक की उपादेयता, प्रतिक्रमण, पूजा विधि एवं प्रतिष्ठा विधि, मुद्रा प्रयोग (जैन, हिन्दु, बौद्ध, यौगिक मुद्राएं – आधुनिक चिकित्सा में मुद्रा प्रयोग), सज्जन तप प्रवेशिका, तथा शंका नवि चित्त धरिए।

गुजरात विद्यापीठ, ग्रामीण परिसर, रांधेजा, गांधीनगर में **डॉ. लोकेश जैन** की पदोन्नति प्रोफेसर के पर पर हुई।

डॉ. (कु.) तन्वी जैन को चण्डीगढ़ के Post -Graduate Institute of Medical Education and Research में एम.एस. (Master of Surgery) के पाठ्यक्रम में प्रवेश हेतु चयनित किया गया। वह एम.बी.बी.एस. में भी स्वर्ण पदक प्राप्त कर चुकी हैं।

आगरा महानगर के महापौर (मेयर) पद के लिए भारतीय जनता पार्टी के प्रतिनिधि के रूप में **श्री नवीन जैन** ने विशेष बहुमत से विजय प्राप्त की। अमरोहा में **श्रीमती शशि जैन** ने और बिसवां में **श्रीमती सीमा जैन** ने भी भा.ज.पा. के प्रतिनिधि के रूप में नगर पालिका के चुनाव में अध्यक्ष पद हेतु विजय प्राप्त की। वैद्य श्री राजेश चन्द्र जैन की पत्नी

श्रीमती रितु जैन ने जिला एटा के अलीगंज की नगर पालिका में निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में विजय प्राप्त की।

26 मार्च को श्री मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर, द्वारा 82–वर्षीय **डॉ. जय कुमार 'जलज'**, रतलाम को 'समिति शताब्दी सम्मान' से सम्मानित किया गया। डॉ. जलज कविता और वैचारिक गद्य लेखन के लिए सुविख्यात हैं।

मध्य प्रदेश की अभिव्यंजना फाउण्डेशन द्वारा 2 अप्रैल को दमोह के **डॉ. भागचन्द जैन' भागेन्दु'** का उनकी भाषा साहित्य, कला और संस्कृति की अनवरत सेवा को दृष्टिगत रखते हुये 81वें जन्म दिन पर सार्वजनिक रूप से सम्मान किया गया।

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद के राष्ट्रीय अधिवेशन, ऋषिकेश हरिद्वार, में जुलाई 2017 में निम्नलिखित विद्वानों को जैन पत्रकारिता एवं जैन धर्म की प्रभावना हेतु सम्मानित किया गया :– **श्री राजेन्द्र जैन 'महावीर'** (सनावद), युवा विद्वान **पं. पंकज जैन** (भोपाल), **ब्र. आकाश जैन** (सलावा), **पं. रमेश चंद्र जैन** (गोवारा), **पं. सुरेश जैन मारोरा** (इन्दौर), **पं. भगवान दास** (सरधना) और **डॉ. आलोक जैन**, वीर सेवा मंदिर (दल्ली)।

दिनांक 11 से 13 अगस्त श्रवणबेलगोला में आयोजित अखिल भारतीय महिला सम्मेलन में साहित्य के क्षेत्र में योगदान के लिए वाराणसी की **डॉ. (श्रीमती) मुन्नी जैन** को "आदर्श महिला सम्मान" से नवाजा गया।

जैन मिलन लखनऊ एवं जैन विद्या शोध संस्थान द्वारा दिनांक 17 सितम्बर को विश्व मैत्री दिवस पर गुवाहाटी के 75–वर्षीय **श्री कपूरचन्द जैन पाटनी** को सम्मानित किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री राम नाईक, माननीय राज्यपाल, उत्तर प्रदेश थे। उसी दिन भारतीय जैन मिलन की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक भी सम्पन्न हुई और उसमें निम्नलिखित को 'जैन गौरव सम्मान' से सम्मानित किया गया – **श्री अरविंद कुमार जैन**, पूर्व पुलिस महानिदेशक, उ.प्र. को 'सम्राट चन्द्रगुप्त सम्मान', **श्री विनय कपूर जैन**, महानिरीक्षक, कारागार, उ.प्र., को 'सम्राट खारवेल सम्मान', **श्री संजीव जैन** को दानवीर 'भामाशाह सम्मान' और **प्रो. सुधा जैन** को 'वीर विक्रम साराभाई सम्मान'।

18 सितम्बर को इन्दौर में जयपुर के **डॉ. एन.के. खीचा** को उनकी सुदीर्घ साहित्य सेवाओं के उपलक्ष में वाग्मिता पुरस्कार से सम्मानित किया गया और 'श्रुत आराधक' की उपाधि से विभूषित किया गया।

श्रवणबेलगोला में राष्ट्रीय विद्वत् सम्मेलन में 2 अक्टूबर को भोपाल के प्रसिद्ध कवि **श्री कैलाश मड़वैया** को सम्मानित किया गया।

अहिंसा इण्टरनेशनल नई दिल्ली, द्वारा अपने 44वें स्थापना दिवस पर दिनांक 29 अक्टूबर को निम्नलिखित महानुभावों को पुरस्कृत/सम्मानित किया गया – न्यायमूर्ति **श्री बिजेन्द्र जैन** को लाइफ–टाईम अचीवमेंट पुरस्कार, **श्री सनत कुमार विनोद कुमार जैन** को जैन धर्म प्रचार–प्रसार पुरस्कार, **प्रो. डॉ. वीर सागर जैन** को जैन साहित्य पुरस्कार, **डॉ. डी.सी. जैन** को शाकाहार जीवदया पुरस्कार, **श्री राजेन्द्र जैन 'महावीर'** और **श्री नवनीत जैन** को जैन पत्रकारिता पुरस्कार, **कु. विधि जैन** और **चि. सम्यग् जैन** को मेधावी छात्र पुरस्कार। रोगी सेवा चिकित्सा के लिए **श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन चिकित्सालय**, कवि नगर गाजियाबाद, को और जैन धर्म प्रचार–प्रसार पुरस्कार के लिए **श्री दिगम्बर जैन नैतिक शिक्षा समिति**, दरियागंज, नई दिल्ली को सम्मानित किया गया।

श्री रमेश कासलीवाल द्वारा इन्दौर से **वीर निकलंक** मासिक पत्र के प्रकाशन को 25 वर्ष हो गये। श्री कासलीवाल को स्वतंत्र, निष्पक्ष, और निड़र पत्रकारिता के लिए साधुवाद!

विज्ञान परिषद प्रयाग द्वारा **डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव** का 5 जनवरी 2016 को 80 वर्ष की वय प्राप्त करने के उपलक्ष में अभिनन्दन किया गया। डॉ. श्रीवास्तव भारतीय कला और संस्कृति के विशेषज्ञ विद्वान हैं।

***शोधादर्श* का समस्त परिवार और *तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति* उपरोक्त सभी महानुभावों का उनकी यश–वृद्धि के लिए हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।**

✦✦✦

शोक संवेदन

18 दिसम्बर 2016 को 86–वर्षीय तमिल विद्वान **डॉ. एन. सुन्दरम्** का चेन्नई में निधन हो गया।

2 फरवरी 2017 को कोलकाता के 58–वर्षीय **श्री अजित पाटनी** का श्रवणबेलगोला में आकस्मिक निधन हो गया। वह **वर्धमान संदेश** के सम्पादक थे और श्री बाहुबली मस्तकाभिषेक के लिए विशेष रूप से सक्रिय थे।

26 अप्रैल को लखनऊ में 60–वर्षीय **श्री राजीव जैन** का असमय निधन हो गया। वे लखनऊ जैन मिलन के अध्यक्ष रहे थे। वे कैंसर से पीड़ित थे।

8 मई को लखनऊ में 91–वर्षीय **राजवैद्य चन्द्र कुमार जैन** का शरीर शांत हो गया।

26 मई को लखनऊ में 79–वर्षीया **डॉ. कु. ऊषा माथुर**, पी–एच.डी., डी.लिट्. का निधन हो गया। वह एक विदुषी महिला थीं ओर **शोधादर्श** की सुधी पाठक एवं लेखक थीं।

28 मई को लखनऊ में 85–वर्षीय **श्री पशुपतिनाथ सुकुल** का निधन हो गया। वह मनीषी चिन्तक थे और **शोधादर्श** के सुधी पाठक थे।

10 जुलाई को लखनऊ में 90–वर्षीय **श्री इन्द्र नारायण त्रिपाठी** का निधन हो गया। वह प्रौढ़ मनीषी चिन्तक, पत्रकार तथा **शोधादर्श** के सुधी पाठक थे।

31 जुलाई को फिरोजाबाद के सुश्रावक 70–वर्षीय **श्री कैलाशचन्द जैन** का दिल्ली में निधन हो गया।

18 सितम्बर को लखनऊ में 83–वर्षीय **श्रीमती सरोज जैन** का निधन हो गया। वह सुश्राविका थी और श्री धर्मवीर (रिटा0) प्रमुख अभियन्ता पी–डब्लू.डी., तथा चेयरमैन, अमन चेरिटेबुल ट्रस्ट, की धर्मपत्नी थीं।

17 अक्टूबर को मसूरी मे 87–वर्षीय **श्री सुरेश चन्द्र जैन** का शरीर शांत हो गया। वह एक समाज सेवी सुश्रावक थे और **शोधादर्श** के सुधी पाठक एवं लेखक रहे थे।

26 दिसम्बर को कानपुर में श्री नेमिचंद जैन की पत्नी, 84–वर्षीया **श्रीमती राजदुलारी जैन** का शरीर शांत हो गया।

उपरोक्त सभी दिवंगत महानुभावों के प्रति *शोधादर्श* परिवार की भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित है और शोक से संतप्त परिवारों के प्रति हार्दिक संवेदना निवेदित है।

समाचार विविधा

प्राकृत जैन शास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली में 9 अप्रैल 2017 को 'जगदीशचन्द्र माथुर स्मृति व्याख्यानमाला' का आयोजन किया गया। विचार–विमर्श के लिए "आदर्श जीवन के लिए व्यसन–मुक्ति आवश्यक" विषय रखा गया। डॉ. ऋषभ चन्द्र जैन, सांसद श्री राम किशोर सिंह, प्रो. अमरेन्द्र नारायण यादव, प्रो. रिपु सूदन प्रसाद श्रीवास्तव, प्रो. एस. एन. चौधरी, प्रो. सचीन्द्र कुमार सिंह और डॉ. विजय कुमार जैन ने विचार–विमर्श में सहभागिता की।

इसके पूर्व 7 मार्च को 'आचार्य कुन्द–कुन्द व्याख्यान–माला' का आयोजन भी संस्थान में किया गया था जिसका विषय था – "जैन दर्शन और दार्शनिक साहित्य का वैशिष्ट्य"।

अमन चेरिटेबुल ट्रस्ट के अध्यक्ष **श्री धर्मवीर** ने अपनी 2016–17 की विवरणात्मक रिर्पोट में अवगत कराया है कि विभिन्न चेरिटेबुल कार्यो पर रु. उन्नीस लाख व्यय किये गये।

चेन्नई के **श्री सुगालचंद जैन** ने अवगत कराया है कि सिंघवी चेरिटेबुल ट्रस्ट द्वारा कांचीपुरम जिले के श्री पेरमबदूर ग्राम में महावीर **आश्रय** के नाम से एक आरोग्य केन्द्र स्थापित किया गया है। इस केन्द्र पर लगभग 25 करोड़ रुपये का व्यय हुआ। यह कैंसर इन्स्टीट्यूट के रूप में कार्य करेगा।

अ.भा. जैन पत्र सम्पादक संघ के तत्वावधान में जबलपुर में 22–23 अक्टूबर को **जैन पत्र सम्पादक संगोष्ठी** सम्पन्न हुई। संयोजक **समन्वय वाणी** के सम्पादक श्री अखिल बंसल थे। संगोष्ठी में जैन पत्रकारिता की दशा और दिशा के सम्बन्ध में विचार–विमर्श किया गया।

✦✦✦

पाठकों के पत्र

डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव, भिलाई

शोधादर्श 84 मिलने के एक दिन बाद ही मैंने भाई डॉ. शशि कान्त को प्राप्ति–सूचना दे दी थी। इन दिनों मैं अपनी एक आंख में कटरैक्ट के कारण लिखना–पढ़ना नहीं कर पा रहा हूं। यह बात मैंने डॉ. शशि कान्त को बता दी थी। इसके पहले कि डॉ. आपरेशन करवाने का निर्णय ले, मैंने पत्रिका के कुछ पृष्ठ पलट लिये हैं।

पत्रिका के इस अंक में एक से बढ़कर एक शोध–लेख हैं और उन सब को सम्पादकीय टिप्पणी ने बेहतर बना दिया है। आपका सम्पादकीय और गुरुगुण–कीर्तन दोनों पढ़े और प्रभावित हुआ। 'सर्वधर्मसमभावी सन्त बनारसीदास " जैसा ही एक लेख किसी विभूति पर **शोधादर्श** में पहले भी पढ़ा है, पर उनका नाम याद नहीं आ रहा है। 'दीपावली' लेख (स्मृतिशेष श्री अजित प्रसाद जैन) में प्राचीन भारतीय इतिहास का विद्यार्थी होकर भी एकाध बिन्दु मैं नहीं समझ पाया – जैसे कि नवमल्ल जाति के काशी नरेश और नवलिच्छवि जाति के कोसल नरेश का कार्तिक अमावस्या को सम्मिलन और दीपमालिका महोत्सव का प्रचलन और मोक्ष लक्ष्मी। अभिषेक लक्ष्मी तो महावीर की माता त्रिशला के चतुर्दश स्वप्नों में एक थी, मोक्ष लक्ष्मी का संज्ञान पहली बार हुआ।

प्रस्तुत अंक का एक लेख कथमपि और पढ़ा –'जैन धर्म का प्राचीनतम अभिलेखीय प्रमाण' (डॉ. शशि कान्त)। खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख पर उन्होंने बड़ा गहन अध्ययन किया है। पुस्तक भी लिखी, उसके दो संस्करंण निकले। उनका स्नेह भाजन होने के कारण मुझे उनके दोनों संस्करण पढ़ने का सुअवसर मिला है जिसके लिए मैं उनका चिर ऋणी हूं। इस लेख में उनके एक वाक्य ने मुझे उसका उल्लेख करने के लिए प्रेरित किया है। उन्होंने लिखा है –'इस लेख में चार चिह्न उत्कीर्ण मिलते हैं जिनमें से स्वस्तिक और नन्द्यावर्त जैन धर्म से सम्बन्धित हैं। इनका उल्लेख अष्ट प्रातिहार्यो में आता है।' इस वाक्य से प्रेरित होकर मैं इस पत्र के साथ 22 चिह्नों सहित एक लेख भेज रहा हूं – 'खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख में मंगल चिह्न'।

(नवमल्ल....कोशल नरेश – आशय यह है कि मल्ल–गणराज्य और लिच्छवी–गणराज्य के 9–9 गणराजा तथा काशी और कोसल राज्यों के नरेश, सम्मिलित हुए थे। – डॉ. शशि कान्त)

श्री कैलाश नारायण टण्डन, कानपुर

शोधादर्श का अंक 84 प्राप्त हुआ। जिज्ञासा शांत हुई। आशा के अनुरूप पत्रिका आकर्षक साज–सज्जा के साथ प्राप्त हुई।

'पन्द्रह अगस्त' पर स्व. रमा कान्त जैन का गवेषणापूर्ण लेख पत्रिका के स्तर के अनुरूप है।

डॉ. शशि कान्त जैन का 'जैन धर्म का प्राचीनतम अभिलेखीय प्रमाण' लेखक की प्रतिभा और ऐतिहासिक ज्ञान का श्रेष्ठतम परिचायक है। आचार्य श्री कनकनंदी जी का लेख "उन्नति के सोपान" ज्ञानवर्धक एवं व्यावहारिक गुणवत्ता से भरपूर है।

मुख पृष्ठ पर वैशाली के नवनिर्मित जैन मन्दिर का चित्र अत्यंत आकर्षक है। जैन समाज की समृद्धि और धार्मिक भावना का परिचायक है।

डॉ. परमानन्द जड़िया, लखनऊ

'शोधादर्श' का अंक 84 मिला। वैशाली के नव निर्मित जैन मन्दिर का चित्र देखकर अच्छा लगा। जैन धर्मावलम्बी अपने मन्दिरों तथा तीर्थ–स्थलों के जीर्णोद्धार में गहन रुचि लेते हैं, यह अच्छी बात है।

इस जरावस्था में अब पढ़ायी लिखायी तो हो नहीं पाती। तथापि जब तक जीवन है और भगवान कुछ कराते रहते हैं, तब तक कर रहा हूं।

श्री रवीन्द्र कुमार 'राजेश' ने नए वर्ष पर अच्छी रचना प्रस्तुत की है। श्री बालकवि बैरागी तथा श्री अमरनाथ ने भी सुन्दर कवितायें प्रस्तुत कर अध्यात्म पथ पर प्रकाश डाला है। अन्य लेख भी अच्छे लगे।

आपने मेरी पुस्तक 'भज गोविन्दम्' का परिचय छापा, इसके लिये मैं आभारी हूं।

श्री बी.डी. अग्रवाल, लखनऊ

शोधादर्श – 84 की प्रति के लिये धन्यवाद!

इसे पढ़कर ऐसा प्रतीत हुआ कि पत्रिका का स्तर निरन्तर ऊंचा हो रहा है। इसका प्रभाव भी देश के काफी बड़े भाग पर पड़ रहा है। दूर–दूर के विद्वान लेखकों की रचनायें इसमें स्थान पा रही हैं। सभी रचनायें उच्च स्तरीय हैं। आपके मार्गदर्शन व सम्पादक मंडल के निरन्तर परिश्रम का ही यह फल है।

चित्रावली

डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

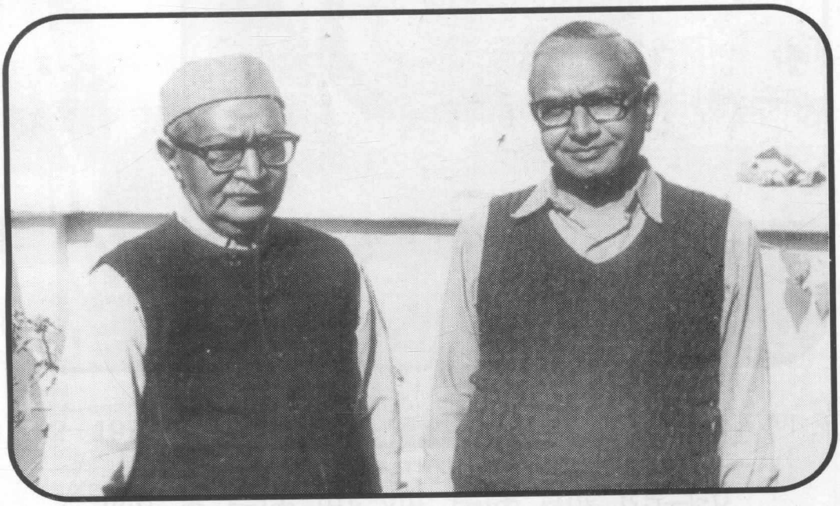

अनुज अजित प्रसाद के साथ 1976 में

पत्नी श्रीमती अनन्तमाला के साथ युवावस्था में

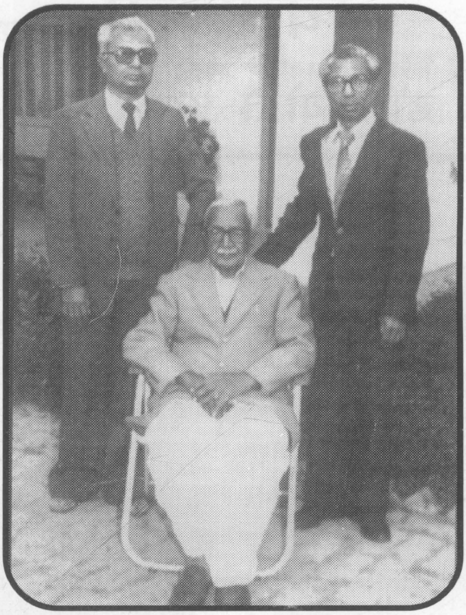

पुत्र–द्वय शशि कान्त और रमा कान्त के साथ
अमृत महोत्सव (6–2–1987) पर

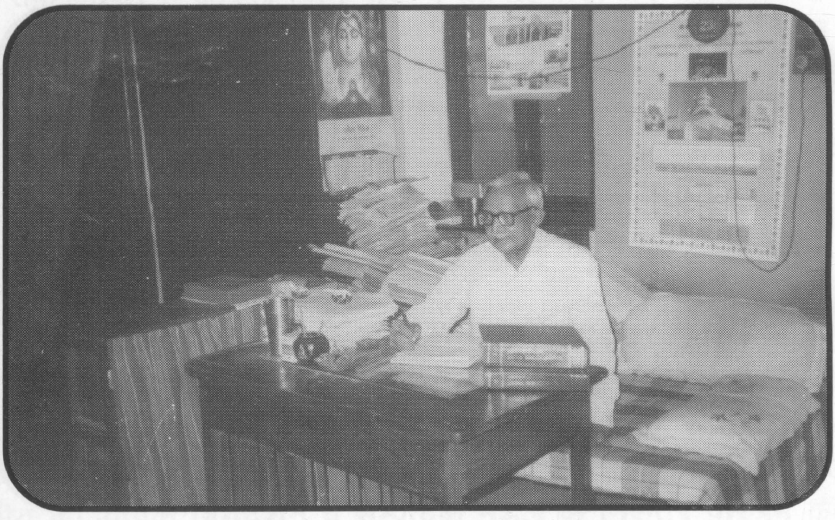

अध्ययन कक्ष में लिखते–पढ़ते

12–2–1979 को डॉ. साहब को इतिहास–मनीषी अलंकरण से सम्मानित करते हुए डॉ. नी. पु. जोशी

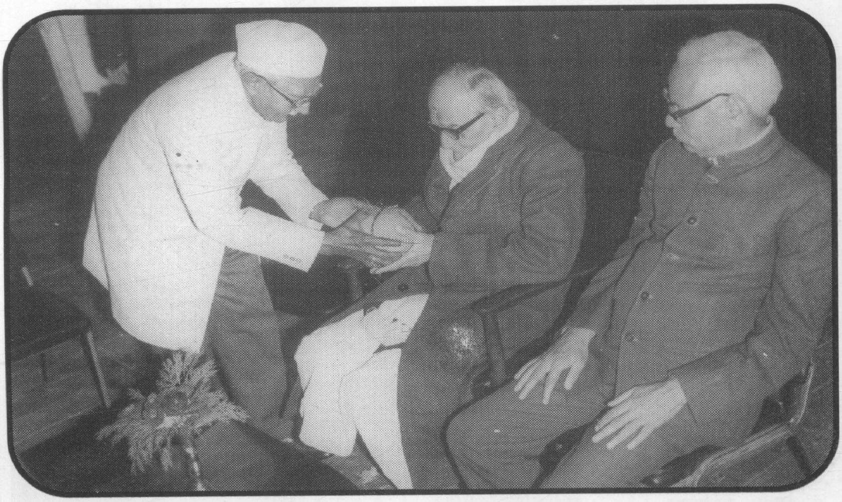

12–2–1982 को प्रो. चरण दास चटर्जी को इतिहास–मनीषी अलंकरण से सम्मानित करते हुए

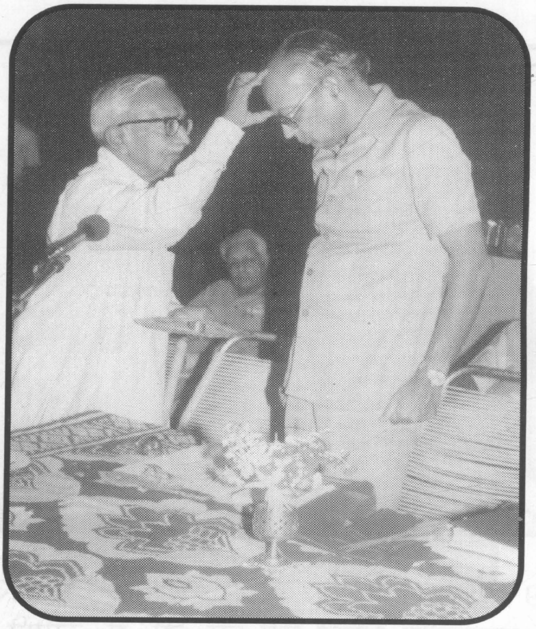

10—5—1987 को जस्टिस कैलाश नाथ गोयल
को सम्मानित करते हुए

श्रद्धांजलि सभा में पद्मभूषण अमृतलाल नागर
श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए

श्री अजित प्रसाद जैन

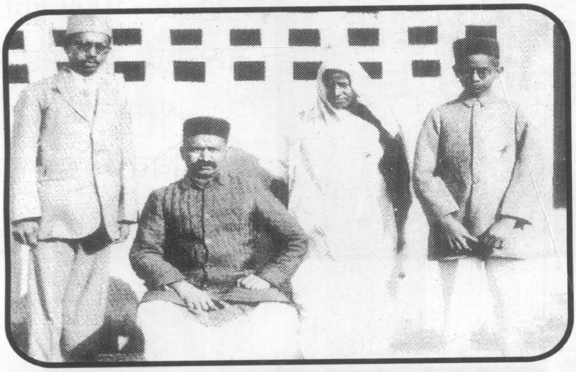

अपने अग्रज, पिताजी और माताजी के साथ (1933)

अपनी धर्मपत्नी के साथ 18–1–1962 में

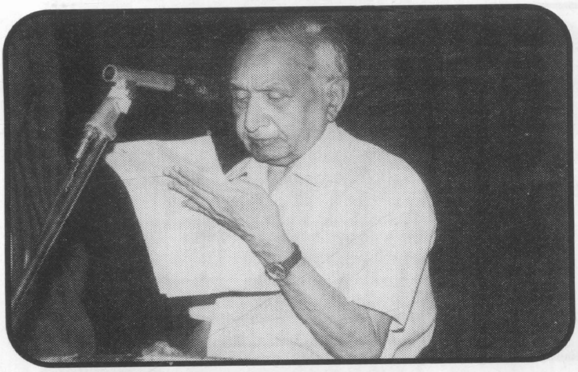

3–6–1995 को श्रुत पंचमी पर आयोजित संगोष्ठी को सम्बोधित करते हुए

11–6–1998 को सारस्वत समारोह में सभा को सम्बोधित करते हुए

20–4–2003 को अहिंसा इण्टरनेशलन द्वारा 'प्रेम चन्द जैन पत्रकारिता पुरस्कार–2002' से सम्मानित करते हुए

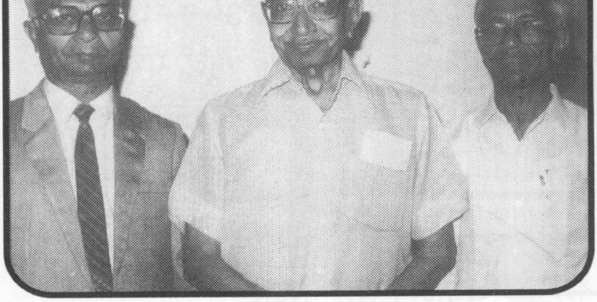

5–10–1992 को अपने भ्रातृज डॉ. शशि कान्त और रमा कान्त के साथ

श्री रमा कान्त जैन

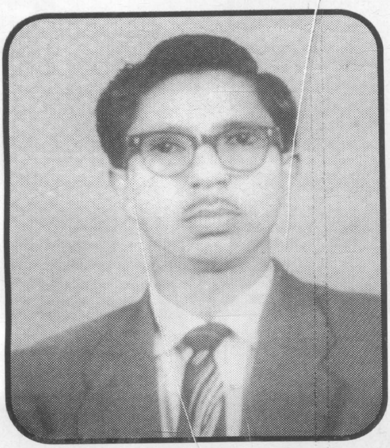

युवावस्था
का चित्र (1965)

अपनी धर्मपत्नी
श्रीमती आशा जैन
के साथ

अक्टूबर 1975
में
'भारतीय विचारधारा
में
जैन संस्कृति'
संगोष्ठी
में शोध पत्र का
वाचन
करते हुए

11 जून, 1998
में विद्वत
अभिनन्दन
समारोह में

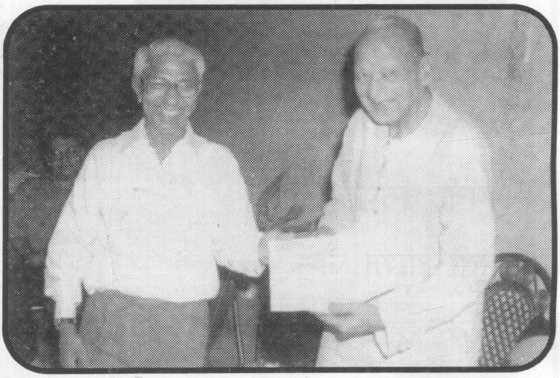

11 जून 1999, को
उनकी कृति
'गिलास आधा भरा है'
का लोकार्पण
करते हुए
श्री ज्ञान चन्द जैन

11 मार्च, 2006 को
होली मिलन
समारोह में
महापौर
डॉ. दिनेश शर्मा
की अध्यक्षता
में हुए
कवि सम्मेलन
में काव्य पाठ
करते हुए

जैन मिलन द्वारा 'मिलन उपलब्धि सेवा सम्मान–2017' से सम्मानित श्री नलिन कान्त जैन

सकल जैन समाज द्वारा सम्मानित श्री हुकमचन्द जैन, मेरठ

कुलपति प्रो. एम. पी. दुबे द्वारा सम्मानित डॉ. अवधेश कुमार अग्रवाल, ललितपुर

आवश्यक सूचना

वार्षिक शुल्क रु. 60/–(साठ रुपये), **'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.,ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–226004',** को 'तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति' के नाम लखनऊ में देय चेक अथवा ड्राफ्ट द्वारा भेजने का अनुग्रह करें। मनीआर्डर से भेजने पर उसकी सूचना एक पोस्टकार्ड पर भी अपने पूरे नाम व पते के साथ अवश्य भेजें। विदेशों के लिए पत्रिका का वार्षिक शुल्क 25 डालर है।

शोधादर्श षड्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक जून–अन्त और दिसम्बर–अन्त में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहियें। यथासम्भव लेख 3–4 टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। लेख सामान्यतया हिन्दी में होने चाहिएं, परन्तु अंग्रेजी में भी भेजे जा सकते हैं। लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। अप्रकाशित लेख–रचना लौटाना कठिन होगा।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को **ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–226004,** के पते पर भेजे जायें।

प्रत्यावर्तन में पत्रिका की केवल एक प्रति सम्पादक को उपरोक्त पते पर भेजी जाये।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेख में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

✧ ✧ ✧

– **सम्पादक**